विज्ञान लोकप्रियकरण: प्रारम्भिक प्रयास

सम्पादक

डा० शिवगोपाल मिश्र

डा० दिनेश मणि

विज्ञान प्रसार

विज्ञान लोकप्रियकरण : प्रारम्भिक प्रयास

सम्पादक

डा० शिवगोपाल मिश्र

डा० दिनेश मणि

विज्ञान प्रसार

प्रकाशक

विज्ञान प्रसार

C-24, इंस्टिट्युशनल एरिया ए.एस.सी.आई भवन,
कुतुब होटल के पीछे, नई दिल्ली - 110 016
फोन : 6866675, 6965980, 6967532
फैक्स : 11 - 6965986

सम्पादक

डा० शिवगोपाल मिश्र
डा० दिनेश मणि

आइ एस बि एनः 81 - 7480 - 021 - 2

मुद्रक : भारत में रैकमो प्रेस प्राईवेट लिमिटेड ओखला फेस - 1, नई दिल्ली–20

विषय सूची

लेखक परिचय

1. **श्री गुणाकर मुले :** जन्म – 3 जनवरी 1935, शिक्षा–एम.ए. (गणित)। मराठी भाषी होते हुए भी 1960 से हिन्दी में विज्ञान लेखन में संलग्न। हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता के जन्मदाता। गणित के अतिरिक्त पुरातत्व और खगोल विज्ञान में विशेष दक्षता प्राप्त। "संसार के महान गणितज्ञ" तथा "आकाशदर्शन" नामक दो नवीन कृतियाँ अत्यन्त चर्चित एवं उच्चस्तरीय हैं। 1989 में डा० आत्माराम पुरस्कार से पुरस्कृत। विज्ञान लेखन से जीविकोपार्जन करने वाले विज्ञानी। आपके लेखन से हिन्दी साहित्य समृद्व हुआ है।

2. **डा० दिनेश मणि :** जन्म - 15 जून 1965, सुल्तानपुर (उ.प्र.)। शिक्षा–इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.एस–सी. (कृषि रसायन) 1987 तथा डी. फिल एवं डी.एस–सी. उपाधिप्राप्त। सम्प्रति – इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत। विज्ञान परिषद प्रयाग के अवेतनिक संयुक्त मंत्री तथा "विज्ञान" मासिक पत्रिका के सहायक सम्पादक के रूप में विगत कई वर्षो से विज्ञान लेखन एवं सम्पादन में सक्रिय। विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी की 201 पुस्तकें तथा अनेक शोध पत्र एवं लेख प्रकाशित। विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित 25 वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा भी कर चुके हैं। कुछ विज्ञान कवितायें भी प्रकाशित। विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता प्रशिक्षण कार्यशालाओं में प्रशिक्षक के रूप में सहयोग। विभिन्न वैज्ञानिक गोष्ठियों/सेमिनारों का सफलतापूर्वक संचालन। आकाशवाणी इलाहाबाद से कई वैज्ञानिक वार्तायें प्रसारित। वैज्ञानिक एंव तकनीकी लेखन के लिये विज्ञान परिषद प्रयाग के वर्ष 1990 के "डा० गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार" सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित।

3. **श्री प्रेमचन्द श्रीवास्तव :** जन्म - 10 जुलाई 1939, बॉसी, सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश। गोरखपुर विश्वविद्यालय से 1960 में एम.एस–सी.। 1963 से इलहाबाद विश्वविद्यालय के एसोशिएट कालेज, सी.एम.पी. डिग्री कालेज में वनस्पति विज्ञान विभाग में रीडर।

आपने बाल विज्ञान सीरीज के लिए 2 पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त आपने 200 लेख लिखे हैं। 'विज्ञान वीथिका' के सम्पादक विज्ञान परिषद के आजीवन सदस्य और 1987 से 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक हैं। आपको विज्ञान लेखन पुरस्कार (1980) भी मिल चुका है।

4. **डा० सुनील कुमार पाण्डेय :** जन्म - 14 अगस्त 1968, बस्ती (उ.प्र) शिक्षा – इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.एस–सी. (कृषि रसायन) तथा डी. फिल उपाधि प्राप्त। विज्ञान लेखन में विशेष रुचि। अब तक तीन शोध पत्र प्रकाशित एवं लगभग डेढ़ दर्जन लेख विभिन्न पत्र – पत्रिकाओं में प्रकाशित। विज्ञान परिषद्, प्रयाग, के आजीवन सदस्य। 1993 के प्रतिष्ठित "डा० गौरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार"[1] से पुरस्कृत आप विभिन्न वैज्ञानिक संगोष्ठियों में समय–समय पर भाग लेते रहे हैं।

5. **डा० सुनील दत्त तिवारी :** जन्म - 5 जून 1967, बलिया (उ.प्र.) शिक्षा– इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.एस–सी. ('कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान) तथा डी. फिल उपाधि प्राप्त। विज्ञान लेखन में विशेष रुचि। अब तक विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में 3 पुस्तकें प्रकाशित एवं 3 पुस्तकें प्रकाशनाधीन। विभिन्न पत्र – पत्रिकाओं में लगभग 50 लेख प्रकाशित और 5 पुस्तकों की समीक्षा कर चुके हैं। विज्ञान परिषद् के आजीवन सदस्य एवं वर्ष 1992 के "डा० गोरख प्रसाद" विज्ञान पुरस्कार से सम्मानित। आप विभिन्न वैज्ञानिक संगोष्ठियों, सेमिनारों में समय–समय पर सम्मिलित होते रहे हैं। सम्प्रति – राजकीय उद्यान खुशरूबाग में शोध सहयोगी (मृदा विज्ञान) के रूप में कार्यरत।

6. **श्री तुरशन पाल पाठक :** जन्म 1 जनवरी 1938, शिक्षा – एम.एस–सी. (कृषि), साहित्यरत्न। कुछ काल तक अध्यापन, तत्पश्चात् "भारत की सम्पदा" में सम्पादक के रूप से कार्यरत। आपकी 12 मौलिक बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित जिनमें से, "ऐसा क्यों होता है" सर्वाधिक लोकप्रिय। डा० आत्मा राम पुरस्कार से सम्मानित।

7. **डा० शिवगोपाल मिश्र :** जन्म - 13 सितम्बर 1931, शिक्षा : एम. एस–सी. डी. फिल, साहित्यरत्न। 1952 से विज्ञान लेखन में संलग्न।

आपकी कई उच्चस्तरीय पुस्तकें तथा दर्जनों लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित। मृदा विज्ञान, प्रदूषण आदि आपके विशेष लेखन–विषय रहे हैं। आपका 'रसायन विज्ञान कोश' बहुचर्चित है। डा० आत्माराम पुरस्कार तथा "विज्ञान भूषण सम्मान" से सम्मानित। "विज्ञान", "अनुसन्धान पत्रिका" के सम्पादक तथा विज्ञान परिषद के प्रधानमन्त्री। नवीन लेखकों को प्रोत्साहित करने में आपका विशेष योगदान रहा है।

8. **डा० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल'** : जन्म - 1936 शिक्षा– एम.एस–सी. (कृषि), डी. फिल। कुलभास्कर महाविद्यालय में डेरी विज्ञान के प्रोफेसर, हिन्दी कविता में विशेष रुचि, काव्य के माध्यम से विज्ञान विषयों का लेखन, विज्ञान परिषद् प्रयाग की गतिविधियों से जुड़े हुए।

9. **श्री श्याम सुन्दर शर्मा** : जन्म - 8 दिसम्बर 1929, शिक्षा : बी.एस–सी. विशारद। तीस वर्षो से विज्ञान लेखन में सक्रिय। 24 मौलिक तथा 4 अनूदित पुस्तकें प्रकाशित। कई पुस्तकें पुरस्कृत भी। 'विज्ञान प्रगति' से 30 वर्षो तक सम्बद्व, पहले उपसम्पादक तथा बाद में सम्पादक के रूप में। अभी भी सक्रिय।

10. **डा० रमेश दत्त शर्मा** : जन्म - 15 फरवरी 1939, शिक्षा : एम.एस–सी. (वनस्पति) तथा पी. एच–डी.। 1961 से ही विज्ञान लेखन में तत्पर। धर्म युग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, आविष्कार, खेती आदि में सैकड़ों लेख प्रकाशित। "हमारे वैज्ञानिक" तथा "गेहूँ की मुट्ठी में भारत" पुस्तकें प्रकाशित। पंचानन माहेश्वरी की पुस्तकों के सफल अनुवादक। 1995 में डा० आत्माराम पुरस्कार से सम्मानित। कृषि विज्ञान के विशिष्ट लेखक। कई प्रकार की शैलियों के जन्मदाता। सम्प्रति – भारतीय कृषि अनुसन्धान में प्रधान सम्पादक (हिन्दी)।

11. **श्री शुकदेव प्रसाद** : जन्म - 24 अक्टूबर 1954, शिक्षा : एम.एस–सी. (वनस्पति), एम.ए. (हिन्दी)। 1971 से पत्र–पत्रिकाओं में लगातार लेखन। बालोपयोगी तथा लोकोपयोगी पुस्तकों की संख्या 80 से ऊपर। आपकी कई पुस्तकें पुरस्कृत। विज्ञान लेखन के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले दूसरे विज्ञान लेखक। नई पीढ़ी के लेखकों में सबसे अधिक सक्रिय।

12. **डा० राजकुमार दुबे :** उ.प्र. के गोरखपुर जिले में ग्राम बस्तुपार के एक किसान परिवार में जन्मे डा० दुबे एक अच्छे रसायनज्ञ हैं और विज्ञान लेखन में भी सक्रिय हैं। आपने गोरखपुर विश्वविद्यालय से बी.एस–सी. तथा एम.एस–सी. की उपाधियाँ प्राप्त की। सुप्रसिद्व रसायनज्ञ प्रो.आर.सी.मेहरोत्रा जी के निर्देशन में शोध कार्य सम्पन्न कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से पी.एच–डी. की उपाधि प्राप्त की। आप में 'दी रायल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी' स्टाकहोम (स्वीडन) के अकार्बनिक रसायन विभाग में विजिटिंग साइंटिस्ट के रूप में उच्च स्तरीय शोध कार्य किया। सन् 1994 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत। हिन्दी में भी विज्ञान–लेखन। पिछले 2 वर्षो से आप विज्ञान परिषद, प्रयाग, से जुड़े हुए हैं।

13. **डा० राजीव रंजन उपाध्याय :** जन्म - 7 जुलाई 1943, शिक्षा – एम. एस–सी. पी.एच–डी.। विज्ञान कथाओं में अभिरुचि। तीन पुस्तकें प्रकाशित। लोकोपयोगी विज्ञान में "कैंसर" पुस्तिका प्रकाशनाधीन। ईरान में कैंसर पर शोध कार्य करने का अनुभव। फैजाबाद में विज्ञान परिषद प्रयाग की शाखा के कर्ताधर्ता। तमाम गोष्ठियों में भाग लेने वाले, ऊर्जा से भरपूर।

14. **डा० गिरीश चन्द्र चौधरी :** शिक्षा – एम.एस–सी. (भौतिकी), पी. एच–डी.। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर। हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली में विशेष रुचि।

15. **श्री रामधनी द्विवेदी :** जन्म - 1 जनवरी 1951, शिक्षा – बी.एस–सी. एम.ए.। 1972 से पत्रकारिता क्षेत्र में कार्यरत। 'अमृत प्रभात' में विज्ञान चर्चा स्तम्भ के लेखक। सम्प्रति – 'अमृत प्रभात' के उपसम्पादक। विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा विज्ञान पत्रकारिता के लिए सम्मानित।

16. **श्री हरिमोहन मालवीय :** शिक्षा–एम.ए. (हिन्दी)। बहुत काल तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन में साहित्य सचिव के पद पर कार्य किया। हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग के सचिव भी रहे। पाठालोचन के अतिरिक्त कोश निर्माण में डा० सत्यप्रकाश के सहयोगी। विभिन्न गोष्ठियों में विज्ञान लेखन पर वक्तृताएँ।

17. **श्री दर्शनानन्द :** जन्म-3 जुलाई, 1930। राजकीय कृषि महाविद्यालय कानपुर से उद्यान विज्ञान में एम.एस–सी. (कृषि) की उपाधि प्राप्त। उद्यान विज्ञान विभाग में उ.प्र. के उपनिदेशक (उद्यान) के पद पर कार्यरत रहकर – सम्प्रति अवकाशप्राप्त। प्रारम्भ से ही लेखन में विशेष रुचि। अब तक आपके 17 मौलिक शोधपत्र, उद्यान और पर्यावरण सम्बन्धित अनेकानेक लोकप्रिय लेख प्रकाशित। लगभग 20 पुस्तकें भी प्रकाशित। विज्ञान परिषद प्रयाग तथा हार्टीकल्चरल सोसाइटी ऑफ इण्डिया के आजीवन सदस्य। विज्ञान लेखन में उत्कृष्ट योगदान के लिये विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा वर्ष 1989 में "डा० गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार" से सम्मानित। अभी भी विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में एक युवा की भाँति सक्रिय।

18. **श्री मनोज कुमार पटेरिया :** जन्म -1961, शिक्षा– एम.एस–सी. (प्राणि विज्ञान) "विज्ञान दूत" पत्रिका के सम्पादक। "हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता" तथा "जैव प्रौद्योगिकी" पुस्तकों के लेखक। उत्साही विज्ञान लेखक, अनेक आविष्कार प्रकाशित। विज्ञान लोकप्रियकरण में संलग्न। सम्प्रति–एन.सी.एस.टी.सी. में वरिष्ठ वैज्ञानिक।

प्राक्कथन

भारत में विज्ञान – लोकप्रियकरण का इतिहास, विशेषकर भारतीय भाषाओं में, कितना पुराना है? यह प्रश्न पढ़ते ही हम सभी का ध्यान सीधा बंगला भाषा में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में किए गए सत्येन्द्र नाथ बसु, जगदीश चन्द्र बसु इत्यादि के प्रयासों की ओर अनायास ही चला जाया करता था। लेकिन ऐसा कुछ वर्ष पहले तक ही था, जब प्रो. रुचिराम साहनी की आत्मकथा की प्रति हमारे हाथ नहीं लगीं थी। प्रो. साहनी ने पंजाब साइंस इंस्टीच्युट की स्थापना वर्ष 1885 में प्रो. ओमन नामक एक अंग्रेज के साथ मिलकर की। इसके अन्तर्गत उन्होंने विभाजन से पहले वाले पंजाब के कई भागों में पंजाबी भाषा में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने हेतु बहुत काम किया। विस्तृत विषयों पर पंजाबी (तथा अंग्रेजी भाषा में भी) में, स्लाइडों तथा वैज्ञानिक प्रयोगों की सहायता से प्रो. साहनी ने पंजाब भर में करीब 500 व्याख्यान दिये। ("विज्ञान प्रसार" ने उनकी आत्मकथा पर आधारित एक किताब "मेमोआर्ज ऑफ रुचिराम साहनीः पायोनियर ऑफ साइंस पॉपुलराइजेशन इन पंजाब" 1994 में प्रकाशित की। इसके हिन्दी, मराठी और पंजाबी रूपान्तर भी प्रकाशित किए जा रहे है।)

प्रो. रुचिराम तक पंहुचने के पश्चात् हमें ऐसा लगा कि, हो न हो, अन्य भारतीय भाषाओं में भी सम्भवतः स्वतंत्रता प्राप्ति से बहुत पहले ही विज्ञान को लोकप्रिय बनाने हेतु ऐसे ही प्रयास हुए होंगे, जिन्हें हमें ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ के पन्नों में प्रस्तुत आलेख इस ओर किये गये हमारे प्रयत्नों का परिणाम हैं।

इलाहाबाद संगोष्ठी से पहले इसी प्रकार की तीन संगोष्ठियां विज्ञान – प्रसार द्वारा चंडीगढ़ (01 मार्च 1995), दिल्ली (21 अप्रैल 1995) और कलकत्ता (12 मई 1995) में आयोजित की गयीं। इन जगहों पर भी इस विषय पर आलेख प्रस्तुत किये गये और नई जानकारियां हमारे हाथ लगीं। उन आलेखों को भी संकलित कर ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जाएगा।

यहां प्रस्तुत आलेखों में निहित जानकारी को इस विषय पर अन्तिम शब्द नहीं माना जा सकता। इन्हें प्रकाशित कर पुस्तक रूप में लाने के पीछे एक उद्देश्य यह भी है कि इस विषय में दक्षता, जानकारी एवं रुचि रखने वाले लोग इन आलेखों को पढ़कर हमारा ध्यान उन सभी सूचनाओं तथा जानकारियों

की ओर दिलायेंगे जिन्हें इस पुस्तक में सम्मिलित किया जाना चाहिए था, लेकिन सम्मिलित नहीं हैं। पुस्तक का अगला संस्करण, इस प्रकार, इस संस्करण से अधिक संपूर्ण एवं समृद्ध होगा। और यह तो निरन्तर चलते रहने वाली प्रक्रिया है और अपनी गति से चलती रहेगी।

यदि पाठकों द्वारा हमें सक्रिय सहयोग मिला तथा इस विषय पर और जानकारी प्राप्त हुई तो हम अपने इस प्रयास को सफल मानेंगे।

(नरेन्द्र सहगल)
निदेशक, विज्ञान प्रसार
नई दिल्ली

विज्ञान प्रसार
(एक परिचय)

विज्ञान को बड़े पैमाने पर लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से सन् 1989 में विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, द्वारा एक पंजीकृत स्वायत्त सोसायटी के रूप में विज्ञान प्रसार की स्थापना की गयी थी। इस के प्रमुख उद्देश्यों का सारांश निम्नलिखित है :

- आम जनता के बीच विज्ञान और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने तथा उनमें वैज्ञानिक मिज़ाज पैदा करने के लिए तत्संबंधी प्रयासों को समन्वित, निर्देशित, उन्नत और संवर्धित करने का काम हाथ में लेना और समाज के सभी वर्गों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषय में रुचि और जानकारी को बढ़ावा देना ।

- विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों, एजेन्सियों, शिक्षण तथा अकादमिक निकायों, प्रयोगशालाओं, संग्रहालयों, उद्योगों, व्यापारिक संस्थानों और अन्य संगठनों के बीच लगातार प्रभावी सहयोग को प्रोन्नत करना ताकि उनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी आदान–प्रदान तथा प्रचार–प्रसार हो सके।

- संचार साधनों और व्यवस्थाओं से संबंधित दृश्य, श्रव्य, दृश्य–श्रव्य तथा मुद्रित सामग्री के विकास को हाथ में लेना जिस से कि आम जनता, श्रमूर्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों और संक्रियाओं को बेहतर तरीके से समझ सके और उनकी कदर कर सके ।

- सोसायटी के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए अन्वेषण कार्यों, पाठ्यक्रमों, कार्यशालाओं,गोष्ठियों, परिसंवादों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, मेलों, प्रदर्शनियों, फिल्म–शोज़, सार्वजनिक चर्चाओं, नुक्कड़ नाटकों, समस्यामूलक पहेलियों और संगीत–नृत्य–नाटिकाओं आदि का आयोजन करना ।

विज्ञान प्रसार की स्थापना के बाद यह संस्था कुछ वर्षों तक निष्क्रिय–सी ही रही । वर्ष 1994 से ही कुछ कार्य गंभीरता पूर्वक हाथ में लिए जा सके।

विज्ञान प्रसार द्वारा शुरू किये गये कुछ प्रारंभिक कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम था **'मुद्रण के लिए तैयार'** विज्ञान पृष्ठ परियोजना, जिसका प्रयोजन था भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी हो रहे विकास कार्यों से सम्बद्ध एक या दो प्रमुख आलेखों के साथ अन्य कई छोटे–छोटे मदों को लेकर अखबारी आकार का एक सचित्र और सुनियोजित पृष्ठ तैयार करना और इसे इसी रूप में छापने के लिए विभिन्न समाचार पत्रों को मोहैया करना।

आरंभ में इस तरह का पृष्ठ हिंदी और अंग्रेजी में मासिक आधार पर जारी करने की योजना बनायी गयी। तदनंतर इस में अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं के पृष्ठ और एक फीचर पैकेट सेवा को भी जोड़ा गया। आज भारत भर में लगभग 20 समाचार पत्रों के 30 से भी अधिक संस्करणों में ये पृष्ठ महीने में एक, दो या अधिक बार प्रकाशित किए जा रहे हैं। दरअसल, आज देश में विज्ञान प्रसार के ये विज्ञान–पृष्ठ किसी भी अन्य विज्ञान पृष्ठ की तुलना में कहीं अधिक कई गुणा संख्या में छप रहे हैं। इन सभी समाचार पत्रों की संयुक्त मुद्रण संख्या 25 लाख प्रतियों से भी अधिक है। इन पृष्ठों की वजह से दूसरे समाचार पत्रों में भी विज्ञान संबंधी सामग्री सम्मिलित करने की मांग में वृद्धि हुई है ।

अब विज्ञान प्रसार का प्रकाशन कार्यक्रम धीरे–धीरे एक निश्चित आकार लेता जा रहा हैं। इस सिलसिले में कई महत्वपूर्ण पुस्तक श्रृंखलायें शुरू की गई हैं और कईओं की योजना बन रही है। आज़ादी से पूर्व के भारत में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने वाली अग्रणी हस्तियों पर प्रकाशन श्रृंखला में विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी की प्रथम प्रमुख पुस्तक थी : "मेमोआर्ज़ ऑफ रुचि राम साहनी: पंजाब में विज्ञान के लोकप्रियकरण के अग्रणी" यानि पंजाब में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने वाले अग्रणी व्यक्ति रूचिराम साहनी के संस्मरण। इस पुस्तक से विज्ञान प्रसारकों में एक सार्थक चेतना पैदा हुई और उत्साही अन्वेषकों को देश के अन्य भागों में ऐसी हस्तिओं को ढूंढ निकालने की जरूरत का एहसास हुआ। इस के फलस्वरूप ऐसे अनेक व्यक्तिओं के नाम पहले ही प्रकाश में आ चुके हैं जिन्होंने आजादी से पूर्व के भारत में विज्ञान की लोकप्रियता बढ़ाने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया था।

प्राचीन काल में महान आचार्यों द्वारा लिखे गये विज्ञान संबंधी प्राचीन उच्च ग्रन्थ, जिन से विज्ञान के विद्यार्थियों की अनेक पीढ़ियों को प्रेरणा मिली है, हमारी आज की युवा पीढ़ी के हाथों में दिखाई नही देत। ऐसा इस लिए नहीं है कि अब इन पुस्तकों की प्रासंगिकता समाप्त हो गयी है अपितु इस का कारण है इन का उपलब्ध न होना। विज्ञान प्रसार **अपनी लोकप्रिय विज्ञान संबंधी प्राचीन उच्च ग्रन्थावली** योजना के तहत इन पुस्तकों को पुनः मुद्रित करने का इरादा रखता है और इन के कम कीमत वाले संस्करण प्रकाशित करना चाहता है ताकि ये पुस्तकें अधिक से अधिक बच्चों के हाथों में पहुंच सकें। पहले ही ऐसे दो प्राचीन उच्च ग्रन्थ (माइकल फेरेडे द्वारा लिखित) "मोमबत्ती का रासायनिक इतिहास" तथा (सी वी ब्वायस द्वारा लिखित) "साबुन के बुलबुले और बल जो उनको आकार देते हैं" पुनः मुद्रित करवाये जा चुके हैं। इतना ही नहीं अपितु ऐसी अन्य पुस्तकों पर भी काम किया जा रहा है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 1995 के केन्द्रीय विषय अर्थात् ष्स्वास्थ्य के लिए विज्ञानष से प्रेरित होकर विज्ञान प्रसार ने एक स्वास्थ्य संबधी ग्रन्थावली की योजना आरंभ की। इसके तहत सभी आम बीमारियों, उन के संभव निदानों तथा निरोधात्मक उपायों, पर पुस्तकें प्रकाशित की जाएंगी। इन में से तीन विषयों पर अग्रेज़ी में पुस्तकें पहले ही प्रकाशित की जा चुकी हैं। ये विषय हैं : लैंगिक संबंधों द्वारा जन्य गुप्त रोग, अस्थमा (दमा) तथा जौंडिस (पीलिया)। विज्ञान प्रसार भारत की वैज्ञानिक विरासत पर, प्रकाशन—श्रृंखला की अपनी योजना के अंतर्गत, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन विशिष्ट क्षेत्रों में पुस्तकों का प्रकाशन करेगा जिन में भारत का योगदान समय की कसौटी पर खरा उतरा है और जिसने आधुनिक विज्ञान पर भी एक अमिट छाप छोड़ी है । इस श्रृंखला के तहत प्रकाशित होने वाली पहली पुस्तक है दिल्ली स्थित लौह स्तंभ पर किये गये अध्ययनों के विषय परः "दि रस्टलेस वन्डरःदि स्टडी ऑफ दि आयरन पिल्लर एट देहली"

24 अक्तूबर 1995 के पूर्ण सूर्यग्रहण ने विज्ञान प्रसार को एक देश व्यापी चेतना अभियान आयोजित करने का एक दुर्लभ अवसर प्रदान किया जिसका उद्देश्य था ग्रहण संबंधी प्राचीन मिथकों और अंधविश्वासों को समाप्त करना और आम जन समुदाय में उनके ज्ञात वैज्ञानिक कारणों को जानने की लालसा का विकास करना ।

विज्ञान प्रसार ने राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन सी एस टी सी) से मिल कर अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जो इस प्रकार हैं :

- विधार्थियों और शिक्षकों के लिए टेलिस्कोप (दूरदर्शी) बनाने की कार्यशालाओं का आयोजन।
- पुस्तकें, पूर्ण सूर्यग्रहण पर एक चार्ट और बच्चों के लिए एक एक्टिविटी किट तैयार करना ।
- अनेक वीडियो फिल्मों का निर्माण और उनका प्रसारण।

विज्ञान प्रसार ने यह सुनिश्चित करने की एक नयी संकल्पना की कि लोग पूर्ण सूर्यग्रहण को देखने के लिए घरों से बाहर निकलें, और उसने इस संकल्पना को कार्यान्वित भी किया। इस के लिए विज्ञान प्रसार की

तरफ से पूर्ण सूर्यग्रहण संबंधी एक शपथ–पत्र परिचालित किया गया जिसे देश के कोने–कोने से अनेक लोगों ने भर कर अपने हस्ताक्षरों सहित वापिस भेजा। अनेक व्यक्तियों और स्वायत्त संस्थाओं ने इस शपथ–पत्र को स्वयम् ही क्षेत्रीय भाषाओं में अनूदित कर बड़ी संख्या में आम जनता के बीच वितरित किया। इन सभी कार्यवाहियों से इस सिलसिले में पूरे देश में एक हलचल–सी मच गयी। विव प्रव, एन सी एस टी सी तथा अन्य संस्थाओं के मिलें जुले प्रयासों के फलस्वरूप एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी कि पूर्ण सूर्यग्रहण की इस अनोखी घटना को देखने के लिए घरों से लाखों लोगों की भीड़ बाहर निकल आई। असंख्य लोगों द्वारा इस प्राकृतिक घटना को देखा जाना एक अनुपम अनुभव था जिस से पूरे देश में विज्ञान प्रसार का नाम घर–घर तक पहुंचा ।

अपने द्वश्य–श्रव्य कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान प्रसार ने 24 अक्तूबर 1995 के पूर्ण सूर्यग्रहण के अवसर पर वीडियो फिल्मों के एक सेट तथा अनेक रेडियो कार्यक्रमों का निर्माण किया। विज्ञान प्रसार द्वारा इस धटना पर आधारित किए गये प्रयास वृहत् रूप से विज्ञान प्रसार परिवार के लिए बहुत संतोषजनक सिद्ध हुए जिनके प्रति आम जनता की प्रतिक्रिया भी बहुत उत्कृष्ट और सराहनीय रही ।

सभी क्षेत्रों से विज्ञान वेत्ताओं और खास तौर से विज्ञान संचारको की ओर से यह मांग उठती रही है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं से संबंधित एक पृष्ठभूमिक आंकड़ा–आधार और सूचना–भण्डार की स्थापना की जाए जिसका लाभ सभी संबंधित व्यक्तियों को आसानी से उपलब्ध हो सके। इस पुरानी मांग को पूरा करने के लिए, हाल ही में विज्ञान प्रसार ने विप्रिस नाम से एक सूचना पद्धति का निर्माण आरंभ किया है जिस का पूरा नाम है विज्ञान प्रसार इन्फॉरमेशन सिस्टम, यानि सूचना पद्धति। यह कम्प्यूटरी–कृत पद्धति एक एक विषय क्षेत्र से सम्बंद्ध सूचना–इकाईयों को जोड़ जोड़ कर बनाने के आधार पर तैयार की जायेगी, और इसका उद्देश्य होगा सभी तरह के विज्ञान संचारकों की विज्ञान संबंधी सूचनाओं की समस्त जरूरतों को पूरा करना।

फिलहाल विप्रिस के अंतर्गत विज्ञान सम्बन्धी अखबारी कतरनों पर आधारित पाक्षिक सेवा, दूरदर्शन चैनल–दो की मेट्रो डायरी में दो पृष्ठ प्रतिदिन, एक इलैक्ट्रानिक बुलेटिन बोर्ड सेवा (बी बी एस) उपलब्ध हैं और, साप्ताहिक आधार पर, विज्ञान समाचारों का प्रसारण रेडियो पर भी किया जाता है। इस के अतिरिक्त, सीडी–रौम्ज़ का विकास और उत्पादन, तथा प्रशिक्षण सहित दूसरी अनेक सेवाओं और उत्पादों पर योजनाएं बनायी जा रही हैं जिनमें विभिन्न विषयों, क्षेत्रों, आदि से संबंधित आंकड़ा–आधारों का सृजन एवं विकास भी शामिल हैं।

विज्ञान प्रसार ने 108–भाग वाले रेडियो धारावाहिक मानव का विकास (एन सी एस टी सी और ऑल इन्डिया रेडियो द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित) के 18 भारतीय भाषाओं में ऑडियो–कैसेट सेटों का भी निर्माण किया है। इतना ही नहीं, विज्ञान प्रसार बहुत से अन्य कार्यो में भी लगा है। पर वर्तमान के लिये इतना ही पर्याप्त होगा।

नरेन्द्र सहगल
निदेशक
विज्ञान प्रसार

भूमिका

आजकल प्रायः सभी लोग यही कहते पाये जाते हैं कि जो बात विज्ञानसिद्ध है वही हमें ग्राह्य हो सकती है। किन्तु कितने लोग विज्ञानसिद्ध बातों को जानते हैं, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं। वास्तव में यदि देखा जाये तो वैज्ञानिक ज्ञान का व्यापक प्रचार–प्रसार ही विकासशील देशों के कल्याण का प्रमुख साधन हो सकता है। अतः जनसाधारण (स्त्री, पुरुष तथा बालक) में विज्ञान की रुचि और प्यास पैदा करने की अविलम्ब आवश्यकता है। जनसाधारण में अपने चारों ओर दिखने वाली वस्तुओं, प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों, यन्त्रों या साधनों तथा घटित होने वाली घटनाओं को जानने की उत्सुकता रहती है। वे ही असली जिज्ञासु हैं जिन तक विज्ञान को पहुँचाना वैज्ञानिकों का सर्वोपरि कार्य है। यही *विज्ञान का लोकप्रियकरण* है।

स्मरण रहे कि वैज्ञानिक विचारधारा ऊपर से नीचे की ओर बहने वाली है। उच्चस्तरीय ज्ञान का सहजीकरण करके ही लोकप्रिय साहित्य का सृजन किया जाता है। अतः लोकप्रिय विज्ञान लेखकों को उच्च स्तर से विचार लेकर उन्हें सामान्य स्तर तक लाना होता है। इसके लिए आवश्यक शर्तों में विदेशी भाषाओं/क्षेत्रीय भाषाओं का ज्ञान, उन भाषाओं का ज्ञान, उन भाषाओं में उपलब्ध साहित्य का देशी भाषा में अनुवाद करने की क्षमता, विदेशी शब्दों के सर्वमान्य देशी पर्यायों का ज्ञान प्रमुख हैं। तभी उच्चस्तरीय विज्ञान का लोकप्रियकरण हो सकता है। यही नहीं, लोकप्रियकरण के लिये आवश्यक है कि लोकरुचि से परिचित हुआ जाय और तदनुसार जनसामान्य की भाषा में ज्ञान प्रस्तुत किया जाय। ऐसी भाषा के माध्यम से कितना और कैसा ज्ञान परोसा जाय यह लेखक के विषयज्ञान तथा लेखन–शैली पर निर्भर करेगा।

लोकप्रिय विज्ञान–लेखन में सिद्धान्त की बातें–परिभाषाएं सूत्रों सहित तथा व्यावहारिक या प्रयोगात्मक विवरण दोनों सम्मिलित हैं। विभिन्न उपकरणों, यन्त्रों की प्रयोग विधि, उनके इस्तेमाल के दौरान बरती जानें वाली सावधानियाँ अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती हैं। वैज्ञानिक साहित्य में नई खोजों का वर्णन, महान विज्ञानियों की जीवनियाँ

तथा विज्ञान गल्प भी सम्मिलित हैं। आजकल वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों के प्रयोग से विभिन्न वैज्ञानिक कवितायें, पहेलियाँ, चुटकुले इत्यादि लिखे जा रहे हैं। विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों/तथ्यों संबंधित कार्टून) बनाये जा रहें हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि वैज्ञानिक साहित्य आज व्यापक रूप ले चुका है। अतः इसके सृजन में किसी एक लेखक की नहीं अपितु लेखकों के समुदाय की आवश्यकता है। इसमें स्त्री–पुरुष दोनों की भागीदारी की जरूरत है। जहाँ तक हो सके अधिकाधिक पत्रिकायें, पाक्षिकों, साप्ताहिकों तथा दैनिक पत्रों का नियमित प्रकाशन एवं वितरण होना चाहिये।

अक्सर यह देखा जाता है कि जो भाषा में प्रवीण होते हैं उनको प्रायः वैज्ञानिक विषयों में अरुचि होती है और जो वैज्ञानिक विषयों में पारंगत होते हैं उन्हें भाषा का अच्छा ज्ञान नहीं होता। ऐसी स्थिति में हमारा प्रयास होना चाहिये कि हम इस तरह के दोनों व्यक्तियों का मेल कराकर उत्कृष्ट विज्ञान–साहित्य सृजन करें।

लोकप्रियकरण के लिये आवश्यक है कि जो भी साहित्य छपे वह सामान्यजन तक, सामान्य पाठकों तक पहुँचे। वह पुस्तकालयों की आलमारियों में बन्द न हो जाये। यह साहित्य बच्चों, युवकों, वृद्धों सबके लिये होना चाहिये। इसमें कृषि, स्वास्थ्य, इंजीनियरी, पर्यावरण, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान के चुने–चुने विषयों की संक्षिप्त, सहज, आकर्षक तथा सचित्र जानकारी प्रस्तुत की जानी चाहिये।

जब तक उच्चस्तरीय विज्ञान देशी भाषाओं में या देश की किसी एक सर्वस्वीकृत भाषा में व्यक्त नहीं होगा तब तक उसको सामान्य स्तर तक लाने में कठिनाई ही कठिनाई होगी। यदि उच्च स्तर तथा सामान्य स्तर के बीच अनुवाद की प्रक्रिया अपनानी पड़े तो ज्ञान की प्राप्यता में विलम्ब लगेगा। इसलिये जब तक विज्ञान–विशेषज्ञ अपने देश में अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करते, तब तक प्रामाणिक साहित्य–सृजन अधूरा ही बना रहेगा।

वैसे विगत 100 वर्षों से भी अधिक काल से हिन्दी में विज्ञान लेखन न्यूनाधिक मात्रा में होता रहा है। इससे भी पूर्व मराठी में 1819 ई० से तथा बंगला में 1818 ई० में विज्ञान लेखन शुरू हुआ था। किन्तु

गति मन्द थी जिसका कारण उत्साही लेखकों का अभाव तथा पत्र–पत्रिकाओं की न्यूनता रही है। प्रारम्भिक लेखक शायद स्वान्तः सुखाय लिख रहे थे। उनके समक्ष पारिभाषिक शब्दों का अभाव था। वे अपनी बुद्धि के अनुसार शब्द बना रहे थे। उनमें अपनी भाषा तथा देश का प्रेम ही मुख्य था। धीर–धीरे लोग अनुभव करने लगे कि कालान्तर में उन्हें देशी भाषा में ही विज्ञान की आवश्यकता होगी इसलिये लेखकों की संख्या भी बढ़ने लगी।

1913 में प्रयाग में 'विज्ञान परिषद्' की स्थापना हो जाने पर विज्ञान प्रेमी लेखकों के लिये नया आधार मिला। 1915 से अद्यावधि "विज्ञान" मासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इतना ही नहीं, स्वतन्त्रता के पूर्व 'विज्ञान परिषद' से विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में विविध साहित्य रचा गया जिसमें औद्योगिक साहित्य उल्लेखनीय है। उस समय शिक्षित बेरोजगारों के लिये यह साहित्य उपयोगी सिद्ध हुआ। चूँकि विज्ञान परिषद् की स्थापना में विश्वविद्यालयों के योग्य शिक्षकों का हाथ था इसलिये उन्होंने स्वयं विज्ञान में लेखन किया, अपने शिष्यों को लिखने का प्रशिक्षण दिया और 30 - 35 वर्षों में हिन्दी क्षेत्र में तमाम लेखकों को ला खड़ा किया। शायद ही कोई विज्ञान लेखक रहा हो, जिसका सम्बन्ध 'विज्ञान परिषद्' से न रहा हो। अन्य प्रान्तों में भी स्वतन्त्रता के पूर्व इसी उत्साह से कार्य चला।

स्वतन्त्रतापूर्व तक हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता शैशवास्था में थी किन्तु विज्ञान की विविध पत्रिकाओं के सम्पादकों में उल्लेखनीय कर्मनिष्ठा एवं दूरदर्शिता थी। उनमें जनसेवा का भाव सर्वोपरि था और लोकप्रियकरण के लिये शायद यह सबसे पहली शर्त है। प्रयाग में ही 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना के बाद उसके वार्षिक सम्मेलनों में प्रतिवर्ष विज्ञान परिषदों की आयोजना की जाने लगी तो सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक हिन्दी के मंच से अपनी बातों, अपनी योजनाओं की धोषणा करने लगे। उस समय हिन्दी साहित्य के कर्णधारों को लग रहा था कि विज्ञान के लेखक भी उन्हीं के अंग हैं और इस तरह सृजित विज्ञान साहित्य हिन्दी साहित्य का अंग है। हिन्दी में विज्ञान लोकप्रियकरण को यहीं से ठोस आधार भी मिला। फिर तो विज्ञान पत्रिकाओं की धूम मच गयी। 1925 ई० के पूर्व हिन्दी में विज्ञान विषयों की 42 पत्रिकायें थीं जिनके मूल्य

कम थे, ग्राहक संख्या सीमित थी किन्तु ये पत्रिकायें बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश — सभी प्रान्तों से निकल रही थीं। इससे अज्ञातनामा सम्पादकों की सम्पादन कुशलता एवं हिन्दी की व्यापकता या लोक ग्राहकता का परिचय मिलता है।

स्मरण रहे कि विज्ञान के लोकप्रियकरण में अनुवाद की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। गोष्ठियों एवं सेमिनारों में भी हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक निबन्ध प्रस्तुत किये जाते हैं। बाल विज्ञान लेखन एवं लोकप्रिय विज्ञान लेखन के सम्बन्ध में कार्यशालायें आयोजित हुई हैं जिनमें विज्ञान परिषद् प्रयाग, सी०एस०आई०आर०, नई दिल्ली, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर तथा भाषा निधि, लखनऊ के प्रयास उल्लेखनीय हैं।

विज्ञान के लोकप्रियकरण में लगी सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाओं की लम्बी सूची है फिर भी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, सी. एस. आई. आर., आई. सी. एम. आर., आई. सी. ए. आर., एन. आर. डी. सी. (सभी नई दिल्ली), देश के विभिन्न कृषि प्रौद्योगिक विश्वविद्यालयों, विभिन्न आई. आई. टी. के हिन्दी कक्ष, एन. सी. एस. टी. सी, एन. सी. ई. आर. टी., एन. बी. टी., उ.प्र., म.प्र., हरियाणा, बिहार तथा राजस्थान की हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों, विज्ञान परिषद् प्रयाग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

चूँकि 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' विज्ञान के लोकप्रियकरण के कार्य में लगी हुयी प्राचीनतम संस्थाओं में से एक है एतदर्थ 'विज्ञान प्रसार' नई दिल्ली ने स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयास से सम्बन्धित आयोजनों की शृंखला में विज्ञान परिषद् प्रयाग को अग्रणी संस्था मानते हुये यहीं से इसकी शुरुआत की। हमने सहर्ष इस पुनीत गवेषणा कार्य को स्वीकार करते हुये स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिये उत्तरदायी विशिष्ट लेखकों के योगदान पर विगत 28, 29 जनवरी 1996 को विस्तृत चर्चा की। अपने आदरणीय पूर्वजों का पुण्य स्मरण करते हुये उनके 'विज्ञान दीप लेकर कहाँ तक पहुँचे थे चरण' का मति अनुरूप यथाशक्ति अनुसंधान किया जिसका विवरण आप पुस्तक के आगामी पृष्ठों में पायेंगे। शब्दावली के अभाव तथा अन्य सुविधाओं के अभावों के बावजूद अपनी निष्ठा, लगन एवं अथक परिश्रम के बल पर इन पूर्वजों ने जो विज्ञान

साहित्य रचा वह अपने आप में स्तुत्य एवं सराहनीय होने के साथ–साथ नई पीढ़ी के लिये निःसन्देह प्रेरणादायक हैं। आइये, इन महान विभूतियों के लेखन–कौशल की झलक देखें।

यह तो रही बात स्वतन्त्रतापूर्व के लोकप्रियकण के प्रयासों की। किन्तु जब हम स्वतन्त्रता परवर्ती विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयासों पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि एक नवीन पीढ़ी भी पूरे उत्साह के साथ इस लेखन–यज्ञ में अपनी हवि दे रही है। इन लेखकों का उत्साहवर्धन एवं सहयोग बचे हुये स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान लेखक कर रहे हैं। विज्ञान का क्षितिज अत्यन्त व्यापक हो जाने के कारण अब विज्ञान विशेषज्ञों को हिन्दी एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं में विज्ञान लेखन करने की आवश्यकता है ताकि उत्कृष्ट एवं प्रामाणिक विज्ञान–साहित्य जनसाधारण को सुलभ हो सके।

हम डा० नरेन्द्र सहगल, निदेशक 'विज्ञान प्रसार' तथा डा० सुबोध महन्ती के कृतज्ञ हैं जिन्होंने उपर्युक्त गोष्ठी में पठित निबन्धों को सम्पादित करने का भार हम पर डालकर उन्हें पुस्तक रूप देने का उत्तम कार्य किया है।

इलाहाबाद
25/05/96

शिवगोपाल मिश्र
दिनेश मणि
विज्ञान परिषद, प्रयाग

गणितज्ञ-ज्योतिषी : शंकर बालकृष्ण दीक्षित

गुणाकर मुले*

सन् 1896 की बात है, यानी आज से ठीक सौ साल पहले की। पुणे के आर्यभूषण प्रेस[1] में एक 'मराठी ग्रन्थ' छप रहा था। छपाई रुक–रुक कर चल रही थी, डेढ़ साल से। वजह यह थी कि लेखक अपनी पांडुलिपि में संशोधन करते जाते थे, बीच–बीच में नई जानकारी जोड़ते जा रहे थे। मगर प्रेस के मालिक श्री हरिनारायण गोखले इससे कतई परेशान नहीं थे। पुस्तक के लेखक उनके अपने गाँव के थे, उनके बालसखा थे। गोखले जानते थे कि विद्वज्जगत में पुस्तक का खूब स्वागत होगा।

सचमुच ही, मराठी जगत में उस पुस्तक के प्रकाशन की आतुरता से प्रतीक्षा की जा रही थी। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने भी लेखक से अनुरोध किया था कि "यदि इस ग्रंथ का अंग्रेजी में शीघ्र अनुवाद नहीं हुआ तो इसके कुछ भागों का अनुवाद तो करवाना ही पड़ेगा।"[2]

सौ साल पहले प्रकाशित वह मराठी ग्रंथ था — *भारतीय ज्योतिःशास्त्र,* और उसके लेखक थे – *शंकर बालकृष्ण दीक्षित।*

ग्रंथ भारतीय भाषा में लिखा गया हो, मगर अपने विषय की वह अद्वितीय कृति हो, तो उसे पढ़ने के लिए विदेशी विद्वान भारतीय भाषा सीखने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के हिंदी में रचित प्रख्यात ग्रंथ *भारतीय प्राचीन लिपिमाला*[3] के मामले में ऐसा ही हुआ है। भारतीय पुरालिपियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए ओझा के इस ग्रंथ का अध्ययन अपरिहार्य था, इसलिए यूरोप के कई विद्वानों को पहले हिंदी का ज्ञान अर्जित करना पड़ा।

दीक्षित का *भारतीय ज्योतिःशास्त्र* भी इसी कोटि का ग्रंथ है। ओझा और दीक्षित, दोनों ही अपने ग्रंथ हिन्दी में लिखने में समर्थ थे, मगर इन्हें उन्होंने अपनी मातृभाषाओं में ही लिखना पसन्द किया। दीक्षित के ग्रन्थ को पढ़ने के लिए देश–विदेश के अनेक विद्वानों को मराठी

---

*सी-210,पाण्डवनगर, दिल्ली-92

भाषा सीखनी पड़ी। अंग्रेजी में इस ग्रन्थ के पहले भाग का अनुवाद 1969 ई० में प्रकाशित हुआ और दूसरे भाग का 1981 ई० में।[4] हिन्दी में इस ग्रन्थ का अनुवाद पहली बार 1957 ई० में छपा।[5]

शं. बा. दीक्षित के कृतित्व की चर्चा कर रहा हूँ तो मुझे महाराष्ट्र के प्रख्यात विद्वान इतिहासाचार्य विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (1863–1926 ई०) का एक विचारो त्तेजक निबन्ध याद आ रहा है, जो उन्होंने 1913 ई० में लिखा था। निबन्ध है– 'महाराष्ट्र के बुद्धिमान, प्रतिभावान और कर्तृत्ववान व्यक्तियों का मूल्यमापन'।[6] इसमें राजवाडे 1913 ई० से पहले की सौ साल की कालावधि में महाराष्ट्र में हुए बुद्धिमान, प्रतिभावान और कर्तृत्ववान लोगों की जो पहली सूची प्रस्तुत करते हैं उसमें 150 नाम हैं। इस सूची में शंकर बालकृष्ण दीक्षित (ज्योतिष–इतिहासकार) के अलावा केरो लक्ष्मण छत्रे (गणितज्ञ व ज्योतिषी)[7], बापू देव शास्त्री (ज्योतिष)[8] और रैंगलर परांजपे (गणितज्ञ)[9] का भी समावेश किया गया है। आगे राजवाडे बुद्धिमान और प्रतिभावान व्यक्तियों की विशेषताएँ बताते हैं, दोनों के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हैं। वे बुद्धिमानों को भी दो वर्गों में बाँटते हैं — चिरस्थायी काम करने वाला बुद्धिमान, और स्वल्पसाहसी बुद्धिमान। फिर वे चिरस्थायी काम करने वाले बुद्धिमान व प्रतिभावान लोगों का पहले की सूची से चुनाव करके 43 व्यक्तियों की एक नई सूची प्रस्तुत करते हैं। इस सूची में केवल दो विज्ञानी हैं — रैंगलर रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे और शंकर बालकृष्ण दीक्षित।

फिर राजवाडे उपर्युक्त सूची से महाराष्ट्र के प्रतिभावान व्यक्तियों का चयन करते हैं। उस नई सूची में सिर्फ सात व्यक्ति हैं, और उनमें से एक हैं– शंकर बालकृष्ण दीक्षित। राजवाडे ने अंततः महाराष्ट्र की सात प्रतिभाओं का चयन करके श.बा. दीक्षित को महादेव गोविंद रानाडे (1842–1901 ई०), बाल गंगाधर तिलक (1856–1920 ई०) और गोपाल कृष्ण गोखले (1866–1915 ई०) जैसे दिग्गजों की पँक्ति में बिठा दिया।[10]

राजवाडे के अनुसार, अनंत काम करने की अनंत शक्ति का नाम है प्रतिभा।[11] दीक्षित के कुलजमा 45 साल के जीवन–कार्य पर दृष्टिपात करें, तो प्रतिभा की यह परिभाषा सहज स्पष्ट हो जाती है।

महाराष्ट्र का रत्नागिरि जिला प्रतिभाएँ पैदा करने में काफी प्रसिद्ध रहा है।[12] इस जिले के दापोली तालुके के मुरुड गाँव में 20–21 जुलाई,

1853 को चितपावन ब्राह्मण परिवार में शंकर बालकृष्ण दीक्षित का जन्म हुआ। कुछ सदियों पहले एक सिद्ध पुरुष ने मुरुड गाँव बसाया था। दीक्षित के वैशम्पायन कुल का मूल पुरुष उस सिद्ध का शिष्य था। इसलिए वैशम्पायन घराने को गाँव के पुरोहित और धर्माधिकारी की वृत्ति मिली थी। शंकर के पिता का नाम बालकृष्ण और माता का नाम दुर्गा था।

बचपन में शंकर की पढ़ाई करीब दो साल तक मुरुड की ग्रामीण पाठशाला में और तदन्तर 9 से 15 साल की आयु (अक्टूबर 1868) तक वहीं के सरकारी स्कूल में हुई। उसी दौरान शंकर ने संस्कृत और वेद का भी थोड़ा बहुत अध्ययन किया। उसके बाद के दो वर्ष उन्होंने दापोली कोर्ट में उम्मेदवारी करने में गुजारे। साथ ही अंग्रेजी का भी कुछ ज्ञान अर्जित किया।

फिर अक्तूबर 1870 में, साढ़े सत्रह साल की आयु में, शंकर दीक्षित पुणे पहुँचे और वहाँ के ट्रेनिंग कालेज (प्रशिक्षण महाविद्यालय) में दाखिल हुए। वहाँ तीन साल रहकर अंतिम परीक्षा में प्रथम श्रेणी का प्रमाणपत्र प्राप्त किया। उस दौरान वे अंग्रेजी सीखने के लिए दो साल तक सबेरे एक घंटे अंग्रेजी स्कूल में जाया करते थे। शंकर ने 1874 ई० में, 21 साल की आयु में, मैट्रिक की परीक्षा पास की।

चाहने पर भी, अनेक अड़चनों के कारण, शंकर आगे की पढ़ाई के लिए कालेज में नहीं जा सके। उन्होंने अध्यापक का पेशा अपनाया। आगे के 8 साल तक वे रेवदंडा और थाने के मराठी स्कूलों में हेडमास्टर रहे। फिर अक्तूबर 1889 तक बार्शी के अंग्रेजी स्कूल में सहायक अध्यापक रहे। उसके बाद पाँच साल तक, यानी जून 1894 तक, वे धुलिया के ट्रेनिंग स्कूल में सहायक अध्यापक थे।

उपर्युक्त जानकारी का इसलिए भी महत्व है कि इसी दौरान, अध्यापन कार्य करने के साथ–साथ, दीक्षित ने भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योतिष का भी गहन अध्ययन किया। इतना ही नहीं, इसी दौरान उन्होंने भारतीय ज्योतिष के 500 से भी अधिक ग्रन्थों की छानबीन की और अपने प्रख्यात ग्रन्थ *भारतीय ज्योति–शास्त्र* की रचना की। दीक्षित जुलाई 1894 में पुणे आए, वहाँ के ट्रेनिंग कालेज में वे सहायक अध्यापक

नियुक्त हुए, तभी जाकर उनके *भारतीय ज्योतिःशास्त्र* ग्रन्थ का प्रकाशन संभव हुआ। इस ग्रंथ के प्रकाशन के करीब दो साल बाद पुणे में विषमज्वर से 27 अप्रैल, 1898 को शं०बा० दीक्षित का देहान्त हुआ।

आज दीक्षित देश–विदेशों में प्रमुखतः भारतीय ज्योतिष के इतिहास संबंधी अपने ग्रंथ के लिए ही विख्यात हैं। मगर इस ग्रंथ के अलावा भी उन्होंने मराठी और अंग्रेजी में बहुत–सा लेखन किया है। मराठी में प्रकाशित उनकी पुस्तकें हैं: *विद्यार्थी बुद्धिवर्धिनी* (1876 ई०), सृष्टि चमत्कार (1882 ई०), *ज्योतिर्विलास* (1892 ई०), *भारतीय ज्योति–शास्त्र* (1896 ई०), धर्म मीमांसा (1895–97 ई०) और सोपपत्तिक अंकगणित (1897 ई०)। वे अपनी *भारतीय प्राचीन भूवर्णन* पुस्तक को पूरा नहीं कर पाए।

दीक्षित की *ज्योतिर्विलास* (अथवा रात्रि की दो घटिका की मौज या अंतरिक्ष का सैर–सपाटा) पुस्तक को मराठी जगत में बड़ी प्रसिद्धि मिली है। इसमें सरल व मनोरंजक भाषा में विश्व की रचना, इसकी अनंतता, इसके दृढ़ नियम और प्राचीन एवं आधुनिक ज्योतिष की जानकारी दी गई है। इस पुस्तक का नई जानकारी से युक्त छठा संस्करण लेखक के पुत्र रामचंद्र शंकर दीक्षित ने 1948 ई० में प्रकाशित किया था।

दीक्षित का अंग्रेजी लेखन काफी महत्वपूर्ण है। उन्होंने और रॉबर्ट सेवेल ने मिलकर *इंडियन कैलेंडर* नामक ग्रंथ लिखा जो 1896 ई० में लंदन से प्रकाशित हुआ। इसमें 300 ई० से 1900 ई० तक की तिथियों तथा तारीखों का तादात्म्य स्थापित करने वाली जो सारणी दी गई है वह दीक्षित ने ही तैयार की थी। जे०एफ० फ्लीट ने 1888 ई० में *गुप्ताज इन्स्क्रिप्शन* नामक ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने गुप्त शासकों और उनके समकालीन राजाओं के शिलालेखों तथा दानपत्रों की जानकारी दी है। इस अनुपम ग्रंथ की रचना में दीक्षित ने फ्लीट की मदद की थी। दीक्षित ने *इंडियन ऐंटिक्वेरी* व *एपिग्राफिका इंडिका* पत्रिकाओं में और *नेटिव ओपिनियन* दैनिक में विभिन्न विषयों पर लेख लिखे। इसी तरह, उन्होंने *शालापत्रक* और *ज्योतिषकल्पतरु* नामक मराठी मासिकों में भी लेख लिखे।

दीक्षित अध्यापन–कार्य करते हुए इतना विपुल लेखन–कार्य कैसे कर पाए? स्वयं बताते हैं–– "ज्योतिष मेरा वंश–परंपरागत विषय नहीं

है। सर्वदा विद्याव्यासंग में रहने के स्वभाव और समाचार पत्र पढ़ने का व्यसन होने के कारण मेरा ध्यान सायनवाद की ओर और उसके द्वारा ज्योतिषशास्त्र में लगा। इस विषय का मुझे थोड़ा बहुत जो कुछ ज्ञान है सब स्वसम्पादित है। कुछ लोग समझते हैं कि मुझे ज्योतिष का कुछ ऐसा ज्ञान है जो कि औरों के लिए दुष्प्राप्य है, परन्तु साधारण मराठी, संस्कृत और इंगलिश जानने वाला बुद्धिमान गणितज्ञ और जिज्ञासु मनुष्य मेरे जितना ज्योतिष ज्ञान पाँच–छः महीनों में सहज सम्पादित कर सकता है।"[13]

स्मरण रहे कि राजवाडे ने शं०बा० दीक्षित को महान प्रतिभाओं की पंक्ति में स्थान दिया था। इसलिए ऊपर दीक्षित ने जो बातें लिखीं हैं वे उनकी जैसी प्रतिभा के लिए ही संभव हैं। प्रमाण भी वे ही प्रस्तुत करते हैं –– "आज तक ज्योतिष सीखने की इच्छा से मेरे पास बहुत से लोग आए, परन्तु उनमें से अंत तक कोई भी नहीं टिका।"[14]

मगर यह 'सायनवाद' क्या है, जिसके कारण अध्यापक दीक्षित ज्योतिष के गहन अध्ययन–अन्वेषण के लिए प्रेरित हुए? वे बताते भी हैं –– "लगभग शक 1802 (1880 ई०) से हमारा ध्यान सायन पंचांग की ओर और उसके द्वारा ज्योतिष शास्त्र की ओर गया।"[15] सन् 1880 में दीक्षित की उम्र 27 साल थी और उस समय वे थाना के एक मराठी स्कूल में हेडमास्टर थे। उस समय महाराष्ट्र में सायन–निरयन पंचांग का विवाद काफी जोर पकड़ता जा रहा था। सायन पंचांग के एक पक्षधर बनकर शं०बा० दीक्षित भी उस विवाद में कूद पड़े।

खगोल में सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि के स्थान बताने के लिए प्राचीन ज्योतिषियों ने नक्षत्रों तथा राशियों की योजना प्रस्तुत की। परन्तु नक्षत्र या राशि का मापन आकाश के किस स्थान से किया जाए, इसके लिए दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं –– निरयन और सायन। आकाश के एक विशिष्ट स्थिरबिंदु को आरंभबिंदु मानकर वहाँ से पूर्व की ओर नक्षत्र अथवा राशि का मापन शुरू किया जाए, तो वह निरयन पद्धति कहलाती है। अधिकांश ज्योतिषियों ने रेवती नक्षत्र के लगभग क्रांतिवृत्त (रविमार्ग) पर स्थित जीटा–पीशियम तारे को आरंभबिंदु के रूप में स्वीकार किया है। इस आरंभ बिंदु से पूर्व की ओर 13^0 20′ का एक–एक विभाग लिया

जाए तो प्रत्येक विभाग निरयन नक्षत्र होगा अैर 30^0 का एक–एक विभाग लिया जाए तो निरयन राशि होगी।

दूसरी ओर यदि वसंत संपातबिंदु (खगोलीय विषुवत वृत्त और क्रांतिवृत्त जिन दो स्थानों पर एक–दूसरे को काटते हैं उन्हें संपातबिंदु कहते हैं; इनमें से एक है वसंत संपातबिंदु और दूसरा है शरद संपातबिंदु) को आरंभबिंदु मानकर पहले की तरह पूर्व की ओर मापन करते जाएं, तो 13^0 20′ के सायन नक्षत्र और 30^0 की सायन राशियाँ प्राप्त होती हैं। अयन का अर्थ है चलना। संपातबिंदु प्रतिवर्ष 50.25 विकला विलोम दिशा में चलता है, इसलिए यह बिंदु 25,800 वर्षों में खगोल की एक परिक्रमा पूरी करता है। इस तरह, अयन की इस स्थिति को ध्यान में रखकर चलित बिंदु से मापन करने की योजना को सायन पद्धति कहते हैं। स्थिरबिंदु से संपातबिंदु के अंतर को अयनांश कहते है ं।

निरयन पद्धति में तारों की पूर्वनिर्धारित स्थिति उनकी आकाशस्थ स्थिति से प्रायः मेल खाती है, मगर इस पद्धति में ऋतुओं के साथ मेल नहीं बैठता। सायन पद्धति में ऋतुओं के साथ मेल बैठता है, क्योंकि ऋतु संपातबिंदु पर ही आधारित होते हैं। मगर इस पद्धति में तारों के साथ मेल नहीं बैठता।

भारत के लिए कौन–सा पंचांग –– निरयन या सायन –– उपयुक्त है, इस बात को लेकर लंबे समय से विवाद चलता आ रहा है, आज भी जारी है। सायन पद्धति में ऋतुओं साथ मेल बैठता है और ग्रहण, युति आदि आकाशीय घटनाएँ दृक्प्रत्यय के अनुसार होती हैं, इसलिए पिछली सदी में सायन पंचांग तैयार करने का एक नया आंदोलन शुरू हुआ था। इस आंदोलन के समर्थक पश्चिम के नये खगोल–विज्ञान के नियमों को अपनाकर पंचांग को सुधारना चाहते थे, वेधकार्य को महत्व देते थे। मगर धर्मकर्म और मुहूर्त को महत्व देनेवाले ज्योतिषी निरयन पद्धति को ही पसंद करते रहे।

बापूदेव शास्त्री वेधसिद्ध ज्योतिष के समर्थक थे, इसलिए उन्हें सायन पद्धति ही पसंद थी। इसके प्रचार के लिए उन्होंने कई निबंध लिखे, पंचांग भी बनाना आरंभ कर दिया था, परन्तु काशी के पंडितों ने उनका विरोध किया। मजे की बात यह कि पं० सुधाकर द्विवेदी[16] इस विरोधी दल के नेता थे। द्विवेदीजी का मत था कि तिथियाँ अदृश्य

घटनाएँ हैं, इसलिए उनका निर्धारण *सूर्य–सिद्धान्त* के अनुसार होना चाहिए; ग्रहण दृश्य घटनाएँ हैं, इसलिए उनकी गणना आधुनिक ज्योतिष के अनुसार होनी चाहिए।[17] विरोध के सामने बापूदेव शास्त्री को झुकना पड़ा। काशीराज के आश्रय में 1876 ई० से उन्होंने भी निरयन पंचांग छापना आरंभ कर दिया, मगर उनका यह पंचांग नॉटिकल अलमनक से बनाया जाता था।

महाराष्ट्र में पंचांग सुधार का कार्य केरोपंत छत्रे के प्रयासों से शुरू हुआ। केरोपंत छत्रे ने आबासाहेब पटवर्धन के सहयोग से 1865 ई० से नॉटिकल अलमनक पर आधरित एक पंचांग (पटवर्धनी पंचांग) निकालना शुरू किया। मगर यह निरयन पद्धति पर आधारित था, इसलिए इसे पूर्ण सुधार वाला पंचांग नहीं माना गया। इस बात के खूब प्रयास किए गए कि छत्रे सायन पद्धति को अपनाकर एक आधुनिक शुद्ध पंचांग तैयार करें, परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली।

आधुनिक सायन पंचांग को जन्म देने का श्रेय विसाजी रघुनाथ लेले[18], जनार्दन बालाजी मोडक[19] और शंकर बालकृष्ण दीक्षित को है। दीक्षित स्वयं लिखते हैं –– "इसके जन्मदाता तीन हैं। लेले, जनार्दन बालाजी मोडक और मैं। इन प्रत्येक के मन में सायन पंचांग की कल्पना स्वयं उद्‌भूत हुई। इनमें से आधुनिक सायन पंचांग के मुख्य उत्पादक विसाजी रघुनाथ लेले हैं।"[20] आगे दीक्षित बताते हैं –– "लेले, मोडक और मैंने थाना के अरुणोदय नामक समाचारपत्र में सायन पंचांग संबंधी अनेक लेख लिखे। उस पत्र का आश्रय मिल जाने से शक 1804 और 1805 (1882–83 ई०) में उस पत्र के साथ सायन पंचांग का एक–एक पक्ष प्रकाशित हुआ।"[21]

सायन पंचांग का स्वतंत्र प्रकाशन, तुकोजीराव होलकर के सहयोग से, शक 1806 (1884 ई०) से आरंभ हुआ। तुकोजीराव के देहावसान के बाद आश्रय बंद हो गया और दूसरा कोई आश्रय नहीं मिला। दीक्षित आगे लिखते हैं –– "फिर भी लेले ने शक 1810 (1888 ई०) से आरंभ कर इधर चार–पांच साल प्रायः अपने व्यय से पंचांग छपाया। शक 1813 (1891 ई०) से आरंभ कर इधर चार वर्षों से मैं प्रायः स्वकीय व्यय से छपा रहा हूँ। शक 1811 के अंत (1890 ई०) में जनार्दन बालाजी मोडक का और शक 1817 (1895 ई०) में लेले का देहावसान हुआ। शक 1818

(1896 ई०) से पंचांग के पक्ष थाना के अरुणोदय पत्र के कर्ता उसके साथ–साथ छापते हैं। इस पंचांग का गणित प्रथम वर्ष लेले ने किया। शक 1805 का गणित तीनों ने मिलकर किया और उसके बाद 13 वर्षों से गणित तथा उस संबंधी अन्य सब कार्य मैं करता हूँ। पटवर्धनी पंचांग की तरह इसके गणित का पारिश्रमिक कोई नहीं देता। इतना ही नहीं, पंचांग की बिक्री कम होने के कारण उसे छपने के व्यय की व्यवस्था भी हमी को करनी पड़ती है।"[22]

उपर्युक्त जानकारी से स्पष्ट हो जाता है कि शं०बा० दीक्षित ने सायन पंचांग के प्रचार के लिए प्रयत्न करने के साथ–साथ ज्योतिष शास्त्र के अपने ज्ञान को भी किस तरह गहन–गंभीर बनाया। यह जानकारी उनकी प्रतिभा और कर्तव्यनिष्ठा पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती है।

'सायनवाद' के कारण दीक्षित एक ओर आधुनिक सायन पंचांग को प्रचारित करने की ओर प्रवृत्त हुए, तो दूसरी ओर भारतीय ज्योति–शास्त्र जैसा मराठी में एक ग्रंथ लिखने का विचार भी उनके मन में मँडराने लगा। बताते हैं —– "प्राचीन ग्रंथों को देखते–देखते तारतम्यपूर्वक उनकी योग्यता, उनके समय का पौर्वापर्य और ज्योतिष–शास्त्र की वृद्धि का क्रम जानने की प्रवृत्ति हुई और मन में यह विचार आने लगा कि प्रस्तुत ग्रंथ सरीखा यदि कोई ग्रंथ बन जाता तो बड़ा अच्छा होता। शक 1806 (1884 ई०) में इस प्रांत में पंचांग के विषय में विशेष आंदोलन हो रहा था।"[23] उस समय दीक्षित धुलिया के ट्रेनिंग स्कूल में सहायक अध्यापक थे।

उसी समय ग्रंथ के प्रणयन के लिए एक और प्रेरक कारण उपस्थित हुआ। दिसम्बर 1884 में पुणे की 'दक्षिणा प्राइज कमेटी' ने विज्ञप्ति निकाली कि 'हमारे पंचांगों की वर्तमान दुरावस्था का विचार हमारे ज्योतिषशास्त्र के इतिहास सहित किसी ग्रंथ के रूप में होना चाहिए।' ग्रंथ के लिए 450 रु० पारितोषिक रखा गया था। ग्रंथ को पूरा करने की अवधि दो साल यानी 1886 ई० के अन्त तक थी। विषय दीक्षित की रुचि का था, मगर उस समय उनके पास पर्याप्त ग्रंथ सामग्री नहीं थी, इसलिए उन्होंने कमेटी से समय बढ़ाने का अनुरोध किया। समय मिला भी। दीक्षित ने नवंबर 1887 में ग्रंथ लिखना आरंभ किया और अक्तूबर 1888 में, यानी एक साल के भीतर, उसे पूरा करके कमेटी के पास भेज दिया। दीक्षित बताते हैं —– "कमेटी ने जिन

विषयों का विवेचन करने को कहा था उसकी अपेक्षा बहुत अधिक विषयों का विस्तृत वर्णन उसमें था। कमेटी ने ग्रंथ पसंद किया और हमें 1891 ई० में पूर्ण पारितोषिक मिला। उसे छपवाने की भी इच्छा हुई, परन्तु वह अधिक व्यय का कार्य मुझसे निभने योग्य नहीं था।"[24]

उसी दौरान पंचाग विवेचन संबंधी ग्रंथ लिखने के लिए गायकवाड़ सरकार की ओर से एक विज्ञापन निकला। उसके लिए एक हजार रुपए का 'बाबाशाही पारितोषिक' रखा गया था। दीक्षित ने 1893 ई० में अपने ग्रंथ का आवश्यक भाग गायकवाड सरकार के यहाँ भेज दिया। फैसला हुआ और उन्हें पारितोषिक मिला। जुलाई 1894 में दीक्षित पुणे आए–वहाँ के ट्रेनिंग कालेज में सहायक अध्यापक नियुक्त होकर। उसके बाद ही मार्च 1895 से ग्रंथ को छपवाने का काम आरभ हुआ। ग्रंथ की छपाई 1896 ई० के अंत में पूरी हुई। ग्रंथ में बीच–बीच में जोड़ी गई विस्तृत टिप्पणियों से स्पष्ट पता चलता है कि छपाई के समय भी दीक्षित का नए ग्रंथों के वाचन और अन्वेषण का कार्य जारी था।

ग्रंथ के लिए सामग्री जुटाने में दीक्षित ने बहुत परिश्रम किया। फिर भी वे अपने ग्रंथ को परिपूर्ण नहीं मानते थे। लिखते हैं — "केवल पुणे के आनंदाश्रम में भिन्न–भिन्न लगभग 500 ज्योतिष–ग्रंथ हैं। मैने वे सब देखे हैं, परंतु इस ग्रंथ में उनमें से बहुतों का वर्णन नहीं आया है। ... आफ्रेच सूची में लगभग 2000 ज्योतिष–ग्रंथ हैं।[25] वे सब मिलें कैसे और उन्हें देखा कब जाए। फिर भी ज्योतिष तथा अन्य ग्रंथों की ज्योतिष संबंधी महत्वपूर्ण सभी बातें इसमें आ गई हैं।"[26]

दीक्षित के इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने मूल ग्रंथों की छानबीन करके, स्वयं गणित करके, अपने निष्कर्ष निकाले हैं। बताते हैं – "कुछ ग्रंथ मुझे स्वतः पढ़ने को नहीं मिल सके, अतः कहीं–कहीं उनकी बातें अन्य ग्रंथ या ग्रंथकार के आधार पर लिखनी पड़ी हैं। ऐसे स्थलों में उस ग्रंथ या ग्रंथकार का नाम लिख दिया है। अन्य ग्रंथों के तात्पर्यार्थ या उद्धरण सर्वतः उन ग्रंथों को पढ़कर लिखें हैं और उनके नाम सर्वत्र दे दिए हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में एक भी पंक्ति दूसरे ग्रंथ के अनुवाद स्वरूप अथवा दूसरों के आधार पर नहीं लिखी है। महत्व के बहुत से ज्योतिष–ग्रंथों का मैंने स्वयं संग्रह किया है। जहाँ कहीं यह लिखा है कि अमुक बात गणित द्वारा सिद्ध

होती है वहाँ स्वतः ध्यानपूर्वक गणित किया है और मेरा विश्वास है कि वह ठीक है, तथापि भ्रम मनुष्य का धर्म है, इसलिए उसमें दृष्टिदोष हो सकता है।"[27]

दीक्षित के ग्रंथ में जो अनेकानेक उद्धरण और विस्तुत टिप्पणियाँ हैं उन्हें देखने से उनकी उपर्युक्त बात सहज प्रमाणित हो जाती है। एक उदाहरण लीजिए : वराहमिहिर (ईसा की छठी सदी) की पंचसिद्धांतिका में पुराने पाँच सिद्धांतों का वर्णन है। पुणे के डेक्कन कालेज के पुस्तकालय में *पंचसिद्धांतिका* की दो हस्तलिपियाँ थीं, मगर वे दोनों ही अशुद्ध व अपूर्ण थीं। दीक्षित ने उनके आधार पर अपनी एक स्वतंत्र प्रति तैयार की। फिर उसके आधार पर गणित करने में जुट गए। तब उन्हें पता चला कि उसमें जिन सूर्यादि सिद्धांतों का वर्णन है वह वर्तमान सिद्धातों से भिन्न है। अन्य शब्दों में, वराहमिहिर ने जिस सूर्य–सिद्धांत की जानकारी दी है वह वर्तमान सूर्य–सिद्धांत से भिन्न रहा है। दीक्षित को यह बात 1887 ई० में स्पष्ट हो गई थी। लिखते हैं – "चूँकि· गणित से तथा अन्य प्रमाणों द्वारा यह बात उत्पन्न होती है, अतः इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। *पंचसिद्धांतिका* पुस्तक के अत्यंत अशुद्ध होने से तथा उस पर कोई टीका न होने के कारण उसके बहुत से श्लोकों का अर्थ नहीं लगता। फिर भी जिन बहुत सी महत्वशाली बातों का पता लगा है उसके आधार पर हम उन सिद्धान्तों का जो उस समय उचित मालूम हुआ है, तदनुसार क्रमशः यहाँ पांचों का सक्षिप्त वर्णन कर रहें हैं।"[28]

उपर्युक्त कथन के संदर्भ में दीक्षित की पादटिप्पणी है: "डा० थीबो ने सन् 1889 में डेक्कन कालेज की प्रति के आधार पर पंचसिद्धांतिका छपवायी है। पं० सुधाकर द्विवेदी ने उस पर नवीन टीका लिखी है। हमें उसे देखने का अवसर अभी तक नहीं मिला। ऊपर *पंचसिद्धांतिका* की जो महत्व की बातें बतलायी हैं वे सब मैनें स्वयं निकाली हैं।"[29] दीक्षित ने अपना ग्रंथ अक्तूबर 1888 में पूरा किया था। पंचसिद्धांतिका, डा० थीबो की अंग्रेजी टीका व भूमिका और पं० सुधाकर द्विवेदी की 'पंचसिद्धांतिका प्रकाश' संस्कृत टीका सहित, वाराणसी से 1889 ई० में प्रकाशित हुई। दीक्षित ने पंचसिद्धांतिका के बारे में 1890 ई० में *इंडियन ऐंटिक्वेरी* में कुछ लेख प्रकाशित किए थे।

मूल मराठी पुस्तक का पूरा नाम है – *भारतीय ज्योतिःशास्त्र अथवा भारतीय ज्योतिष्शास्त्रा वा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास*। इस नामकरण के बारे में दीक्षित का स्पष्टीकरण है – ".हमारे देश में आकाशस्थित ज्योतियों की गति–स्थिति इत्यादि का तथा ज्योतिष शास्त्र के अन्य सब अंगों का विचार उत्पन्न होने के बाद तत्संबंधी ज्ञान क्रमशः कैसे बढ़ता गया, इसका इतिहास इस पुस्तक में लिखा गया है। हमारे देश का प्राचीन नाम भारतवर्ष, भरतखंड या भारत है। इसमें भारतवर्ष के ज्योतिषशास्त्र का इतिहास है, इसलिए इसका नाम 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा भारतीय ज्योतिषशास्त्र का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास' रखा है।"[30]

ग्रंथ दो भागों में विभक्त हैं–– सिद्धांतप्राक्काल और ज्योतिषसिद्धांत–काल। प्रथम सिद्धांतप्राक्काल के दो विभाग हैं–– वैदिक काल और वेदांग काल। प्रथम विभाग में वेदों की संहिताओं, ब्राह्मण–ग्रथों और उपनिषदों में आए हुए ज्योतिष संबंधी विषयों की जानकारी है। दूसरे विभाग में वेदांग–ज्योतिष, स्मृति, महाभारत आदि में वर्णित ज्योतिष संबंधी विषयों का वर्णन है। मगर इसमें बाल्मीकि–रामायण और पुराणों में आए ज्योतिष संबंधी उल्लेखों का वर्णन नहीं है। लेखक ने इसका कारण अपने समय और सामर्थ्य की सीमा बताया है। साथ ही स्पष्ट किया है –– "इस ग्रंथ में परशुराम, राम इत्यादि अवतारी पुरुषों के समय का विवेचन करने का सुझाव कुछ लोगों ने दिया था, परंतु ज्योतिष संबंधी विश्वसनीय प्रमाण, जिनके द्वारा उनका समय निश्चित किया जा सके, मुझे आज तक नहीं मिले और न तो भविष्य में मिलने की आशा है, फिर भी काल निरवध्वि है और वसुंधरा विपुला है, न जाने कब क्या होगा।"[31]

प्रथम भाग का 'उपसंहार' नामक अंतिम प्रकरण विशेष महत्व का है। इसमें लेखक ने ग्रंथों के रचनाकाल का विवेचन किया है। दीक्षित का निष्कर्ष रहा –– "ऋक्संहिता के कुछ भाग का रचनाकाल लगभग शकपूर्व 4000 वर्ष है।

तैत्तिरीयसंहिता के कुछ भाग का रचनाकाल शकपूर्व 3000 वर्ष है। ब्राह्मण शकपूर्व 3000 से 1500 पर्यंत बने हैं। ... वेदांगज्योतिष का रचनाकाल शकपूर्व लगभग 1500 वर्ष है।"[32]

भारतीय ज्योतिष की तीन शाखाएं (स्कंध) हैं – गणितस्कंध, संहितास्कंध और जातकस्कंध। गणित को सिद्धांत भी कहा जाता है। दीक्षित ने अपने ग्रंथ के दूसरे भाग में इन तीनों स्कंधों का इतिहास प्रस्तुत किया है। गणितस्कंध में प्रमुखतः ग्रहगणित का विवेचन रहता है और उसे प्रायः 11 प्रकरणों या अधिकरणों में बाँटा जाता है – मध्यमकाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, छायाधिकार आदि। ग्रंथ में गणितस्कंध के अंतर्गत इन सब का क्रमशः इतिहास दिया गया है। आरंभ में मध्यमाधिकार के अंतर्गत ही लेखक ने गणित–ज्योतिषियों और उनके ग्रंथों का इतिहास प्रस्तुत कर दिया है। अंत में अयन–चलन और वेध–परंपरा की जानकारी है। स्पष्टाधिकार में ग्रहों की स्पष्ट गति–स्थिति की जानकारी है। इसमें विभिन्न कालों के पंचांगों, सायन पंचांग शोधन आदि के बारे में जानकारी दी गई है।

ग्रंथ के दूसरे भाग के दो प्रकरणों में संहितास्कंध और जातकस्कंध से संबंधित ग्रंथों और विषयों की जानकारी है। दीक्षित की फलित–ज्योतिष में कोई विशेष आस्था नहीं थी।[33]

दूसरे भाग के 'उपसंहार' में दीक्षित ने भारतीय ज्योतिष से संबंधित कोलब्रुक, ह्विटने, बरजेस आदि विदेशी विद्वानों के मतों की समालोचना की है। महादेव गोविंद रानडे चाहते थे कि इस विवादास्पद विषय की चर्चा इस ग्रंथ में नहीं बल्कि किसी अंग्रेजी मासिक में होनी चाहिए। मगर ग्रंथ से यह भाग निकाल देना दीक्षित को उचित प्रतीत नहीं हुआ। लिखते हैं – "सब वाचकों को नहीं तो कुछ को तो यह अवश्य उपयोगी जान पड़ेगा। यदि इसका इंगलिश में अनुवाद होने का सुअवसर आया तो मेरा विस्तृत कथन यूरोपीयन विद्वानों के सामने जाएगा और उसका योग्य विचार होगा।"[34]

ग्रंथ के अंत में 'परिशिष्ट' के अंतर्गत पंचांग के नमूने, ग्रंथों व ग्रंथकारों के बारे में कुछ नई जानकारी और ज्योतिष ग्रंथों तथा ग्रंथकारों की सूचियाँ दी गई हैं।

भारतीय ज्योतिष के विकासक्रम को वैज्ञानिक और पुरोगामी दृष्टि से प्रस्तुत करनेवाला यह पहला ग्रंथ है। दीक्षित लिखते हैं – "ऐसा ग्रंथ संस्कृत में नहीं है। कालपरंपरानुसार ग्रंथों की उपयोगिता इत्यादि का विचार करने की ओर हम लोग ध्यान कम देते हैं; सौ दो सौ

वर्ष पूर्व और हजार पाँच सौ वर्ष पूर्व के ग्रंथकार की योग्यता प्रायः समान ही समझते हैं; किसी शास्त्र का इतिहास जानने की चेष्टा कम करते हैं; फिर हमारे यहां लौकिक पुरुषों का उत्कर्ष वर्णन करने का प्रचार भी बहुत कम है। मालूम होता है, इन्हीं कारणों से आज तक ऐसा ग्रंथ नहीं बना।[35] जो लोग समझते हैं कि दुनियाँ का सारा ज्ञान–विज्ञान वेदों में निहित है उन्हें दीक्षित के इस कथन पर गहराई से विचार करना चाहिए: बेहतर तो यही होगा कि उनका यह अपूर्व ग्रंथ पढ़ना चाहिए।

दीक्षित ने भारतीय ज्योतिष से संबंधित अनेक भ्रांतियों को स्पष्ट किया है। जैसे, वे सप्रमाण सिद्ध करते हैं कि समूचे वैदिक साहित्य और महाभारत में सात वारों और मेषादि 12 राशियों की चर्चा कहीं नहीं है।[36] ज्योतिष की एक पुस्तक है – *ज्योतिर्विदाभरण,* जिसका कर्ता कवि कालिदास बताया गया है। इस पुस्तक के एक श्लोक के आधार पर वराहमिहिर की गिनती विक्रमादित्य के नवरत्नों में की जाती है और उनका समय ईसा पूर्व प्रथम सदी बताया जाता है।[37] परन्तु दीक्षित ने ज्योतिर्विदाभरण को विश्वसनीय पुस्तक नहीं माना है; वे वराहमिहिर का समय ईसा की छठी सदी ही बताते हैं।

दीक्षित का यह ग्रंथ भारतीय ज्योतिष का प्रामाणिक इतिहास तो प्रस्तुत करता ही है, यह फलित–ज्योतिष के अंधविश्वास को समझने में भी सहायता देता है। दीक्षित सायन पंचांग के प्रवर्तक थे, प्रचारक थे। सायन पंचांग ही शुद्ध वैज्ञानिक पंचांग है। डा० मेघनाद साहा कमेटी ने जो नया राष्ट्रीय पंचांग तैयार करके दिया है वह भी सायन पद्धति (विषुव–अयन या अयन–चलन) पर ही आधारित है। मगर निरयन पद्धति और सूर्य–सिद्धान्त पर आधारित अवैज्ञानिक व अशुद्ध पंचांग अब भी देश में बन रहे हैं। धर्म, कर्म, श्रद्धा और पुराणपंथिता ही इस हठधर्मिता का कारण है। शं०बा० दीक्षित के भारतीय ज्योतिष ग्रंथ को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए, उनके द्वारा समर्थित सायन पद्धति को अपनाया जाए, तो फलित–ज्योतिष के बहुत से छल–कपट सहज ही स्पष्ट हो जाएंगे।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. आर्यभूषण प्रेस की स्थापना मराठी के प्रख्यात गद्य लेखक व विचारक विष्णुशास्त्री चिपलूणकर (1850-1882) ने 1879 ई० में की थी। चित्रशाला (1877 ई०) और केसरी (1881 ई०) मुद्रण–संस्थाओं की स्थापना भी उन्होंने ही की थी। वे मुद्रण यन्त्र को 'अज्ञानध्वंसकारी वज्र' मानते थे।
2. शंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवादक : शिवनाथ झारखण्डी), *भारतीय ज्योतिष* (लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1963 ई०), प्रस्तावना, पृ० 11.
3. स्वयं ओझाजी ने अपना यह ग्रंथ पहली बार 1894 ई० में प्रकाशित किया था। इसका दूसरा परिवर्धित और परिशोधित संस्करण 1918 ई० में प्रकाशित हुआ। हरप्रसाद शास्त्री का बंगाली ग्रंथ बौद्धगान ओ दोहा भी इसी कोटि का है।
4. अंग्रेजी अनुवादक : आर० वी० वैद्य, कन्ट्रोलर आफ पब्लिकेशन्स, जी०ओ० आई० दिल्ली:

   भाग 1 : *हिस्ट्री आफ एस्ट्रोनॉमी ड्यूरिंग द वेदिक एंड वेदांग पिरियड्स,* 1969.

   भाग 2 : *हिस्ट्री आफ एस्ट्रोनॉमी ड्यूरिंग द सिद्धान्तिक एंड मॉडर्न पिरियड्स,* 1981.
5. इस ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद का पहला संस्करण (1957 ई०) और दूसरा संस्करण (1963 ई०) मेरे पास है। उसके बाद भी यह ग्रंथ पुनर्मुद्रित हुआ है। हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा अन्य किसी भाषा में इस ग्रंथ का अनुवाद हुआ हो, तो उसकी मुझे जानकारी नहीं है।
6. मराठी में निबंध का शीर्षक है : 'महाराष्ट्रांतील बुद्धिमान, प्रतिभावान व कर्त्या लोकांची मोजदाद', *राजवाडे लेखसंग्रह,* भाग 3 रा (चित्रशाला प्रेस, पुणे, 1935 ई०) पृ० 169-184.
7. विनायक अथवा केरो लक्ष्मण छत्रे (जन्म 1824 ई०) ने मुंबई में अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन किया था। आरंभ में इन्होंने मुंबई की वेधशाला में काम किया : बाद में महाराष्ट्र के कई स्कूलों व कालेजों में शिक्षक रहे। ये गणित, ज्योतिष और

सृष्टि–विज्ञान में प्रवीण थे। इन्होंने फ्रेंच और अंग्रेजी ग्रंथों के आधार पर मराठी में *ग्रहणसाधनकोष्ठक* ग्रंथ 1850 ई० में बनाया था, जो 1860 ई० में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में वर्षमान सूर्य–सिद्धान्त के अनुसार है और ग्रह–गतिस्थिति सायन ली गई हैं। जीटा–पीशियम को रेवती का योगतारा माना गया है। यह तारा शक 496 (574 ई०) में वसंत–विषुव पर था। इन्होंने अयन की वार्षिक गति 50.2 विकला मानकर शक 1787 (1865 ई०) से नॉटिकल अलमनक के आधार पर अपना एक स्वतन्त्र पंचांग निकालना शुरू किया। इस प्रयास के पीछे आबा साहब पटवर्धन की प्रेरणा थी, इसलिए छत्रे ने अपने पंचांग का नाम 'पटवर्धनी' रखा। छत्रे का लोकप्रिय नाम 'नाना' था। नाना ने स्कूलों के लिए मराठी में *अंकगणित* और *पदार्थ–विज्ञान शास्त्र* नाम की दो पुस्तके भी लिखी थीं।

8. नृसिंह अथवा बापूदेव शास्त्री का जन्म महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के गोदावरी तट के टोके गांव में 1821 ई० में हुआ था। इनकी आरंभिक पढ़ाई नागपुर में मराठी पाठशाला में हुई और वहीं पर इन्होंने ढुंढिराज मिश्र से भास्कराचार्य (1150 ई०) के *लीलावती, बीजगणित* आदि ग्रंथ पढ़े। उसके बाद सिहोर की संस्कृत पाठशाला में इन्होंने रेखागणित आदि का अध्ययन किया। सन् 1841 में काशी के संस्कृत कालेज में ये गणित के अध्यापक नियुक्त हुए, और अंत तक वहीं रहे। सन् 1890 ई० में, 69 वर्ष की आयु में, इनका स्वर्गवास हुआ।

   बापूदेव शास्त्री के संस्कृत और हिन्दी में कई ग्रंथ प्रकाशित हुए। इन्होंने *सिद्धांतशिरोमणि* के 'गोलाध्याय' का और सूर्य–सिद्धान्त का अंग्रेजी में अनुवाद किया। ये शुद्ध सायन पंचांग बनाना चाहते थे, परन्तु काशी के पंडितों ने इनका विरोध किया। विवश होकर इन्हें भी काशीराज के आश्रय में निरयन पंचांग निकालना पड़ा। अपने जीवनकाल में इन्हें कई सम्मान मिले। आज भी विद्वज्जगत में बापूदेव शास्त्री का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

9. रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे (1876-1966 ई०) का जन्म और आरंभिक अध्ययन रत्नागिरि जिले में हुआ। आगे का शिक्षण, महर्षि कर्वे के सान्निध्य में, मुंबई और पुणे में हुआ। बी०एस०सी० में प्रथम स्थान प्राप्त करके और सरकारी छात्रवृत्ति लेकर ये कैम्ब्रिज

विश्वविद्यालय में दाखिल हुए। वहाँ की ट्राइपॉस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करके परांजपे ने 'सीनियर रैंगलर' का सम्मान अर्जित किया। सन् 1901 में भारत लौटने पर पुणे के फर्ग्यूसन कालेज में ये गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1924 में प्राध्यापक–पद छोड़ने के बाद रैंगलर परांजपे ने महत्व के कई पदों पर काम किया। ये अपने को बुद्धिवादी कहते थे। ईश्वर, धार्मिक कर्मकाण्ड, परलोक, पुनर्जन्म आदि पर इनका विश्वास नहीं था।

10. महाराष्ट्र के ये तीनों ही महापुरुष गणित के अध्येता और अध्यापक भी रहे हैं।

    रानडे का उच्च शिक्षण मुंबई में हुआ। न्यायधीश नियुक्त होने के पहले उन्होंने मुंबई के एल्फिस्टन कालेज में अध्यापन–कार्य करते समय जो विषय पढ़ाये थे उनमें गणित भी एक था।

    पुणे में 1885 ई० में डेक्कन कालेज की स्थापना होने पर तिलक ने वहाँ गणित ज्योतिष और संस्कृत विषय पढ़ाने का काम किया था। ज्योतिषीय अन्वेषण के आधार पर तैयार किए गए अपने *ओरायन* ग्रंथ में तिलक ने *ऋग्वेद* का काल 4000 ई०पू० के आसपास निश्चित किया था। उनकी वेदिक क्रॉनोलाजी एंड वेदांग *ज्योतिष* पुस्तक 1925 ई० में प्रकाशित हुई।

    पुणे में डेक्कन कालेज की स्थापना होने पर गोखले ने आरंभ में वहाँ गणित और अंग्रेजी विषय पढ़ाए थे।

11. राजवाडे, पूर्वोक्त, पृ० 176.
12. ऐ० परांजपे, लोकमान्य तिलक और गो०कृ० गोखले का जन्म रत्नागिरि में ही हुआ था।
13. दीक्षित, *भारतीय ज्योतिष*, प्रस्तावना, पृ० 15.
14. वही, पृ० 15.
15. वही, पृ० 7.
16. पं० सुधाकर द्विवेदी (1860-1922 ई०) काशी के समीप के खजुरी गाँव के निवासी थे। आरंभ में ये काशी के राजकीय संस्कृत कालेज के पुस्तकालयाध्क्ष थे। सन् 1880 में बापूदेव शास्त्री के सेवा–निवृत्त हो

जाने पर ये उनके स्थान पर गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक नियुक्त हुए। सरकार ने इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी प्रदान की। पं० द्विवेदी ने संस्कृत और हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखीं। अपनी *गणित–तरंगिणी* में इन्होंने भारतीय गणितज्ञों और ज्योतिषियों का परिचय दिया है। इन्होंने ब्रह्मस्फुट–सिद्धान्त, बृहत्संहिता, पंचसिद्धान्तिका, सूर्य–सिद्धान्त आदि कई ग्रंथों का संपादन किया और टीकाएं भी लिखीं। इन्होंने गणित पर हिन्दी में भी कुछ पुस्तकें लिखीं।

17. देखिए गोरखप्रसाद, *भारतीय ज्योतिष का इतिहास* (लखनऊ, 1956 ई०), पृ० 236.

18. विसाजी रघुनाथ लेले (1827-1895 ई०) का जन्म नाशिक में हुआ था और वहीं पर एक मराठी स्कूल में 11 साल की अवस्था तक इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। बस, विधिवत शिक्षण इतना ही हुआ। परन्तु स्वाध्याय से इन्होंने गणित में इतनी योग्यता प्राप्त कर ली थी कि उच्च गणित के सवाल भी सुगमता से हल कर देते थे। कुछ दिन नाशिक में फुटकर नौकरियाँ करने के बाद ये ग्वालियर राज्य में नौकर हुए। लेले इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि सायन पंचाग ही धर्मशास्त्रानुकूल है। जब केरोपंत छत्रे निरयन पंचांग निकालने लगे तो लेले ने चाहा कि वे सायन मान को स्वीकार करें। इसके लिए लेले ने 'स्फुटवक्ता अभियोगी' के नाम से समाचार पत्रों में लंबे समय तक वाद–विवाद चलाया, मगर उसका छत्रे पर कोई असर नहीं हुआ। अंत में शक 1806 (1884 ई०) से इन्होंने अपना स्वतंत्र सायन पंचांग बनाना शुरू किया।

19. जनार्दन बालाजी मोडक (1845-1890 ई०) का जन्म भी रत्नागिरि जिले में ही हुआ था। जनार्दन पंत के पिता का मूल गांव मुरूड था जहां शं०बा० दीक्षित जन्म हुआ था। जनार्दन पंत का सारा शिक्षण पुणे में हुआ। डेक्कन कालेज से 1870 ई० में उन्होंने बी० ए० किया। उसके बाद उन्होंने नाशिक, रत्नागिरि, धुलिया तथा थाने के हाईस्कूलों में उपशिक्षक और मुख्य शिक्षक के रूप में काम किया। जनार्दन पंत मोडक ने कई साल तक *काव्येतिहास संग्रह* मासिक निकालकर मराठी व संस्कृत के कई ग्रंथों को प्रकाशित किया। ज्योतिष में भी उनकी गहरी पैठ थी। इस विषय की उनकी दो पुस्तकें हैं : *भास्कराचार्य*

व तत्कृत ज्योतिष (1877 ई०) और वेदांग–ज्योतिष (मूल सस्कृत व मराठी भाषांतर, 1885 ई०)। मोडक सायन मत के पुरस्कर्ता थे, और इस मत के प्रचारार्थ लेले तथा दीक्षित के साथ मिलकर उन्होंने विरोधियों के साथ जबरदस्त लड़ाई लड़ी।

20. दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ० 533
21. वही, पृ० 534.
22. वही, पृ० 534.
23. वही, प्रस्तावना, पृ० 7.
24. वही, प्रस्तावना, पृ० 8.
25. डेविड पिंगरी अपने ग्रंथ *ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर : ज्योतिःशास्त्र : एस्ट्रल एंड मैथेमैटिकल लिटरेचर* (वाइजबाडेन, 1981) के पृ० 118 पर लिखते हैं—– "इस समय भारत और विदेश में ज्योतिःशास्त्र के विभिन्न पक्षों पर करीब 1,00,000 हस्तलिपियां विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश कीं प्रतिलिपियां 17वीं, 18वीं और 19वीं सदी में तैयार हुई हैं, क्योंकि भारत में कुछ अपवादात्मक स्थितियों को छोड़कर, हस्तलिपियाँ लंबे समय त टिकी नहीं रह सकतीं। इसलिए हमारे लिए प्रमुखतः वही पुस्तकें उपलब्ध हैं जिन्हें मुगल और ब्रिटिश राज्यों के समय के पंडितों ने तैयार किया या अध्ययन के लिए चुना। चूँकि आधुनिक भारत में पांडुलिपियों की प्रतिलिपियाँ तैयार करना प्रायः बंद हो गया है, इसलिए इन करीब एक लाख पांडुलिपियों में से बहुत सी जल्दी ही नष्ट हो जाएंगी और तक उसके साथ ही भारतीय ज्योतिष व गणित के विकास क्रम का सही लेखा–जोखा प्रस्तुत करने की संभावना भी काफी घट जाएगी। "यह उद्धरण मैंने सुब्बरयप्पा और शर्मा द्वारा संकलित ग्रंथ *इंडियन एस्ट्रॅनामी : ए सोर्स–बुक* (मुंबई, 1985) की प्रस्तावना से लिया है।
26. दीक्षित, पूर्वोक्त, प्रस्तावना, पृ० 9.
27. वही, पृ० 10.
28. वही, पृ० 211.

29. वही, पृ० 211.

30. वही, पृ० 13.

31. वही, पृ० 10.

32. वही, पृ० 192 और 205.

33. देखिए *मराठी विश्वकोश* (प्रमुख संपादक : लक्ष्मणशास्त्री जोशी), खंड 7, पृ० 804.

34. दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ० 11.

35. वही, पृ० 7.

36. वही, पृ० 154. हमारे देश में सप्ताह के वार का सबसे प्राचीन उल्लेख बुधगुप्त के 484 ई० के एक अभिलेख में देखने को मिलता है।

37. श्लोक है—

धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंह शंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।

स्वन्त्रतापूर्व विज्ञान लेखन में प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा का योगदान

डॉ० दिनेश मणि,*

स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान लेखन करने वाले मनीषियों में प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा का योगदान अत्यन्त उल्लेखनीय कहा जायेगा। बिहार प्रान्त के सारन जिले के कौंसड़ ग्राम में 11 फरवरी 1889 को जन्मे प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा कार्बनिक रसायन के अच्छे विद्वान, शोधकर्ता होने के साथ–साथ एक उत्कृष्ट विज्ञान–लेखक थे। प्रो० वर्मा का हिन्दी–प्रेम जन्मजात था। आपके अनुसार "जिस स्कूल में मैं पढ़ता था उसमें हिन्दी के एक अध्यापक श्री सोमारू राम थे जो हिन्दी लिखाने में बड़ी कठोरता का व्यवहार करते थे, दो गलतियाँ तक वे माफ कर देते थे। आगे प्रत्येक गलती पर एक–एक बेंत लगाते थे। भला यह हुआ कि हमारी हिन्दी सशक्त हो गयी।"

आगे के जीवन में भी वे हिन्दी विभाग के प्राध्यापक पं० रामचन्द्र शुक्ल को वन्दनीय बताते हैं— "जो कुछ भी मैं हिन्दी जानता हूँ उसक सारा श्रेय शुक्ल जी को ही है। इस ज्ञान से ही मैं हिन्दी विश्वकोश का सम्पादन विश्वास के साथ कर सका।"

बी.एस-सी. में कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपका स्थान द्वितीय रहा और 30 रु० की मासिक छात्रवृत्ति मिली। आपने एम.एस-सी. कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज से 1916 में उत्तीर्ण किया और वहाँ भी आपका स्थान द्वितीय रहा। आप वहाँ सर पी.सी. राय के छात्र थे। उसी वर्ष वे प्रेसीडेन्सी कॉलेज से विदा लेकर कलकत्ता युनिवर्सिटी के साइंस कालेज में वाइस–प्रिंसिपल होकर आये। आपने सर पी.सी. राय के सर्वप्रथम अन्वेषणछात्र डॉ० आर.एस. दत्त के निर्देशन में अन्वेषण कार्य प्रारम्भ किया। वहाँ आपने पिक्रिक एसिड तैयार करने की दो संशोधित

*व्याख्याता, रसायन विभाग, संयुक्त मन्त्री एवं सहायक, सम्पादक 'विज्ञान'. इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद–2

विधियों का आविष्कार किया और एक को इंग्लैण्ड में और दूसरे को अमेरिका में पेटेण्ट कराया। पर उस समय यूरोपीय युद्ध छिड़ जाने के कारण ब्रिटिश सरकार से आपको सूचना मिली कि पिक्रिक एसिड युद्ध–सामग्री है अतः युद्ध–काल में आप उस विधि को प्रकाशित नहीं कर सकते। इससे उस विधि से लाभ उठाने से आप वंचित रहे।

एम.एस-सी. उत्तीर्ण करने के बाद आपको बिहार सरकार की ओर से 3 वर्ष के लिये अनुसंधानकार्य करने को 100 रु० मासिक की छात्रवृत्ति मिली और इसके लिये आप जुलाई 1917 में बंगलौर के 'इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस' नामक अनुसंधान संस्था में चले गये। वहाँ अपने कार्बनिक रसायन में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० सडबोरो के निर्देशन में 2 वर्षों तक कार्य किया। वहाँ आप लायपेज नामक एंजाइम के द्वारा उच्च कोटि की ग्लिसरीन तैयार करने में लगे और अन्त में उसमें सफल हुये। इस अनुसंधान कार्य के कारण आपको उस संस्था का डिप्लोमा (ए०आई०आई०एस०सी०) मिला।

केवल दो वर्ष वहाँ रहकर आप बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर ऑफ केमिस्ट्री के पद पर नियुक्त हो बनारस चले आये और वहीं अध्यापन और अनुसंधान कार्य करने लगे। बीच में आपने असहयोग आन्दोलन के समय में हिन्दू विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में पटना जाने का निश्चय कर लिया परन्तु पं० मदन मोहन मालवीय जी के आग्रह से आपने अपना त्याग–पत्र वापस ले लिया। आपने हैलोजिनेशन पर बहुत महत्व के अनुसंधान किये।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा स्वदेशी के बहुत बड़े पक्षपाती थे और बराबर खद्दर और स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग करते थे।

1919 ई० में प्रो० वर्मा का अन्वेषणकार्य समाप्त हो रहा था। इसी दौरान उन्होंने कुछ प्रार्थना पत्र यत्र–तत्र भेजे। उनकी नियुक्ति तीन जगहों पर हो गई। एक मुजफ्फरपुर के लंगटसिंह कालेज में डिमांस्ट्रेटर के पद पर। तब तक यह कालेज सरकार के प्रबन्ध में आ चुका था। यह पद प्रान्तीय शिक्षा सेवा का था। इसमें प्रारंभिक वेतन लगभग डेढ़ सौ रुपये से शुरू होता था और अंत में साढ़े सात सौ या आठ सौ तक पहुँचता था। दूसरी नियुक्ति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में रसायन

के प्रोफेसर के पद पर हुई। इसका प्रारंभिक वेतन 200 रु० था। तीसरी नियुक्ति बंगलोर के 'इंण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस में ही रिसर्च असिस्टेंट के पद पर हुई। इसमें प्रारम्भिक वेतन दो सौ रुपये से शुरू होता था। काफी विचार–विमर्श के पश्चात प्रो० वर्मा ने वाराणसी के हिन्दू विश्वविद्यालय के पद को ही स्वीकार किया।

31 जुलाई 1919 को जब प्रो० वर्मा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुये तब लिखने के काम में कुछ तेजी आयी और अनेक मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों में लेख लिखने लगे। अपने सबसे अधिक लेख 'विज्ञान परिषद्' की मासिक पत्रिका 'विज्ञान' मे छपे हैं। इसके अतिरिक्त 'प्रभा', 'सुधा', 'स्वार्थ', 'सरस्वती', 'लक्ष्मी', 'शारदा', 'वाणी', 'पाटल' आदि पत्रिकाओं में भी प्रो० वर्मा के कई लेख छपे हैं। प्रो० वर्मा का पहला लेख "विज्ञान और भविष्य" 1920–1921 में 'विज्ञान' में छपा। फिर तो 1939 तक उनके 24 लेख 'विज्ञान' में छपे। 1921 में बनारस की 'स्वार्थ' पत्रिका में 'भारत में शोरे का व्यवसाय' लेख प्रकाशित हुआ। प्रो० वर्मा ने बालोपयोगी निबन्ध भी लिखे जो 'बालक' में नियमित रूप से छपते रहे। आपका 'आग पर चलना' लेख काफी चर्चित रहा।

लेखों के बाद उनका ध्यान पुस्तकें लिखने की ओर भी गया। उन्होंने 1928 में 'प्रारम्भिक रसायन' (दो भाग) नामक 200 पृष्ठों की पुस्तक लिखी। इसका अच्छा स्वागत हुआ। बाद में विद्यार्थियों के उपयोग हेतु रसायन सम्बन्ध अनेक पुस्तकें अंग्रेजी तथा हिन्दी में लिखीं जो काफी लोकप्रिय रहीं। 1936–37 के बाद हिन्दी में इनकी बराबरी का कोई दूसरा लेखक हुआ तो वे डॉ० सत्यप्रकाश थे। उनकी पाठय पुस्तकों ने भी एक समय ऐसी ही हलचल मचा दी थी।

अनेक संस्थाओं ने प्रो० वर्मा की प्रारंभिक रसायन' पुस्तक को पाठ्यपुस्तक में समाविष्ट किया। बनारस हिन्दूविश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा, आयुर्वेदिक कालेज की परीक्षाओं और अनेक परीक्षाओं में यह पुस्तक पाठ्य पुस्तक के रूप में निर्धारित हुयी थी। इसके अतिरिक्त प्रो० वर्मा ने एक पुस्तक 'मिट्टी के बर्तन' लिखी जिसका प्रकाशन 'विज्ञान परिषद' द्वारा हुआ और कुछ औद्योगिक संस्थाओं में पाठ्यपुस्तक के रूप में इसकी स्वीकृति हो गयी थी। इसी बीच बिड़ला बन्धुओं ने

बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय को हिन्दी पाठ्यपुस्तक प्रकाशन के लिये पचास हजार रुपये का दान किया था। इस दान से पाठ्यपुस्तक लिखवाने की योजना बनी। प्रो० वर्मा इस योजना के एक सदस्य थे। इसके अन्य सदस्य थे—डॉ० निहालकरण सेठी (जो भौतिकी के प्राध्यापक थे), प्रो० नन्द कुमार तिवारी (जो वनस्पति विज्ञान के अध्यापक थे) तथा प्रो० एन.पी. गांधी (जो माइनिंग और मेटालर्जी के अध्यक्ष थे)। इस योजना के अन्तर्गत प्रो० वर्मा ने 'रसायन' पर पुस्तक लिखना स्वीकार कर लिया और दो खण्डों में पुस्तक लिखी जो बाद में 'साधारण रसायन' के नाम से छपी। जब यह पुस्तक तैयार हो गयी तब निश्चय किया गया कि इसका संपादन हिन्दी भाषा के किसी विशेषज्ञ से करा लिया जाय। इसके लिये हिन्दी भाषा के किसी विशेषज्ञ से करा लिया जाय। इसके लिये हिन्दी विभाग के प्राध्यापक श्री रामचन्द्र शुक्ल को चुना गया। श्री रामचन्द्र शुक्ल जी प्रतिदिन जब छुटटी रहती थी तब प्रो० वर्मा पढ़ते थे और आप भाषा का सुधार करते जाते। भाषा का वास्तविक ज्ञान प्रो० वर्मा को शुक्ल जी द्वारा हुआ। शुक्ल जी का भाषा—ज्ञान बहुत विस्तृत और परिशुद्ध था। प्रो० वर्मा ने हिन्दी की ऐसी विद्वत्ता अभी तक केवल एक—दो आदमियों में ही देखी थी। ये थे बिहार या पटना के पूज्य शिवपूजन सहाय जी। उन्होंने ही, प्रो० वर्मा की तीनों पुस्तकों का – 'ईख और चीनी', 'रबर' तथा 'पेट्रोलियम' जो बिहार राष्ट्रभाषा से छपी थीं, सम्पादन किया था।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखों के लिखने और हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन से हिन्दी जगत में प्रो० वर्मा की ख्याति बढ़ गयी और उसके फलस्वरूप प्रो० वर्मा को दो बार बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया। इन सम्मेलनों का पहला अधिवेशन गया में और दूसरा आरा में हुआ था। गया का अधिवेशन तो ठीक से सम्पन्न हो गया पर आरा के अधिवेशन की बैठक न हो सकी। इसका कारण था कि हिन्दी के विख्यात सेवक पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा का मोटर दुर्घटना में बैठक होने के ठीक एक दिन पहले देहान्त हो गया था।

प्रो० वर्मा को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला में होने वाले अधिवेशन अनुभाग का भी अध्यक्ष चुना गया। इस सम्मेलन

की बैठक शिमला में 1938 ई. में दुर्गापूजा की छुट्टी में हुयी थी। इस सम्मेलन के अध्यक्ष 'आज' के सम्पादक श्री बाबू राव विष्णु पराड़कर जी थे।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्य करते हुए प्रो० वर्मा को हिन्दी में लिखने का समय कम मिलता था। अन्तिम दिनों में जब प्रो० वर्मा एक विभाग के अध्यक्ष और कॉलेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए तो लिखने का समय और भी कम हो गया। प्रायः इसी समय भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय में अंग्रेजी के वैज्ञानिक शब्दों का हिन्दी में अनुवाद करने का काम शुरू हुआ। इस काम के लिए विभिन्न विषयों की अनेक 'दक्ष समितियाँ' बनीं। ऐसी एक समिति रासायनिक शब्दावली के अनुवाद के लिए भी बनी और उसके संयोजक पहले सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० शान्ति स्वरूप भटनागर नियुक्त हुए पर उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। उन्हें इस काम में न तो दिलचस्पी थी और न इसके लिए अवकाश था। उनके अस्वीकार करने पर प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा संयोजक नियुक्त किए गये तथा सदस्यों का चुनाव–भार प्रो० वर्मा जी को सौंपा गया। प्रो० वर्मा ने अनेक नामों का सुझाव दिया जिसमें से प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन प्राध्यापक डॉ० सत्यप्रकाश तथा राँची विश्वविद्यालय के रसायन प्राध्यापक डॉ० यदुनन्दन प्रसाद नियुक्त हुए। बाद में ऐसा सुझाव आया कि किसी अहिन्दी प्रोफेसर को भी इसका सदस्य होना चाहिए। इसके लिए प्रो० वर्मा ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० के.एस. वेंकटरमण का नाम जोड़ा। इसके बाद कुछ हिन्दी के विद्वानों का नाम भी जोड़ा। यह दक्ष समिति लगभग 10 वर्षों तक काम करती रही। हर दूसरे–तीसरे महीने प्रो० वर्मा को इस काम के लिए दिल्ली जाना पड़ता था। रसायन के प्रायः सभी तकनीकी शब्दों का हिन्दी अनुवाद इसी समिति ने किया। बीच–बीच में कुछ अन्य विषयों के दक्षों की भी सहायता ली गयी – जैसे काँच और सिरेमिक शब्दों में मदद करने के लिए ग्लास और सिरेमिक राष्ट्रीय प्रयोगशाला के कार्यकर्ता का नाम जोड़ा गया। 10–12 वर्षों तक काम करने के बाद इस समिति को भंग कर दिया गया। तब तक लगभग सभी सामान्य शब्दों का हिन्दी अनुवाद हो चुका था।

प्रो० वर्मा जी द्वारा लिखित पुस्तकें

क्र. सं.	नाम पुस्तक	पृष्ठ सं.	प्रकाशक	प्रकाशक काल	मूल्य
1	प्रारम्भिक रसायन, प्रथम भाग	225	लेखक नन्दकिशोर एंड ब्रदर्स	1928	2.00
2	प्रारम्भिक रसायन, द्वितीय भाग	125	" नन्दकिशोर एंड ब्रदर्स	1930	1.00
3	साधारण रसायन, प्रथम भाग	450	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय	1932	4.50
4	साधारण रसायन, द्वितीय भाग	520	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय	1932	5.00
5	हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली	83	काशी नागरी प्रचारणी सभा	1930	0.62
6	मिट्टी के बरतन	175	विज्ञान परिषद प्रयाग	1938	1.00
7	प्रारम्भिक रसायन	448	चौखम्बा संस्कृत सिरीज	1942	4.50
8	गंगा का विज्ञानांक	410	गंगा मासिक पत्रिका	1934	5.00
स्वतन्त्रता-परवर्ती पुस्तकें					
9	अंग्रेजी–हिन्दी वैज्ञानिक कोश (रसायन) प्रथम खण्ड	256	भारतीय हिन्दी परिषद्	1948	3.00
10	प्रांगारिक रसायन	284	नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स	1948	3.50
11	प्रारम्भिक रसायन	448	चौखम्बा संस्कृत सिरीज	1942	4.50
12	अंग्रेजी–हिन्दी वैज्ञानिक कोश	255	भारतीय हिन्दी परिषद्	1950	–
13	ईख और चीनी	440	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना	1955	12.00
14	प्लास्टिक	754	अशोक पेस, पटना	1956	4.00
15	पेट्रोलियम	294	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्	1954	5.50
16	कोयला	485	हिन्दी समिति, लखनऊ	1958	8.00
17	खाद और उर्वरक	572	हिन्दी समिति, लखनऊ	1960	10.00
18	कार्बोहाइड्रेट तथा ग्लाइकोसाइड्स	183	केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली	1964	4.85
19	लाख और चपडा	403	हिन्दी समिति, लखनऊ	1967	10.00
20	लुगदी और कागल	230	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	1967	8.00
21	आत्मजीवन	391	–	1974	–

शिमला के 27वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विज्ञान परिषद के अध्यक्ष पद से सम्वत् 1995 (1938 ई.) में दिए भाषण में प्रो० वर्मा ने कहा था कि "आज सारा देश इस बात को स्वीकार कर रहा है कि इस देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। यह सन्तोष का विषय है कि हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयत्न में इस युग के महान पुरुष महात्मा गांधी, श्री राजगोपालचारी और सुभाष चन्द्र बोस लगे हुए हैं। यद्यपि नक्कारखाने में तूती की आवाज सदृश्य इधर–उधर से कभी यह धुन सुनाई देती है कि हिन्दी का साहित्य अपरिपूर्ण होने के कारण यह राष्ट्रभाषा बनने के योग्य नहीं है। उत्तरभारत की भाषाओं में मुझे विज्ञान साहित्य की जानकारी है। बंगाली साहित्य के विज्ञान भाषा से मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि अब भी हिन्दी में जितना भी विज्ञान साहित्य विद्यमान है उतना उत्तर भारत की अन्य भाषाओं में नहीं है। हिन्दी के विज्ञान साहित्य के सविस्तार वर्णन मैनें बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन की त्रैमासिक पत्रिका "साहित्य के वर्ष 1 खण्ड–2 में "वैज्ञानिक साहित्य और उसकी प्रगति" शीर्षक लेख में किया है।

प्रो० वर्मा आगे कहते है कि "मेरे इस कथन का यह आशय कदापि नहीं है कि हिन्दी में विज्ञान साहित्य पर्याप्त है। जब हिन्दी के इस अंग की पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक साहित्य की तुलना करते हैं तब हमें साफ मालूम होता है कि हमारा विज्ञान साहित्य शायद नहीं के बराबर है। यह अवश्य ही हमारे लिए लज्जा व दुःख की बात है कि जिस भाषा को राष्ट्रभाषा होने का गौरव दे रहे हैं उसमें आवश्यक साहित्य का अभाव अवश्य ही एक बड़ी खटकनें वाली बात है और कुछ सीमा तक हमारी अकर्मण्यता का द्योतक है। साहित्य निर्माण का कार्य हम हिन्दी भाषा–भाषी ही अधिक सुविधा/सरलता व शुद्धता से कर सकते हैं। यह हमारा ही कर्तव्य है कि हिन्दी साहित्य के अपरिपूर्णता के कलंक को मिटा डालें, अन्यथा आने वाली पीढ़ी हमें दोष देगी कि हमने साहित्य निर्माण के कार्य को सम्पादित न कर अपने कर्तव्य की अवहेलना की है, अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभाया है"।

प्रो० वर्मा के अनुसार "वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में बड़ी अड़चनें हैं। एक तो वैज्ञानिकों की हिन्दी में लिखने की कुछ अरुचि

और दूसरे प्रकाशकों का अभाव। कुछ वर्ष हुए 'गंगा' नामक मासिक पत्रिका का मैंने सम्पादन किया था, उस समय इस सम्बन्ध में कुछ कार्य करने का अवसर मिला था। उस अनुभव से मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि देश में हिन्दी भाषा–भाषी वैज्ञानिकों की कमी नहीं है। अनेक वैज्ञानिक विद्यमान हैं जो चाहें तो उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थ लिख सकते हैं। ऐसे वैज्ञानिकों से कार्य लेना या उन्हें उत्साहित करना हमारा कर्तव्य है।"

वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा कैसी हो इस सम्बन्ध में प्रो० वर्मा लिखतें हैं – "वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक विचारों को जनता में फैलाना होता है, जब–जब महान पुरुष इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और किसी भी विचार को जनता में फैलाना चाहते हैं तब–तब उन्होंने प्रचलित सुबोध व सरल भाषा का उपयोग किया है। यही कारण है कि बौद्ध धर्म की सारी धर्मपुस्तकें उस समय की प्रचलित पालि भाषा में तथा जैन धर्म की सारी धर्म पुस्तकें प्राकृत भाषा में ही मिलती हैं। श्री नानक देव एवं अन्य सिख गुरुओं ने अपने सदुपदेशों को उस समय की प्रचलित भाषा हिन्दी में ही दिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस की रचना हिन्दी भाषा में ही की है और महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी भाषा में ही लिखा है।"

"विज्ञान और भविष्य" (1920 में 'विज्ञान' में प्रकाशित) शीर्षक अपने लेख में उद्योगों के बारे में प्रो० वर्मा लिखते हैं–

"दिन प्रतिदिन उद्योग–धंधे पेचीदे होते जाते हैं। एक ओर तो उनमें लोगों की सफलता उनकी विशेष शिक्षा पर निर्भर है, दूसरी ओर उनकी मस्तिष्क की मौलिकता पर। भाग्यवश वैज्ञानिक लोगों की उपयोगिता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और साधारण व्यक्ति भी अब उनकी उपयोगिता को समझने लगे हैं। अब वह समय नहीं रहा जब 1784 ई. में लेवोज़ियर नामक एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी रसायनाचार्य को उनके देश के लोगों ने यह कह कर फाँसी दे दी कि प्रजातंत्रराज्य को रसायनज्ञों की आवश्यकता नहीं है।" भविष्य में किसी देश के उद्योग–धन्धे तभी वृद्धि करेंगे जब वह मजबूत वैज्ञानिक नींव पर खड़े होंगे। पुरानी और अवैज्ञानिक रीति से चलने वाले धन्धे का अब समय

नहीं रहा और न रहेगा, यदि अभी तक इस प्रकार जीवित हैं तो बहुत शीघ्र ही उनका अन्त होना निश्चय है।"

प्रो० वर्मा के अनुसार – "वैज्ञानिक ग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोंग अनिवार्य है। कुछ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो किसी विशेष अर्थ को लेकर प्रयुक्त हुये हैं। उसी अर्थ को जानने के लिये नये शब्दों को हम गढ़ सकें तो अवश्य ऐसा करें और ऐसा करना उचित भी है। यदि वे पारिभाषिक शब्द भारत की सब भाषाओं–हिन्दी, बंगाली, मराठी और गुजराती में एक ही हों तो हमारा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है और हमें अधिक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हो सकता है। यद्यपि पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद के पक्ष में हूँ पर रासायनिक द्रव्यों और पदार्थों के नामों को हिन्दी में अनुवाद करने के मैं बिल्कुल विरुद्ध हूँ। इससे हमें कोई लाभ नहीं दिखायी पड़ता है पर त्रुटियाँ अनेक प्राप्त होती हैं। केवल कार्बनिक रसायन के यौगिकों की संख्या ही दो लाख से अधिक है। इनके अनुवाद करने में जो समय, दिमाग और धन लगेगा वह तो है ही। पर ऐसा होने से हम सरलता से पाश्चात्य देशों के साहित्य से लाभ नहीं उठा सकेंगे जो विज्ञान के परिपूर्ण ज्ञान के लिये अत्यावश्यक है।"

इतनी साहित्य सेवा के बाद विभिन्न संस्थाओं और सरकारी समितियों द्वारा समादरित होना स्वाभाविक है। हिन्दी और विज्ञान की जो सेवा प्रो० फूलदेवसहाय जी ने की थी उसी के फलस्वरूप उन्हें विज्ञान परिषद् ने अपना सभापति चुना। इसी प्रकार बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें दो बार (आरा तथा गया में सम्पन्न) अध्यक्ष चुना। अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन के शिमला में होने वाले अधिवेशन (1938) का भी उन्हें अध्यक्ष चुना गया। भारत सरकार ने पारिभाषिक शव्दावली के निर्माण के लिए 1950 में अनेक समितियाँ बनाई ! इनमें से रसायन शव्दावली के लिए प्रो० साहब को संयोजक नियुक्त किया गया। उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति ने भी रसायन समिति के सदस्य के रूप में इन्हें मनोनीत किया। इस प्रकार प्रो० वर्मा पर अनामंत्रित ही सम्मानों की बाढ़ सी आ गई।

अध्यापन कार्य से मुक्त होने पर 62 वर्ष की अवस्था में भी प्रो० साहब ने संकल्प लिया कि वे कम से कम पाँच उत्कृष्ट पुस्तकें लिखेंगे। वाराणसी से पटना आकर वे एक वर्ष तक पुस्तकें लिखते रहे। इसके

बाद 'इन्स्पेक्टर ऑफ कालेज' पद आपको बिहार विश्वविद्यालय ने प्रदान किया। यह निरन्तर भ्रमण करने वाली नौकरी थी। उन्होंने अगले छः वर्षों में लगभग एक लाख मील की यात्रा की। इस बीच वे सर्वत्र सर्किट हाऊस में ठहरते जहाँ बिजली आदि का प्रबन्ध रहता। फलतः पुस्तकें लिखने में सुविधा हुई। पेट्रोलियम (1958), कोयला (1958), खाद और उर्वरक (1960), प्लास्टिक (1956), लाख और चपड़ा (1967), नामक पुस्तकों का प्रणयन इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। उन्हें सन्तोष है कि 60 तथा 70 वर्ष की आयु में भी सक्रिय रहकर उन्होंने ऐसी पुस्तकें लिखीं जिनका हिन्दी में सर्वथा अभाव था। इनसे विद्यार्थी, शोधार्थी तथा उद्योगपति सभी समान रूप से लाभान्वित हुए।

प्रो० वर्मा को अन्त में उनके लेखन, सम्पादन एवं पारिभाषिक शब्दावली–प्रणयन सम्बन्धी समस्त अनुभवों के उपयोग का सुनहला अवसर आ उपस्थित हुआ। 1961 में अचानक डॉ० गोरख प्रसाद का देहान्त हो गया तो 'हिन्दी विश्वकोश' के सम्पादन की समस्या नागरी प्रचारिणी सभा के समक्ष आई। डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने, जो उस समय सभा के प्रधानमंत्री थे, प्रो० वर्मा को इस उत्तरदायित्व सँभालने के लिये आमंत्रित किया। वे बनारस आ गए और 8 वर्षों तक, जब तक विश्वकोश का कार्य समाप्त नहीं हो गया, लगन से काम करते रहे। वे प्रतिदिन 4 घंटे ही कार्यालय में काम देखते किन्तु अहर्निश उनका ध्यान अधिकारी विद्वानों से लेख प्राप्त करने में लगा रहता। वे लिखते हैं – "भारत के अध्यापक तथा प्राध्यापक यद्यपि पढ़ाने का काम कर लेते हैं पर लिखने के कार्य में बड़े शिथिल होते हैं। पांच–पांच, छह–छह पत्रों के लिखने पर उनका कोई एक उत्तर प्राप्त होता है। अधिकांश प्राध्यापकों की दृष्टि लेखों के पारिश्रमिक पर रहती है। कुछ तो पारिश्रमिक की दर को सुन कर लिखना अस्वीकार कर देते हैं और कुछ न कुछ बहाना बना देते हैं।" स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें पचासों लेख स्वयं लिखने पड़े। वे हारे नहीं और विश्वकोश के 12 खंड निकाल कर ही उससे विलग हुए।

18 अक्टूबर 1979 को 11 बजे प्रातः काल विज्ञान परिषद् की ओर से प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा को कानपुर में उनके निवास स्थान पर अभिनन्दन–स्मारिका भेंट की गई। इस अवसर पर इलाहाबाद से

परिषद के उपसभापति डॉ० रामदास तिवारी, स्वामी सत्यप्रकाश, परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र, परिषद् के कोषाध्यक्ष डॉ० पूर्ण चन्द्र गुप्त और कार्यालय प्रभारी श्री गंगाधर तिवारी तथा 'विज्ञान भारती' के सम्पादक श्री शुकदेव प्रसाद के अतिरिक्त दिल्ली से इसी कार्य को सम्पन्न करने के लिये आये डॉ० आत्माराम उपस्थित थे। प्रों० वर्मा का निधन 4 सितम्बर 1982 को हुआ।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा के "विज्ञान" में छपे लेख (स्वतन्त्रतापूर्व)

क्र.	लेख	माह	वर्ष
1.	विज्ञान और भविष्य	सितम्बर	1920
2.	प्राकृतिक और कृतिम नील	नवम्बर	1920
3.	भिन्न–भिन्न प्रकार की हवायें	अक्टूबर	1920
4.	अंधेरे में उजाला	अप्रैल	1921
5.	घी	मई	1921
6.	चन्दन और चन्दन का तेल	जून	1921
7.	नागार्जुन	जुलाई	1921
8.	शोरे की शोधन विधि	दिसम्बर	1921
9.	रसायन शास्त्र का देश की आर्थिक स्थिति से संबंध	फरवरी	1922
10.	शोरे की शोधन विधि	मार्च	1922
11.	देशी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य	मेषु सं. भाग 21 सं.।	1982
12.	हिन्दू रसायन का इतिहास	मई	1933
13.	बनावटी रेशम तैयार कीजिये	दिसम्बर	1933
14.	मिटटी के बर्तन	मार्च	1933
15.	विज्ञान और उद्योग धन्धे		1938
16.	कच्चा माल		1938
17.	मिट्टी का रूप	मई	1938
18.	मिट्टी बर्तनों में कच्चे माल का प्रयोग	सितम्बर	1938
19.	सभापति का भाषण	नवम्बर	1938

20.	निःसंक्रामक	दिसम्बर	1938
21.	मिट्टी के बर्तन का निर्माण	अप्रैल	1939
22.	बर्तनों पर लुक फेरना और रंग चढ़ाना	मई	1939
23.	पोरसीलीन	अप्रैल	1939
24.	जलावन, भट्ठा और तापमान	जून	1939

सन्दर्भ

1. आत्मजीवन — फूलदेव सहाय वर्मा — 1974
2. वैज्ञानिक ऋषि — प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा अभिनन्दन स्मारिका (विज्ञान परिषद्, प्रयाग) — 1979
3. विज्ञान के विभिन्न अंक

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का स्वतंत्रता से पूर्व विज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव*

डॉ० सत्यप्रकाश हिन्दी द्वारा विज्ञान लेखन में पूरे 70 वर्ष तक छाये रहे। वे रसायनवेत्ता होने के साथ ही स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी भी रहे। हिन्दी जगत् से उन्हें जितना सम्मान मिला वह अन्य किसी को नहीं मिला। विज्ञानी के साथ-साथ कट्टर आर्यसमाजी थे। हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी में कृतियों का सृजन करने वाले सत्यप्रकाश जी ने स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

—संपादक

जीवनवृत्त : डॉ० सत्यप्रकाश का जन्म बिजनौर में (जिला एटा) सन् 1905 में 24 अगस्त को हुआ था। स्वामी जी के पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्य समाज के प्रख्यांत नेता थे और बिजनौर में उनका पर्याप्त सम्मान था। आर्य समाज से प्रभावित पिता ने बालक का नाम सत्यप्रकाश रखा। माता कला देवी भी पिता की ही भाँति आर्य सिद्धान्तों के रंग में पूर्णतः रंगी हुई थी। क्रांतिकारी विचारों वाले पिता ने जब उस युग में पत्नी कला देवी का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया था तो समाज में बड़ी हलचल मची थी। इस प्रकार बालक सत्यप्रकाश को आर्य समाज के प्रति आस्था पैतृक विरासत में प्राप्त हुई। बालक सत्यप्रकाश की प्रारंभिक शिक्षा—दीक्षा बाराबंकी में सम्पन्न हुई। पिता ने उन्हें विज्ञान का विद्यार्थी बनाया। आगे की शिक्षा के लिए 1918 में प्रयाग आगमन हुआ और उच्चतम शोध डिग्री तक अध्ययन से लेकर प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के विभागाध्यक्ष तक आपका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से इलाहाबाद ही रहा। 1927 में एम. एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1932 में आपने विश्वविख्यात रसायनविज्ञानी डॉ० नीलरत्न धर के निर्देशन में

*संपादक, 'विज्ञान' मासिक,विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद—211002 (उ.प्र.)

डी.एस-सी. की डिग्री प्राप्त की थी। इससे 2 वर्ष पूर्व 1930 से ही वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में डिमोंस्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हो गए थे। बाद में इसी विभाग में प्रवक्ता, उपाचार्य और आचार्य के रूप मेंकार्यरत रह कर 1962 में उन्होंने विभागाध्यक्ष का पद संभाला और 1967 में अवकाश प्राप्त कर 1972 तक रिसर्च प्रोफेसर के रूप में विभाग में संलग्न रहे। डॉक्टर साहब के सार्थक कार्यकाल मे 22 शोधार्थियों ने शोध उपाधियाँ प्राप्त कीं। इस दौरान लगभग 150 उच्चस्तरीय शोधपत्र प्रकाशित हुये। 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान स्वामी जी ने जेलयात्रा भी की और वहीं लालबहादुर शास्त्री और पं० कमलापति त्रिपाठी जैसे कांग्रेस के नेताओं केसम्पर्कमेंआये।यह आध्यात्मिकता की ओर झुके व्यक्तित्व का एक अनूठा पक्ष था।

1935 में आपका विवाह रत्नकुमारी जी के साथ सम्पन्न हुआ और स्वामी जी के जीवंत व्यक्तित्व के सहयोग से उनकी प्रतिभा के निखरने को पूर्ण अवसर मिले। सन् 1964 में अपनी आकस्मिक मृत्यु तक डॉ० रत्नकुमारी आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, प्रयाग की प्रधानाध्यापिका पद पर आसीन रहीं। स्वामी जी अपने वैवाहिक जीवन में दो पुत्रों के पिता बने किन्तु दुर्भाग्य से 1976 में काल ने उनके होनहार छोटे पुत्र को छीन लिया। पत्नी और पुत्र के इस असामयिक निधन् ने स्वामी जी को बहुत दुःख पहुँचाया, किन्तु उनके मूलतः वीतरागी मन ने इन आघातों को हँसकर झेल लिया।

पुत्र की मृत्यु के पूर्व ही 10 मई 1971 को वैज्ञानिक डॉ० सत्यप्रकाश संन्यास ग्रहण कर और घर तथा समस्त संपदा का त्याग कर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती बन चुके थे। उन्होंने घर से बाहर भिक्षा–वृत्ति पर जीवन बिताने का निर्णय ले लिया था। इससे एक लाभ और हुआ कि वे अपना सारा समय भारतीय विज्ञान और आर्य समाज की उन्नति, वेद–प्रचार, व्याख्यान और पुस्तक–प्रणयन में बिताने लगे। धर्म–प्रचार हेतु आपने अनेक बार अफ्रीकी देशों की और अन्यान्य स्थानों की यात्रायें की हैं। आपने आर्य समाज के धर्म–पुरोहित का कार्य भी किया है। अनेक अंतर्जातीय एवं दहेज रहित आदर्श विवाहों को सम्पन्न कराने का श्रेय स्वामी जी को है। सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक स्वर्गीय डॉ० आत्माराम का विवाह उन्होंने पुरोहित बनकर मात्र 100 रु०

में ही सम्पन्न कराया था। अत्यन्त कर्मठ, अत्यन्त शिष्ट एवं मिष्ठभाषी, परमविनोदी, सहनशील और सबसे समानता का व्यवहार करने वाले स्वामी जी में भारतीयता कूट–कूट कर भरी हुई थी। हिन्दी और अंग्रेज़ी के मर्मज्ञ होने के साथ–साथ संस्कृत पर भी आपको पूर्ण अधिकार था। हिन्दी के वे प्रबलतम पक्षधर थे और हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य के उन्नयन में उनके महान योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

स्वामी जी द्वारा लिखी पुस्तकों में 'भारत की वैज्ञानिक परम्परा', 'भारत में रसायन का विकास', 'फाउन्डर्स ऑव साइन्स इन इण्डिया', 'क्वायनेज इन एन्शिएन्ट इण्डिया', 'पातंजलि राजयोग', 'दयानन्दस् आउटलाइन ऑव वैदिक फिलॉस्फी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रसायन विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों द्वारा आपने विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियों को सुगम बनाकर असंख्य छात्रों तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया। डॉ० सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित कृतियों में 'वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली', पारिभाषिक शब्दावली', 'मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश', 'भारत की सम्पदा' (4 भाग) का सर्वत्र अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। उनकी शैली और भाषा की सरलता ने अनेक उभरते लेखकों को प्रेरणा दी है। स्वामी जी की विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत भी हुई थीं। अनेक साहित्य वैज्ञानिक संस्थाओं के कार्यकलापों में डॉक्टर साहब का सदैव सहयोग रहा। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग', 'केमिकल सोसायटी', 'इण्डियन एकेडमी ऑव साइन्सेज' के आजीवन सदस्य तथा 'राष्ट्रीय अकादमी' के फेलो भी थे। इसके अतिरिक्त आप 'हिन्दी संस्थान' (लखनऊ), 'हिन्दी ग्रंथ अकादमी' और 'नेशनल बुक ट्रस्ट' जैसी संस्थाओं के सलाहकार भी रहे। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के तो वे कर्णधार ही थे। हिन्दी में 'विज्ञान परिषद्' से विज्ञान की 'अनुसन्धान पत्रिका' के प्रकाशन का सूत्रपात आपने ही किया और सन् 1957 से मृत्युपर्यन्त इसका संपादन करते रहे। परिषद् द्वारा 1915 से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में लेखन के साथ–साथ 1927-33 तथा 1939-41 तक सम्पादन भी स्वामी जी ने किया। बीच के वर्षों में 'विज्ञान' पत्रिका के विशेष सम्पादक रहे। विज्ञान के प्रसार के लिए उनके द्वारा 5 दर्जन से अधिक रेडियोवार्तायें भी दी गई हैं। किन्तु पहली रेडियोवार्ता 1949 में प्रसारित हुई।

इधर दिल्ली के 'पुस्तकायन प्रकाशन' के सहयोग से 'बाल विज्ञान सीरीज' के अंतर्गत् लगभग 3 दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनके प्रधान सम्पादक स्वामी जी ही थे।

विज्ञान और अध्यात्म को एक दूसरे के पूरक सिद्ध करने में उन्होंने अपनी क्षमताओं का भरपूर उपयोग किया। स्वामी जी का कहना था– "मैं आर्यसमाजी हूँ इसीलिए मुझे विज्ञान प्रिय है और चूँकि मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ इसीलिए मुझे आर्यसमाज से विशेष लगाव है।"

उनका मानना था कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। दोनों का उद्देश्य सत्य की खोज है। महिलाओं के प्रति विशेष सम्मान के कारण स्वामी जी ने अपनी पत्नी की स्मृति में 'डॉ० रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान' नाम की एक संस्था का भी गठन किया। इस संस्था द्वारा समय–समय पर विदुषी महिलाओं के व्याख्यान और परिचर्चाओं का भी आयोजन होता रहा है और साथ ही सत्–साहित्य के प्रकाशन की भी व्यवस्था थी। उन्होंने सरकारी और गैर सरकारी स्रोतों से परिषद् के लिए धन तो जुटाया ही, अपने पास से भी लाखों रूपये परिषद् को दिए।

स्वामी जी ने अपने लेखन और भाषण से समाज, सत्–साहित्य और विज्ञान की जो अमूल्य सेवायें प्रदान की हैं वे अविस्मरणीय हैं। यह देश का सौभाग्य था कि लगभग 90 वर्ष की आयु हो जाने के बाबजूद भी स्वामी जी एक युवा की भाँति सक्रिय थे। 18 जनवरी 1995 को अमेठी में श्री दीनानाथ शास्त्री के निवास पर स्वामी जी का निधन हो गया।

यह सच है कि स्वामी जी का पार्थिव शरीर नहीं रहा, किन्तु अपने कार्यों में वे अमर हो गए हैं। स्वामी जी पहले ही मान–सम्मान, पुरस्कार–पारितोषिक, श्रद्धांजलि–स्तुति से बहुत ऊपर उठ चुके थे। दुख–सुख, हानि–लाभ, यश–अपयश, जीवन–मरण को बड़े ही सहज रुप में स्वीकार करते थे। स्वामी जी के वीतरागी मन ने अपनी पत्नी और छोटे पुत्र के निधन को भी हँसकर झेला। बातचीत के दौरान स्वामी जी कभी इस बात का आभास भी नहीं होने देते थे कि आप किसी विद्वान से बात कर रहे हैं। किन्तु बातें सदैव प्रेरणाप्रद होती थीं। स्वामी जी विनोदप्रिय थे और उनकी हँसी बच्चों जैसी थी। उनके सम्पर्क में जो भी आया, उसे 'सत्य' और 'प्रकाश' प्रसाद रूप में मिले।

स्वामी जी के स्वर्गवास से जहाँ देश ने एक महान सपूत खो दिया वहीं, विज्ञान परिषद् के इतिहास का *स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती युग'* समाप्त हो गया। स्वामी जी आज हमारे बीच सशरीर उपस्थित नहीं है किन्तु अपने कार्यों में वे अमर हो गए हैं।

'विज्ञान' के प्रति झुकाव

सत्यप्रकाश अभी बी.एस-सी. में थे तभी से 'विज्ञान' में लिखने लगे थे। 1923 से 1947 तक की रचनाओं को देखने से लगता है कि प्रारंभ में तो विद्यार्थी सत्यप्रकाश ने अपने आपको रसायन विज्ञान विषयक लेखों तक ही सीमित रखा।

पहला लेख विज्ञान के जुलाई 1923 अंक में प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था– खटिक साम्राज्य। खटिक नाम कुछ अटपटा लगता है क्योंकि उत्तर प्रदेश के पूर्वाचल में खटिक का अर्थ है – सब्जी या तरकारी बेचने वाले। किन्तु यहाँ खटिक का अंग्रेजी पर्याय है कैलसियम। कैलसियम संगमरमर, कंकड़, शंख, सीपी, मूँगा, चूना–पत्थर, खड़िया, प्लास्टर ऑव पेरिस और पौधों में विद्यमान होता है। लेख निम्न पंक्तियों से प्रारंभ होता है–

"प्रभु के इस जगत–वैचित्र्य में आश्चर्यजनक पदार्थों का उद्‌घाटन और उनका जीवन पर अद्‌भुत प्रभाव कौतूहलजनक है। जिन वस्तुओं को हम सामान्य समझते हैं और जिनका मूल्य हम कम समझते हैं, उनमें ही एक वैज्ञानिक दृष्टि परमात्मा के अटल नियमों को निहारकर प्रसन्नता प्राप्त करती है।" हम देखते हैं कि विज्ञान और आध्यात्म के समन्वय का प्रयास वे विद्यार्थी जीवन से ही करते आये थे। 4 पृष्ठों के इस लेख में कैल्सियम के यौगिकों का वर्णन करते हुए, अंत में लिखते हैं– "इस प्रकार से खटिक साम्राज्य की दुदुंभी संसार के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बज रही है। इससे बने पदार्थ जगत् के सौन्दर्य में विशेष सहायक हुए हैं।"

एक और बात जो उभर कर सामने आती है, वह यह है कि प्रारंभ से ही उनका प्रयास रहा है कि भाषा सरल, सुबोध होने के साथ ही रोचक हो ताकि पाठक की रुचि प्रारंभ से अंत तक बनी रहे।

आगे के लेखों के अध्ययन से एक दूसरी बात जो उभर कर सामने आती है, वह यह कि उन्होंने बड़े ही क्रमबद्ध तरीके से लिखा है। जैसे परमाणुभार, रसायन के कुछ प्रारंभिक सिद्धान्त, क्षारत्व मान और सोडियम, साधारण रसायन, कार्बनिक रसायन, कार्बनिक रसायन की पद सूची आदि आदि। इन लेखों के माध्यम से उन्होंने डाल्टन के परमाणुवाद, प्राउट की कल्पना, बरजीलियस, डोबरीनर का त्रयी–सिद्धान्त, मेंडलीफ, मेंडलीफ का आवर्त संविधान, न्यूलैण्ड से तुलना, शून्य–समूह, उद्जन का स्थान, अपवाद आदि पर क्रम से लिखा है– और बाद में उन्होंने मेंडलीफ की आवर्त्त सारणी के अलग–अलग तत्वों पर भी लिखा है – जैसे स्राव और सोडियम, उद्जन, नत्रजन, ओषजन, ओषजोन आदि। और तो और उन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझाने का भी सफल प्रयास किया। डाल्टन का सिद्धान्त, बायल का सिद्धान्त, गेलूजक का सिद्धान्त, एवोगेड्रो का सिद्धान्त, ग्रेह्म का निस्तारण सिद्धान्त आदि।

उन्होंने तत्वों की मीमांसा, परमाणुवाद, अणुभार निकालने की विधि, एलीफेटिक यौगिक, लवणजन तत्व, संयुक्त उदकर्बन, लवणन तत्वों के अम्ल, मद्य आदि पर भी लेखनी चलायी। अनेक प्रकार के अम्लों की जानकारी दी। अमोनिया, फास्फोरस (स्फुर), शर्करा पर भी अनेक लेख लिखे। 193-27 की अवधि के बीच उनके 4 दर्जन के लगभग लेख प्रकाशित हो चुके थे। इस समय तक श्री सत्यप्रकाश एक विज्ञान लेखक के रूप में स्थापित हो चुके थे। विज्ञान के किसी–किसी अंक में तो उनके 3-3 या 4-4 लेख देखने में आते हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने विज्ञान परिषद् प्रयाग के कर्णधारों को प्रभावित ही नहीं बल्कि अभिभूत कर दिया था। और इसका सुपरिणाम था उन्हें 1927 में प्रो० ब्रजराज के साथ विज्ञान पत्रिका का सम्पादक बनाना।

1927-33 और 1939-1941 तक विज्ञान पत्रिका का सम्पादन करते रहे। 1932 में उन्हें 'डॉक्टरेट, डिग्री मिली। इस बीच उन्होंने कार्बन, सिलिकान (शैलम्), सैन्धम और पंशजम्, तामम्र, रजतम, स्वर्णम्, खटिकम्, स्त्रान्शम, भारम, मैगनीशम, दस्तमसंतृतम् और पारदम्, टंकम और टयटम, वंगम और सीसम्, रामम् और मांगनीज्, लोहम्, कोबल्टम् और नकलम् आदि पर लिखा।

अब चूँकि श्री सत्यप्रकाश सम्पादक भी थे अतएव उन्होंने कुछ अन्य विषयों पर भी लिखना प्रारंभ कर दिया। जैसे पुस्तकों और पत्रिकाओं की समालोचना, वैज्ञानिकों के जीवन वृत्त, यथा लुई पाश्ट्यूर, स्वर्गवासी पं० श्रीधर पाठक, सृष्टि की कथा, पृथ्वी कर इतिहास, नीहारिकायें, जीवन का आरंभ, पशुओं का अवतार, वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, रबर, गंध, रोशनाई, वार्निश, तेल, धर्म और विज्ञान, विज्ञान परिषद् का क्रमबद्ध इतिहास, हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य कोश, हारमोनों के चमत्कार, प्रकृति की प्रयोगशाला में राक्षसी भूलें, सुगंधित तेल, समुद्र की कहानी, पर्दे की ओट से (शरीर)। किन्तु इस बीच उनके लेख – विज्ञान में कम प्रकाशित हो रहे थे।

इसका कारण एक तो यह जान पड़ता है कि डॉ० सत्यप्रकाश ने इस दौरान अनेक युवा लेखक तैयार कर दिये थे, दूसरे वे परिषद् की अन्य गतिविधियों में व्यस्त हो चले थे और संभवतः सबसे बड़ी बात यह है कि वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे और 6 महीने जेल में भी रहे। इस बीच वे स्वदेशी रंग में पूर्णतः रंग गए थे। खादी का सफेद कुर्ता, खादी की सफेद धोती और खादी की ही सफेद टोपी।

एक और बात। इस बीच कुछ पुस्तकों का भी प्रणयन किया और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' द्वारा आयोजित अधिवेशनों में विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष पद से व्याख्यान भी दिए। और यही कारण था कि 1940 से 1947 के बीच विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित डॉ० सत्यप्रकाश के लेख उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉ० सर गंगानाथ झा, नकली का प्रश्न, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1941), पूना की विज्ञान परिषद् के सभापति डॉ० सत्यप्रकाश डी.एस–सी. का भाषण, रासायनिक खाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 32वें अधिवेशन (1944) जयपुर के विज्ञान परिषद् के सभापति डॉ० सत्यप्रकाश डी.एस-सी. के भाषण का सारांश, परमाणु बम की काट और अक्टूबर 1947 में (जो संभवतः पहले लिखा गया होगा) सृष्टि की उत्पत्ति और जीवन विकास। उन्होंने 150 से अधिक लेख और 1000 से अधिक पृष्ठ मात्र विज्ञान पत्रिका में लिखे और इसके अतिरिक्त उन्होंने पुस्तकें भी लिखी।

1937 से 1947 का समय देश के लिए उथल–पुथल का समय था। इन बीच स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ गया था। इस प्रकार 1947

तक अपने कृतित्व से डॉ० सत्यप्रकाश ने विज्ञान के प्रचार--प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

यह सत्य है कि डॉ० सत्यप्रकाश विज्ञान परिषद् के संस्थापकों में नहीं हैं, किन्तु परिषद् के पालन–पोषण–पल्लवन में उनकी भूमिका चिरस्मरणीय है। उनके पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, बाबू रामदास गौड़, महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, मौलाना हमीदुद्दीन साहेब, डॉ० सालिग्राम भार्गव, डॉ० गोपाल स्वरूप भार्गव, श्री ओंकारनाथ शर्मा, डॉ० नीलरत्न धर, डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा, श्री महावीर प्रसाद, स्वामी हरिशरणानन्द, डॉ० श्री सत्येश्वर घोष, प्रो० ब्रजराज, प्रो० निहालकरण सेठी आदि से जो प्रेरणा उन्हें विज्ञान के प्रचार–प्रसार की मिली, उससे कहीं अधिक उन्होंने अपने शिष्यों और सहयोगियों को दी। स्व० डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० संत प्रसाद टण्डन, डॉ० श्रीरंजन, श्रीमती रानी टंडन, डॉ० रामचरण मेहरोत्रा, डॉ० देवेन्द्र शर्मा, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० वा. वी. भागवत, डॉ० उमाशंकर, डॉ० रामदास तिवारी, डॉ० रमेशचन्द्र कपूर, प्रो० कृष्ण जी, डॉ० रामदेव मिश्र, डॉ० ओंकार नाथ परती, डॉ० वी. के. मालवीय, डॉ० रमेश दत्त शर्मा, श्री शुकदेव प्रसाद और मुझे स्वयं स्वामी जी से प्रेरणा मिली है।

दूसरों से विज्ञान विषयक लेख लिखवा लेने की स्वामी जी में अद्‌भुत कला थी और संभवतः यही कारण है कि स्वामी जी ने विज्ञान लेखकों की एक पूरी पीढ़ी ही तैयार कर दी है।

परिशिष्ट

'विज्ञान' में प्रकाशित लेखों की सूची 1923 से 1947 तक

क्र-	लेख का नाम	वर्ष	प ष्ठ	योग
1	खटिक साम्राज्य	जुलाई 1923	153-156	4
2	परमाणु भार	1925	160-169	10
3	रसायन के कुछ प्रारंभिक सिद्धांत	"	228-235	8
4	तत्वों का संविभाग	"	5-16	12
5	मेंडलीफ का आर्वत संविभाग	"	63-72	11
6	स्थिर मेयर का आवर्त्तक वक्र	"	116-127	12
7	शून्य समूह के तत्व	"	193-208	16
8	क्षार तत्व–ग्राव और सोडियम	सन 1926	49-61	13

9	साधारण–रसायन		61-69	9
10	कार्बनिक रसायन	"	91-107	11
11	कार्बनिक रसायन की पद सूची	"	97-107	11
12	वायव्य संबंधी सिद्धान्त (शेष फिर)	"	107-112	6
13	वायव्य संबंधी सिद्धान्त	"	151-153	3
14	तत्वों की मीमांसा	"	154-160	7
15	परमाणुवाद	सन् 1927	170-176	7
16	अणुभार निकालने की विधि	"	193-204	12
17	विद्युत प थक्करण और आवर्त संविधान	"	217-227	11
18	भुजयुग्म रेखागणित या बीजज्यामिति	"	251-256	6
19	उद्जन	"	261-264	4
20	मद्यमज्जिक यौगिक	"	274-281	8
21	लवणजन तत्व	"	4-8	5
22	विषमयोगी या संयुक्त उद्कर्बन	"	13-15	3
23	विषम यौगिकों के लवणन यौगिक	"	58-64	7
24	मद्य	"	126-133	8
25	लवणजन तत्वों के अम्ल, उदहरिकाम्ल	"	49-58	10
26	ओषजन	"	133-139	7
27	मद्यनार्द और कीतोन (कीटोन)	"	157-162	6
28	जल	"	163-168	6
29	ज्वलक और गन्धीय यौगिक	"	203-208	6
30	ओजोन	"	208-211	6
31	माज्जिक अम्ल	"	261-266	6
32	अम्ल, आनार्द्रिद, कमिद और सम्मेलन	"	49-52	4
33	गन्धकऔर गन्धिद	मई 1927	64-68	5
34	अमिन	जून 1927	105-107	3
35	गन्धक के ओषिद और अम्ल	जून 1927	97-104	8
36	नोषजनक और अमोनिया	जुलाई 1927	152-160	9
37	श्यामजल यौगिक	जुलाई 1927	174-180	7
38	नोषजन के जीविद और अम्ल	अगस्त 1927	200-207	8
39	असंप क्त उद्कर्बन	"	217-222	6
40	बहुउदिक मद्य और उनके यौगिक	सितम्बर 1927	277-283	7
41	स्फुर	"	259-266	8
42	संक्षीणम और आन्वनम	अक्टूबर 1927	5-11	7
43	शर्करायें अथवा कर्ब – उद्वेत	"	23-33	11

44	समालोचना (हिन्दी बुक कीपिंग, मीठ चुटकी)	"	80-87	7
45	उदोष और कीतोनिक अम्ल	नवम्बर–दिस0	82-88	7
46	रोगोपचार के साधन (1)	"	105-109	5
47	कार्बन और शैलम्	"	109-112	4
48	द्विभास्मिक अम्ल और उनके यौगिक	जनवरी 1928	132-145	14
49	कार्बन और शैलम	"	161-166	6
50	लुई पास्टूयूर	फरवरी–मार्च 1928	203-309	7
51	बानाजावीन समुदाय	"	225-236	12
52	सैन्धम और पांशुजम्	फरवरी–मार्च 1928	217-225	9
53	समालोचना (फेफड़ों की परीक्षा)	"	236-236	1
54	खटिकम, सशम् और भारम्	मई 1928	20-26	7
55	अमिनो अजीब और द्वयजीव यौगिक	"	44-52	9
56	समालोचना (24 हजार मोती)	"	64	1
57	ताम्रम्, रजक्म और स्वर्णम्	जून–जुलाई 1928	105-117	13
58	वैज्ञानिक परिमाण	"	129-144	16
59	गन्धोनिकाम्ल और द्वियमोल	"	151-158	8
60	समालोचना (अद्वैतवाद)	"	158-160	3
61	मगनीसम्, दस्तम्, सदात्तम् और पारदम्अगस्त–सितम्बर	1928	183-190	8
62	बानजाविक, मद्य, मद्यानाद्र और कीटोन	"	202-206	5
63	स्वर्गवासी पं0 श्रीधर पाठक	सितम्बर 1928	202-206	5
64	बानजाविक अम्ल	सितम्बर 1928	217-224	8
65	वैज्ञानिक परिमाण, कार्बनिक यौगिक	"	225-240	16
66	नफथीन, अंगारिन, पिरीदिन और कुनोलिन	अक्टूबर 1928	22-34	13
67	वैज्ञानिक परिमाण (लघु विक्यफल)	"	75-82	8
68	समालोचना	नवम्बर 1928	62-62	1
69	टंकम् और स्फटम्	"	75-82	8
70	वैज्ञानिक परिमाण	"	89-95	7
71	समालोचना (ध्यान से आत्मचिकित्सा)	दिसम्बर 1928	128-129	2
72	वंगम् और सीसम्	जनवरी 1929	165-175	11
73	पंचम और षष्ठ समूही धातुयें	फरवरी 1929	215-227	17
74	समालोचना (प्रकृति, श्रीकृष्ण पत्रिकायें)	"	235	1

75	रागम् और मांगनीज	मार्च 1929	275–284	10
76	लोहम्, कोबल्टम् और नकलम्	अप्रैल 1929	18-26	9
77	सृष्टि की कथा	मई 1929	57-67	11
78	लोहम्, कोबाल्टम् और नकलम्	मई 1929	71-82	12
79	आकाश	जून 1929	97-82	8
80	रूथेनम और पर रौप्यम समुदाय	जुलाई 1929	148-154	7
81	दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व	जुलाई 1929	148-154	7
82	नीहारिकायें	जुलाई 1929	159-168	10
83	पृथ्वी का इतिहास	जुलाई 1929	178-185	8
84	समालोचना (वेदकाल निर्णये, खून के आँसू, विद्यार्थी मुस्कान)	जुलाई 1929	189-192	4
85	शून्य समूह के तत्व	अगस्त 1929	193-206	13
86	जल लालेक	अगस्त 1929	209-215	7
87	समालोचना (ब्रणबंधन व पट्टियां), महारथी (प्रताप अंक)	"	236-237	2
88	मिट्टी के गुण	"	238-240	3
89	शिलायें और प्रस्तर	सितम्बर 1929	274-277	4
90	समालोचना (जीव विज्ञान, भूगोल सुप्रभातम्)	सितम्बर 1929	274-277	4
91	पृथ्वी पर परिवर्तन	अक्टूबर 1929	18-23	6
92	भारतवर्ष के खनिज	अक्टूबर 1929	23-29	7
93	भारतवर्ष की भौगर्भिक परिस्थिति	अक्टूबर 1929	29-37	9
94	भौतिक रसायन के पारिभाषिक शब्द	अक्टूबर 1929	37-45	9
95	समालोचना (ज्योत्स्ना)	अक्टूबर 1929	46	1
96	जीवन का आरम्भ	नवम्बर 1929	67-71	5
97	पशुओं का अवतार	दिसम्बर 1929	111-122	12
98	समालोचना (अनेकान्त, स्वास्थ्य संकाय)	जनवरी 1930	192-192	2
99	एमिल फिशर	फरवरी 1930	204-216	13
100	वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द	मार्च 1930	241-255	15
101	"	अप्रैल 1930	1-11	11
102	"	मई 1930	49-57	9
103	"	जून 1930	89-95	7
104	समालोचना, अदभुत पुरुष, प्रारम्भिक रसायन	जून 1930	89	1
105	वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द	सितम्बर पूरा अंक 1930	209-287	79
106	विज्ञान परिषद् और वैज्ञानिक साहित्य	दिसम्बर 1930	108-116	9

107	समालेचना (आर्य्य का ऋषि बोधांक)	दिसम्बर 1930	187	1
108	रबर	फरवरी–मार्च 1931	200–207	8
109	रोटी के लिए खमीर बनाना	अप्रैल 1931	11-15	5
110	समालोचना क्लोम यथातथ्यम्	मई 1931	96	1
111	समालोचना (स्मृति मंदिर प्रदेयशकह,) आयुर्वेद संदेश	जून 1931	155–162	8
112	मराठी का वैज्ञानिक साहित्य और पारिभाषिक शब्द	सितम्बर 1931	284–287	4
113	गंध	सितम्बर 1931	270–272	3
114	भारत में वैज्ञानिक शिक्षा	जुलाई 1931	155–162	8
115	समालोचना (वायु पर विजय, महिला श्राद्ध विज्ञान)	सितम्बर 1931	288	1
116	इंजीनियर्स कान्फ्रेंस	नवम्बर 1931	70	1
117	समालोचना (क्षार निर्माण)	फरवरी 1932	166–168	3
118	बंगाल केमिकल वर्क्स	जुलाई 1932	166–168	3
119	वैज्ञानिक आस्तिकता	अगस्त 1932	149–154	6
120	भारतवर्ष में वनस्पति विज्ञान कार्य (अनुवाद)	दिसम्बर 1932	77–83	7
121	धर्म और विज्ञान	जनवरी 1933	97–109	13
122	समालोचना (पुरातत्वांक)	"	160	1
123	राष्ट्रभाषा और वैज्ञानिक साहित्य (वीणा से)	मार्च 1933	161–167	7
124	भाँति–भाँति की रोशनाईयाँ बनाइये, वैज्ञानिक चुटकुले	दिसम्बर 1934	98–104	7
125	रंगीन रोशनाईयाँ बनाइये, वैज्ञानिक चुटकुले	दिसम्बर 1934	98-104	7
126	विज्ञान के स्वर्णमय सदुपयोग स्याहियों के विविध रूप	फरवरी 1935	165-170	6
127	विज्ञान के स्वर्णमय उपयोग घरेलू धन्धे, स्याहियों के विविध उपयोग	मार्च 1935	207-211	5
128	हमारा जातीय भोजन (अनुवाद)	अप्रैल 1935	71-73	4
129	ऊपरी चमक दमक के साथ रक्षा वार्निश	जुलाई 1935	174-176	3
130	आजकल का पारस	जुलाई 1935	49-62	14
131	विषाणुओं से रक्षा	अक्टूबर 1936	12-16	5
132	भिन्न–भिन्न प्रकार के तैल	दिसम्बर 1936	98-102	5

133	हिन्दी साहित्य में गौड़ जी का स्थान	दिसम्बर 1937	113-122	10
134	विज्ञान परिषद की रजतजयंती	जनवरी 1938	158-161	4
135	इस देश का एक भयानक रोग कालाअजार	मार्च 1938	251	
136	मिट्टी का तेल	जून 1938		
137	संकुचित वायु के चमत्कार	अगस्त 1934	162	
138	चक्र यंत्र का प्रयोग	जुलाई 1938		
139	रेशम, ऊन और रुई की पहचान	अक्टूबर 1938	1–4	4
140	तेलों का उपयोग	नवम्बर 1938	59-68	10
141	विज्ञान परिषद का क्रमबद्ध इतिहास	दिसम्बर 1938	98-124	27
142	हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य कोश	दिसम्बर 1938	111–124	14
143	मद्यपान से भयंकर हानियाँ	जनवरी 1939	106–111	6
144	गन्धियों के अन्तःस्राव– हारमोनों के चमत्कार	जनवरी 1939	11–17	7
145	प्रकृति की प्रयोगशाला में राक्षसी भूलें	जनवरी 1939	32–34	3
146	सुगन्धित तैल (गतांक)	जनवरी 1939	34–37	4
147	नये परमाणुओं की संरचना	मार्च 1939	94-104	11
148	समुद्र की कहानी	मई 1939	79-80	2
149	परदे की ओट से (शरीर)	नवम्बर 1939	79–80	2
150	शिशुओं और बालकों के भोजन का प्रश्न	जुलाई 1940	121–123	3
151	समालोचना	"	39	1
152	अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पूना की विज्ञान परिषद के सभापति डॉ० सत्यप्रकाश, डी.एस–सी. का भाषण	फरवरी 1941	161–173	13
153	एल्युमीनियम के धातु संकर	अक्टूबर 1941	6–8	3
154	रासायनिक खाद	अगस्त 1942	164-166	3
155	विश्व ज्ञान	नवम्बर 1942	78-80	3
156	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बत्तीसवें अधिवेशन के विज्ञान परिषद् के सभापति डॉ० सत्यप्रकाश के भाषण का सारांश	अक्टूबर 1944	1–8	8
157	परमाणुबम की काट	नवम्बर 1945	57–59	3
158	सृष्टि की उत्पत्ति और जीवन	अक्टूबर 1947	13–19	7

जीवन सम्बन्धी लेख

1	एमिल फिशर	फरवरी 1930	204
2	आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय के रासायनिक अन्वेषण	जुलाई 1932	124
3	कलकत्ते में उनसे समागम (डॉ० गणेश प्रसाद)	अक्टूबर 1935	11
4	हिन्दी साहित्य में गौड़ जी का स्थान	दिसम्बर 1937	113
5	हिन्दी के प्रसिद्ध ज्योर्तिविद बाबू माहावीर प्रसाद श्रीवास्तव	दिसम्बर 1938	79
6	स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉ० सर गंगानाथ झा	जनवरी 1942	

सम्पादित

1 वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली (1930)
2 पारिभाषिक शब्दावली (1945)

विज्ञान विषयक व्याख्यान

1 नये परमाणुओं की रचना विज्ञान मार्च 1939, पृष्ठ 94
2 विज्ञान परिषद् की रजत जयन्ती के अवसर पर 21 फरवरी 1935 (श्री सम्पूर्णनन्द जी शिक्षा मंत्री की उपस्थिति में विजयानगरम हाल में दिया गया भाषण)
3 आजकल का पारस विज्ञान नवम्बर 1935, पृष्ठ 49
विज्ञान परिषद् के वार्षिकोत्सव पर 15-11-35 को दिया गया भाषण
4 परमाणु बम की काट : विज्ञान, नवम्बर 1945, पृष्ठ 57, हिन्दू बोर्डिंग हाउस में अक्टूबर 1945 को डॉ० श्री रंजन के सभापतित्व में दिया गया भाषण
5 अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पूना के विज्ञान परिषद् के सभापति के पद से दिया गया भाषण, फरवरी 1941
6 अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बत्तीसवें अधिवेशन के विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण, अक्टूबर 1944

पुस्तकें

1 सुन्दरी मनोरमा की करुण कथा, 1925
2 कार्बनिक रसायन, 1929
3 वैज्ञानिक परिमाण (डॉ० निहालकरण सेठी के साथ), 1929
4 साधारण रसायन, 1929
5 वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, भाग I, 1930
6 बीजज्यामिति, 1931
7 स्व० रामदास गौड़ का स्मृति अंक (संपादन), 1938
8 विज्ञान का रजत जयंती अंक (संपादन), 1938
9 उपयोगी नुस्खे (संपादन : डॉ० गोरख प्रसाद के साथ, 1940)

हिन्दी विज्ञान को समर्पित महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय*

विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति को आम लोगों तक पहुँचाने का एक प्रमुख उपाय पत्र–पत्रिकाएँ हैं। इसमें विद्वानों के नये–नये विचार और नयी जानकारियाँ दी हुई होती हैं। यदि ये विचार और जानकारियाँ राष्ट्रीय भाषा में हों तो इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। स्वर्गीय महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव उन कर्मठ लेखकों में एक थे जिन्होंने स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी भाषा में विज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया और अन्तिम समय तक तत्पर रहे।

दिसम्बर 1938 में 'विज्ञान' में प्रकाशित लेख में जिसके लेखक डॉ० सत्यप्रकाश हैं, बाबू महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव का परिचय इस प्रकार दिया गया है "महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव का जन्म 18 अक्टूबर सन् 1887 ई० को इलाहाबाद जिले के हँडिया तहसील के बिझौली नामक ग्राम में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। यह गाँव लच्छागिर से जिसे लोग पाण्डवों का लाक्षागृह कहते हैं डेढ़ मील के लगभग पूरब गंगा जी के बायें तट पर बसा हुआ है।

अक्षरारंभ और आरंभिक गणित का पाठ पूज्यपाद पिता मुंशी शिवबदन लाल जी ने पढ़ाया था। परन्तु उस गाँव में कोई पाठशाला न होने के कारण अल्पावस्था में ही आपको ननिहाल विजयपुर जिला मिरजापुर में भेज दिया गया जहाँ हिन्दी में सन् 1893 ई० के आरम्भ में अपर प्राइमरी परीक्षा पास करके सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की। परन्तु पढ़ने के लिए मिरजापुर जाना पड़ता जहाँ भेजने के लिए छोटी अवस्था के कारण नानी जी ने स्वीकार नहीं किया। इसलिए विजयपुर में ही रहकर वहाँ के मुख्याध्यापक से, जो अंग्रेजी भी जानते थे, दो–तीन पुस्तकें अंग्रेजी की पढ़ीं।

*विज्ञान परिषद प्रयाग महर्षि दयानन्द मार्ग इलाहाबाद–211002 (उ.प्र.)

विजयपुर आने के दो वर्ष बाद जीविका के लिए आपके पिता जी को कलकत्ता जाना पड़ा। सन् 1900 ई० के सितम्बर या अक्टूबर मास में आप भी कलकत्ता चले गये और वहाँ दो स्कूलों में अंग्रेजी का अध्ययन किया। सन् 1904 ई० के आरम्भ में उनके पिता जी का मालिक से कुछ मतभेद हो गया। वे नौकरी त्याग कर घर चले आये और कृषि कार्य में संलग्न होने का विचार किया। इस प्रकार पिता जी के साथ उन्हें भी घर चले आना पड़ा और उसी वर्ष उनका विवाह भी हो गया।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव जी की प्रबल इच्छा थी कि आगे की पढ़ाई इलाहाबाद में करें। इसीलिए 1904 ई० के जुलाई मास में उन्होंने अपना नाम प्रयाग की कायस्थ पाठशाला में नवीं कक्षा में लिखाया। यहाँ फीस माफ थी, पुस्तकें भी मिल गयी थीं। जीवन निर्वाह के लिए तीन रुपए का ट्यूशन कर लिया था। पिता जी का स्वर्गवास हो जाने पर वह सहायता भी बन्द हो गयी। ऐसी दशा में उनका पढ़ना लिखना बन्द हो जाता यदि उस समय वे श्रद्धेय रामदास गौड़ के साथ न रहते होते। उस समय गौड़ जी कायस्थ पाठशाला में रसायन के अध्यापक थे। इनके कारण कायस्थ पाठशाला के प्रा० हरगोविन्द प्रसाद निगम, बाबू हीरालाल हलवासिया और उस समय के हेडमास्टर गणेशीलाल जी ने उनकी आर्थिक सहायता की थी। इस प्रकार 1906 ई० में हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

बीमारी के कारण कायस्थ पाठशाला की एफ. ए. की कक्षा में नाम देरी से लिखाया। परन्तु 5–6 दिन बाद ही पुनः बीमार पड़ गये और विजयपुर चले गये। बीमारी से एक माह तक ग्रस्त रहे। अब उनकी पढ़ने की हिम्मत छूट गयी थी, क्योंकि अस्वस्थता के साथ पढ़ने लिखने की ही चिन्ता नहीं थी वरन् माता, छोटी बहन, छोटा भाई और स्त्री के पालन पोषण का भी भार सिर पर आ पड़ा था। इसलिए नौकरी करने का विचार हुआ। एक सप्ताह के लगभग मिरजापुर की कलक्टरी कचहरी में काम किया। इसके बाद मेरे परम सहायक बाबू अवध बिहारी लाल जी कृपा से सचिवालय आफिस इलाहाइबाद में 25 रुपए मासिक पर अस्थायी रूप से काम करने लगे। यहाँ 18 दिन तक काम किया था जब नवम्बर मास में गजट में छपा कि एफ. ए. में पढ़ने के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिलेगी। उस समय यह समस्या

उपस्थित हुई कि नौकरी करूं या उसे छोड़कर पढ़ना आरम्भ करूं। दो चार दिन के असमंजस के बाद रामदास गौड़ की प्रेरणा से उन्होंने फिर कायस्थ पाठशाला में नाम लिखाया जहाँ से 1908 ई० में इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास किया और बी.एस–सी. पढ़ने के लिए म्योर कॉलेज (अब इलाहाबाद विश्वविद्यालय) में नाम लिखाया। यहाँ के केमिस्ट्री के सहायक प्रोफेसर श्रद्धेय सतीश चन्द्र देव की सहायता से कुछ किताबें मिल गयीं, कॉलेज की फीस आधी माफ हो गयी। कायस्थ पाठशाला से दस रुपए मास का वजीफा और साठ रुपए का विजयनगरम वजीफा मिलने लगा। परन्तु इससे भी घर का काम नहीं चलता था, इसलिए ल्यूकरगंज में रहकर एक ट्यूशन के लिए भी डेढ़ घण्टे के लगभग समय देना पड़ता था। वहीं से कॉलेज आने जाने में दो ढाई घण्टे के लगभग लग जाता था और ट्यूशन के लिए भी डेढ़ घण्टे के लगभग समय देना पड़ता था। इसलिए पहले साल की पढ़ाई नियमित रूप से नहीं हो पायी। दूसरे साल उस समय के प्रिन्सिपल जेनिंग्स महोदय से भी पांच रुपए की छात्रवृत्ति मिलने लगी। इसलिए ट्यूशन छोड़कर भारद्वाज बोर्डिंग हाउस में रहने लगे। इस बोर्डिंग में बिजनोर के बाबू ब्रजनन्दन शरण एक सहपाठी थे जिनसे समय–समय पर कुछ आर्थिक सहायता मिल जाती थी। इस प्रकार पढ़कर 1910 ई. में बी.एस–सी की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण किया। यदि उस समय के प्रिन्सिपल या प्रोफेसर लोग आजकल के नियमों का पालन करते होते जिनके अनुसार होनहार छात्रों को भी दो बड़े–बड़े वजीफा एकसाथ नहीं मिलते तो उनकी कालेज की पढ़ाई असम्भव थी। परन्तु सौभाग्य की बात थी कि उस समय बड़े लोगों के दिमाग में यह बात नहीं आयी थी कि कॉलेज की शिक्षा गरीबों के लिए नहीं है।

बी.एस-सी. के आगे पढ़ने की इच्छा होते हुये भी घर की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए हिम्मत नहीं पड़ी इसलिए दो महीने कन्नौज के हाईस्कूल में नौकरी कर ली। इसके बाद म्योर सेंट्रल कॉलेज में रसायन के असिस्टेंट डिमान्सट्रेटर पद पर नियुक्त हुए जहाँ 8 महीने तक नौकरी की। दूसरे वर्ष ट्रेनिंग कॉलेज में तीन महीने के लिये इम्पीरियल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूसा काम करने गये, परन्तु वहाँ का वातावरण अनुकूल न पाने पर पुनः यहीं चले आये और सन् 1931 ई. की जनवरी तक यहीं काम करते रहे। 9 जनवरी को यहाँ से बलिया

हेडमास्टर होकर चले गये, जहाँ से साढ़े चार वर्ष काम करने के बाद यहाँ फिर हेडमास्टर होकर आ गये। उनके चार संतानें, दो पुत्र और दो पुत्री हुई थीं।

शिक्षण कार्य में लगे रहने तथा श्रद्धेय श्री रामदास गौड़ की कृपा से विज्ञान लेखन में उनकी रुचि विकसित हुई। उन्हीं के प्रेरणा से ही आप विज्ञान परिषद प्रयाग और साहित्य सम्मेलन के सदस्य बने। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना होने पर आपको सहायक मंत्री बनाया गया और फिर मंत्री बना दिये गये। उस समय साथ काम करने वाले मित्रों से वैमनस्य हो जाने पर आपने सबसे अलग होकर जो कुछ काम हो सके उसे करने का संकल्प लिया।

हिन्दी प्रेम

उनके मन में राष्ट्र और राष्ट्रीयता के प्रति गहरा लगाव था। अतः जब विज्ञान के प्रचार–प्रसार को समर्पित देश की प्राचीनतम संस्था विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा प्रकाशित हिन्दी विज्ञान पत्रिका का प्रथम अंक (अप्रैल, 1915) प्रकाशित हुआ, तो उस अंक में आपका लेख था। विज्ञान के प्रथक अंक में ही प्रकाशित यह लेख 'डांडी के अद्‌भुत खेल और उसका सिद्धान्त' शीर्षक के अन्तर्गत था। लेखों की भाषा का नमूना देख :

"कैंची की नोकें किनारे पर रहती हैं इसलिए घिस जाती हैं और बीच का हिस्सा बचा रहता है इसलिए तेज रहता है।"

"बल लगने का स्थान घुमाव से काम करने के स्थान की अपेक्षा बहुत दूरी पर होना चाहिए। यह बात सरौते में घटती है या नहीं। सरौते में घुमाव की कील एक सिरे पर रहती है, बल लगाने वाला स्थान दूसरे सिरे पर अर्थात् दस्ते पर और काम करने वाला स्थान अथवा सरौते का वह भाग जिससे सुपारी इत्यादि कड़ी चीज काटी जाती है बीच में रहता है और निस्सन्देह घुमाव के पास है। यही तो बात है कि कड़ी से कड़ी सुपारी थोड़ा ही बल लगाने से कट जाती है। जहाँ अधिक बल लगाने की आवश्यकता होती है वहाँ दस्ते का सिरा और दूर रखा जाता है या यों कहो कि दस्ता लम्बा बनाया जाता है।"

"लेकिन लोहे का छड़ जितना ही बड़ा बनेगा उतना ही भारी हो जायेगा इसलिए यदि बहुत लम्बा बनाया जाय तो एक जगह से दूसरी

जगह ले जाने में कठिनाई पड़ेगी। इसलिए इसकी लम्बाई की भी सीमा होती है। यदि यह कहा जाय कि लम्बा भी बने और पतला, भारी न होने पावे तो ठीक न होगा, क्योंकि पतला किया जायेगा तो भारी बोझ उठाने में लचक जायेगा"।

"लोहे की बनी हुई घरेलू वस्तुओं को देखने से यह मालूम होता है कि वर्षाकाल में यह मुर्चा (तनेज) लगने से बिगड़ जाया करती हैं। अन्य ऋतुओं में ऐसा कम होता है। वर्षा ऋतु में हवा के साथ जलवाष्प की अधिकता होती है क्योंकि कपड़े जल्दी नहीं सूखते और सूखे कपड़े भी गीले–गीले प्रतीत होते हैं। इन सब बातों से यह मालूम होता है कि मुर्चा (तनेज) लगने का कारण कदाचित जलवाष्प है क्योंकि हवा तो और ऋतुओं में भी रहती है परन्तु उससे कुछ विकार नहीं होने पाता। यदि जलवाष्प के कारण मुर्चा लगता है तो जल से भी मुर्चा लगना सम्भव है, किन्तु किसी लोहे की वस्तु को जल में डुबो देने से उतना मुर्चा नहीं लगता जितना गीली लोहे की वस्तु को हवा में रख देने से। इससे यह प्रकट होता हे कि मुर्चा लगने के हवा और जल वा जल–वाष्प दोनों ही कारण हैं।"

"लोग यह भी जानते हैं कि बाहर से आकर एकबारगी कपड़ा न उतार देना चाहिए नहीं तो गरमी सरदी लग जायगी। इसका कारण यह है कि बाहर से आकर रुक जाने से गरमी पैदा होती है अर्थात् चलने से जो बल उत्पन्न होता है वह रुकने पर ताप के रूप में प्रगट हो जाता है जिससे पसीना होता है। यदि यह पसीना धीरे–धीरे न सूखे और कपड़ा उतार देने से एकबारगी सूखे तो बदन असाधारण ठंडा होने से सर्दी खा जायगा।"

"जैसे वाह्य जगत में मात्रा तथा शक्ति का योग सैदव एक सा रहता है वैसे ही शरीर के भीतर भी जितना अनावश्यक भोजन शरीर के भीतर जाता है वह या तो शरीर के भीतर ही रहकर अनिष्ट करता है या शरीर के बाहर विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है। यदि शरीर में रहा तो अनावश्यक चर्बी में बदलकर त्वचा के नीचे अथवा हृत्पिण्ड के चारों ओर मांस–सूत्रों के बीच में अड़कर उनके काम में बाधा पहुँचाता है। यदि ऐसा न हुआ तो किसी न किसी तरह बाहर निकलता है जिसमें

यकृत, वृक तथा अन्य रासायनिक संहारकर्ताओं का ही काम विशेष रीति से नहीं बढ़ जाता वरन् काम के कारण जो विषैले पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं उनके शरीर में निरन्तर रहने से रक्त में मँद विष संचार करने लग जाते हैं।"

स्पष्ट है कि स्व० श्रीवास्तव जी के लेखों की भाषा अत्यन्त सरल, रोचक एवं ग्राह्य है जिससे साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है।

श्रीवास्तव जी ने अपने लेखन से प्रायः ऐसे विषयों को समावेशित किया है जो लोकोपयोगी होने के साथ ही साथ सामयिक भी हैं। आपके द्वारा लिखित एवं "विज्ञान" मासिक में प्रकाशित लेखों की संख्या 58 है (देखें सारणी –1)। इन लेखों का अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि आप सदैव ऐसे विषयों का चुनाव करते थे, जो किसी भी जिज्ञासु के चंचल मन में आते रहते हैं। इसमें उन्होंने लोगों को समझाने के लिए विभिन्न उदाहरणों एवं तर्कों का प्रयोग किया है। "विज्ञान" के अतिरिक्त प्रयाग की 'गृहलक्ष्मी' में 'कपड़े रंगना' तथा ज्ञान–मण्डल से प्रकाशित 'मर्यादा' में 'दस मास के आकाश चित्र', 'भारतवर्ष में कौन तिथि पद्धति राष्ट्रीय दृष्टि से उपयोगी हो सकती है' विषयों पर दो लेखमालाएँ आरंभ की थीं। काशी की 'निगमागम चन्द्रिका' में पंचागों में एकता की आवश्यकता' पर भी एक छोटी लेखमाला छपायी थी। लखनऊ की "माधुरी" में भी ज्योतिष सम्बन्धी कई लेख निकले हैं। किन्तु फुटकर लेखों के अतिरिक्त उन्होंने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह है सूर्य सिद्धान्त का "विज्ञान भाष्य"।

सूर्य सिद्धान्त : विज्ञान भाष्य

वेदांग ज्योतिष के बाद ज्योतिष शास्त्र के क्षेत्र में ज्योतिष के कई सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ। इनमें से पाँच सिद्धान्त विशेष महत्व के हैं। इनका तुलनात्मक विवेचन वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध रचना "पंचसिद्धान्तिका" में किया है। पाँच सिद्धान्त निम्न श्लोक में गिनाये गये हैं–

पोलिश–रोमक–वासिष्ठ–सौर–पैतामहासु पंचसि द्धान्तः।

इन पाँचों में दो (पौलिश और रोमक) का लाटदेव ने विवेचन किया। वराहमिहिर की दृष्टि से पौलिश सिद्धान्त में गणना यथार्थ है, रोमक सिद्धान्त भी लगभग ऐसा ही है। इन दोनों से भी अधिक स्पष्ट

सावित्र सिद्धान्त अर्थात् सौर सिद्धान्त या सूर्य सिद्धान्त है। शेष दो वासिष्ठ और पैतामह झूठे (दुरविभ्रष्ट) हैं। पंचसिद्धान्तिका का एक संस्करण प्रोफेसर जी. थीबोट (G. Thibaut) और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने अग्रेज़ी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। सुधाकर जी के संस्कृत भाष्य का नाम "पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिक" है।

इसी परम्परा में श्रीवास्तव जी ने जिस समय सूर्य सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य जैसा दुष्कर कार्य अपने हाथों में लिया, यह निश्चित रूप से साहस का कार्य था। सन् 1922 में ग्रन्थ लेखन का कार्य आरम्भ हुआ तथा इसका प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार) सन् 1924 में प्रकाशित हुआ। बारहवॉ अध्याय सन् 1931 में छपा। धनाभाव के कारण काम में बाधा आयी तथा अन्तिम दो अध्याय सन् 1940 में छपे। इस प्रकार यह भाष्य मातृ द्वितीया संवत् 1997 वि. अर्थात् सन् 1940 ई. में समाप्त हुआ था। सूर्य सिद्वान्त का विज्ञान भाष्य विज्ञान परिषद की मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में लेखमाला के रूप में छपता रहा। सन् 1940 में इन्हें ग्रन्थ रूप दे दिया गया।

सूर्य सिद्वान्त के रचना काल व रचनाकार के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस पुस्तक में जो रचना काल बतलाया गया है वह समझ से परे है क्योंकि यदि यह इतने प्राचीन काल से इसी प्रकार से चला आता तो आज से पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत काल में पाण्डवों के चौदह वर्ष का बनवास काल पूरा होने के समय पर दुर्योधन के दरबार में प्रश्न क्यों उठ खड़ा होता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ का आदि रूप वराहमिहिर के बहुत पहले का है और सम्भव है कि पंचसिद्धान्तिका में जो रूप दिखई देता है वह आदि रूप न होकर वराहमिहिर द्वारा संशोधित किया गया हो। यदि सूर्य सिद्धान्त विदेशी के द्वारा प्राप्त हुआ होता तो ब्रह्मगुप्त अवश्य लिखते, क्योंकि रोमक सिद्धान्त के लिए, जो निस्सन्देह विदेशी है, उन्होंने साफ–साफ लिख दिया है। पंचसिद्धान्तिका प्रकाशित टीका में म. म. पं. सुधाकर द्विवेदी का दिया हुआ सूर्यारुण–संवाद के मूल का पता नहीं है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह किसने लिखा और किस आधार पर लिखा। नित्यानन्द का यह लिखना कि यह कलियुग के 3600 वर्ष बीतने

पर सन् 499 ई. में लिखा गया जब आर्यभट्ट ने अपना आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा, सन्देहपूर्ण है। शायद इसी भ्रम के कारण मुनीश्वर ने भी आर्यभट्ट को सूर्य सिद्धान्त का रचयिता मान लिया था। अलबरूनी का यह कथन है कि यह लाटाचार्य या लाटसिंह द्वारा उत्पन्न किया गया भ्रम है क्योंकि वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त किसी ने भी लाटाचार्य को सूर्य सिद्धान्त का रचयिता नहीं माना। वराहमिहिर के अनुसार लाटाचार्य रोमक और पौलिश सिद्धान्तों के व्याख्याता हैं। इस प्रकार, सूर्य सिद्धान्त के रचना काल व रचयिता के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना ठीक नहीं है। प्रमाणों के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी वृद्धि 400 ई. के आसपास से प्रारम्भ होकर 1200 ई. तक समाप्त हुई। प्रथम इसका संशोधन वराहमिहिर ने किया होगा तथा पुनः अन्य संशोधकों ने आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, मंजुल आदि के वेधों से लाभ उठाकर इसको परिशुद्ध करने का प्रयत्न किया। यह संशोधन उस समय तक चलता रहा जब तक कि रंगनाथ जी ने टीका लिखकर इसके श्लोकों को बाँध नहीं दिया। माधव पुरोहित की टीका में कुछ श्लोक अधिक मिलते हैं किन्तु इसमें सन्देह है कि वे किसी पुराने ग्रन्थ के आधार पर लिखे गये या यों ही बढ़ा दिये गये।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य सिद्धान्त के विज्ञान भाष्य में विभिन्न ग्रन्थों, पंचांगों या पत्रों की सहायता ली है, जिससे कि यह कसौटी पर खरा उतर सके। अपने ग्रन्थ में उन्होंने गूढ़ प्रश्नों को सरल बनाने के लिए विभिन्न उदाहरणों एवं रेखाचित्रों का भी प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होने ग्रन्थ में कही गयी बातों को प्रमाणित करने के लिए यदा–कदा ज्यामितीय व गणितीय विधियों का भी सहारा लिया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में उन्होंने केवल अनुवादक की भूमिका नहीं निभायी अपितु जहाँ कहीं आवश्यक था उन्होने अपनी ओर से भी कुछ अंश जोड़ा जिससे यह अपने अत्यन्त सुव्यवस्थित व सरल रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुआ। यह पुस्तक ज्योतिष के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इस पुस्तक पर उन्हें सन् 1944 का मंगला प्रसाद पुरस्कार तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा छन्नूलाल पुरस्कार व रेडिचे पदक भी प्राप्त हुआ। इसकी महत्ता को ध्यान में रखते हुए द्वितीय संस्करण भी सन् 1982 में निकाला गया।

अपनी कोटि की विज्ञान भाष्य टीका से युक्त यह ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त प्राचीन भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि एवं हिन्दी का एक गौरव ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ मध्यमाधिकार से लेकर मानाध्याय तक चौदह अध्यायों में समाप्त होता है।

अनुवाद कार्य

जनवरी 1916 के माडर्न–रिव्यू और उसके बाद वाले अंकों में अध्यापक जगदीश चन्द्र बसु के शिष्य ने "गुरूदेव के साथ यात्रा " नाम के लेख में उस यात्रा का वर्णन किया है जो अध्यापक महोदय ने अपने आविष्कारों को सिद्ध करने के लिए की थीं। 'विज्ञान' मासिक पत्रिका के पाठकों के विनोदार्थ उसी का अनुवाद स्व. श्रीवास्तव जी ने अक्टूबर 1916 से लिखना शुरू किया, जो पत्रिका में लेखमाला के रूप में लगातार छपता रहा। बाद में विज्ञान परिषद ने इसे ग्रन्थ रूप में प्रकाशित भी किया। नागरी प्रचारिणी सभा से अलग होने पर आपने "विज्ञान प्रवेशिका" का दूसरा भाग लिखा जो सन् 1917 में विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ।

कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेंसी से आपकी "समुद्र की सैर" और "आकाश की सैर" नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं जिनमें से प्रथम बंगला के "सागर रहस्य" का अनुवाद है और दूसरी बाबू दुर्गा प्रसाद खेतान के "ज्योतिष शास्त्र" का संशोधित संस्करण है, जिसके सम्पादन का भार महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव को ही दिया गया था। उनका यह स्पष्ट मत था कि भारतीय ग्रन्थों का भी अनुवाद या भावानुवाद होना चाहिए जिससे इस समाज को भी हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा आधुनिक विज्ञान की पूर्ण जानकारी हो सके। इस दृष्टि से विज्ञान परिषद ने जितना साहित्य रचा और उसके कारण हिन्दी में विज्ञान–सम्बन्धी पुस्तकें लिखने का जितना उत्साह लेखकों को हुआ वह कम प्रसन्नता की बात नहीं है। वह चाहते थे कि हमारी मातृभाषा में विज्ञान की सभी शाखाओं के उत्तम ग्रन्थ रचे जायँ जिनके द्वारा विज्ञान का ऊँचे से ऊँचा ज्ञान केवल मातृभाषा जानने वालों के लिए सुलभ हो जाय। इसके लिए एक अलग उपसमिति होने के वह पक्षधर थे, जिसमें रसायन, भौतिक, जीव, इसका भूगर्भ, वनस्पति, खनिज आदि विज्ञानों के विशेषज्ञ रहें जो यह बतलावें कि विज्ञान के भिन्न–भिन्न विषयों की कौन–कौन सी प्रामाणिक

पुस्तकों का अनुवाद कराया जाय और कैसी–कैसी पुस्तकें स्वतन्त्र रची जायँ। इस सम्बन्ध में केवल सिद्धान्त कें ही ग्रन्थ न रचे जायँ वरन् ऐसी पुस्तकों की भी रचना हो जो विविध उद्योग–धन्धों और कलाओं के जानकारों को भी सहायता पहुँचा सकें और उनके सैद्धान्तिक ज्ञान की भी वृद्धि करें। इस कार्य को उन्होंने कार्य रूप में परिणत भी किया। शायद यही कारण था कि उन्होंने अनुवाद द्वारा विभिन्न विषयों को प्रस्तुत भी किया। आपका यह अनुवाद इतने सरल व स्पष्ट भाषा में हुआ है कि वह मौलिक भाषा जैसा प्रतीत होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आप जहाँ एक ओर विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित लोकप्रिय लेख लिखना पसन्द करते थे वहीं दूसरी ओर उनकी यह भी इच्छा थी कि अन्य भाषाओं में प्रकाशित विज्ञान के रोचक विषयों का अनुवाद भी हिन्दी में किया जाय जिससे न केवल हिन्दी भाषा का विकास हो अपितु अधिकाधिक लोगों के समक्ष सरल और ग्राह्य रूप में प्रस्तुत हो सके।

स्वर्गीय महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव का यह स्पष्ट मत था कि समाज के सब प्रकार के मनुष्यों को लाभ पहुँचाने के लिए हमें कम से कम दो प्रकार की विज्ञान ग्रन्थमालाओं की आवश्यकता है। एक तो विद्वानों के लिए उच्च कोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थ जिनसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी बढ़े और हमारा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठे और दूसरी से हमारे गाँवों में रहने वाले किसानों और शहरों में रहने वाले कलाकारों को लाभ हो। ऐसी पुस्तकें सरल भाषा में रोचक ढंग से लिखी जायँ तो गाँव वाले इनसे सहज ही लाभ उठा सकते हैं। इनसे उनकी साक्षरता बढ़ेगी, उनका परम्परागत ज्ञान बढेगा, भ्रमात्मक विचारों से छुटकारा होगा और सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होगा।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव विज्ञान को धर्म से अलग नहीं मानते थे। उदयपुर के 33 वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विज्ञान परिषद के सभापति पद से (1945) बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "विज्ञान और धर्म एक दूसरे के प्रतिकूल नहीं हैं, वरन् विज्ञान धर्म का सहायक है। हमारा धर्म कहता है कि यह संसार एक ही अव्यय, अविनाशी और सनातन सत्य से बना है। एक समय था जब आधुनिक विज्ञान के

अनुसार सारी सृष्टि को दो भागों में विभक्त किया जाता था—द्रव्य और शक्ति। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया कि द्रव्य नाम की कोई वस्तु स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। जिसे साधारणतः लोग द्रव्य समझते हैं वह शक्ति की ही एक अवस्था है। आधुनिक विज्ञान से इतना तो सिद्ध हो गया कि पदार्थ मूल में जड नहीं वरन् शक्ति का पुंज है। अब यह सिद्ध करना और रह गया कि यह शक्ति अंधी नहीं है, इसमें चेतनता भी है। यदि यह भी सिद्ध हो जाय तो हमारे वेदान्त सिद्धान्त की सारी सृष्टि के मूल में एक परम ब्रह्म ही है, जो सत् चित और आनन्द रूप है, सप्रमाण सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष हमारे वेदान्त दर्शन के अनुकूल सिद्ध हो रहे हैं और इसका पोषण कर रहे हैं। परन्तु जो विश्वास किसी तत्व ज्ञान पर आश्रित नहीं है, वरन् भ्रम–मूलक ज्ञान के कारण है उन पर आधुनिक विज्ञान अवश्य कुठाराघात करता है जिससे हमें दुखी नहीं होना चाहिए और न डरना चाहिए। ऐसे मिथ्या विश्वासों को हमें बदलना ही पड़ेगा।"

पारिभाषिक शब्द के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा— "मेरे विचार से ऐसे अंग्रेजी शब्द ले लेने में कोई आपत्ति नहीं है जिस शब्द के अन्य वैयाकरण रूप हमें बनाने न पड़ें। जिन शब्दों के अनेक रूपान्तरों का हमें अपनी वैज्ञानिक भाषा में प्रयोग करना पड़े उनके लिए अंग्रेजी का विदेशी रूप ग्रहण करना भाषा की क्षमता में बाधा डालना है। शब्दों के रूपान्तर तो प्रत्येक भाषा में अपने–अपने व्याकरण के आधार पर ही बनाये जायेंगे। हम विदेशी भाषा के किसी एक रूप को तो ग्रहण कर सकते हैं पर उसके ग्रहण करने के अनन्तर शेष भावात्मक रूप अपने व्याकरण तथा अपनी परिपाटी के अनुसार बनाने की हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि जिस शब्द के हमें अनेक वैयाकरण रूपों का वैज्ञानिक साहित्य में प्रयोग करना पड़े, उसके अंग्रेजी रूप को ग्रहण करना साहित्य में श्रेयस्कर न होगा। शेष शब्दों में से कुछ अंग्रेजी तत्सम अपनाये जा सकते हैं, कुछ तद्भव रूप में।"

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ने अपनी लगन एवं निष्ठा के बल पर हिन्दी विज्ञान साहित्य को समृद्ध करने का अद्भुत प्रयास किया। सन् 1940 से 1946 तक उन्होंने देश की तत्कालीन अग्रणी संस्था विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमन्त्री का पदभार सँभाला। यह अपने आपमें

अत्यन्त महत्वपूर्ण था, क्योंकि उस समय अनेक अपेक्षाकृत अधिक पढ़े–लिखे लोगों के बीच आपका इस पद के लिए चयन हुआ था। निश्चित रूप से आपको यह पद आपकी कर्तव्यनिष्ठा, विज्ञान के प्रति अद्भुत समर्पण एवं अपने देश व देशवासियों के प्रति अनन्य प्रेम का ही प्रतिफल था। आपने इस पद की गरिमा व लोगों की अपेक्षा का सर्वथा पालन किया और अन्त तक जन–जन तक विज्ञान को पहुँचाने व विज्ञान परिषद् प्रयाग की उन्नति में लगे रहे। आपका निधन 1 अक्तूबर 1949 को हुआ।

स्वर्गीय महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव जैसे कर्मठ हिन्दी विज्ञान लेखकों के प्रयास का ही प्रतिफल है कि अब हिन्दी का प्रयोग वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर हो रहा है। अनेक काम अब मौलिक रूप में हिन्दी में किए जा रहे हैं और कई अनुवाद हिन्दी माध्यम से हो रहे हैं। इन सबसे हिन्दी के शब्द भण्डार में अपार वृद्धि हुई है और प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है। निस्सन्देह इससे राष्ट्रीय भावना प्रबल होगी।

विज्ञान में प्रकाशित महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव के लेखों की सूची

1.	डाँड़ी के अद्भुत खेल और उसक सिद्धान्त	अप्रैल	1915
2.	पनडुब्बी नाव	मई	1915
3.	पनडुब्बे पीपे	मई	1915
4.	गति विज्ञान	अक्टूबर	1915
5.	मनुष्य और कीड़ों का युद्ध	जनवरी	1916
6.	क्या पृथ्वी का भ्रमण पथ गोल है?	फरवरी	1916
7.	वायुमण्डल और उसका दबाव	मार्च	1916
8.	मछलियों के सम्बन्ध की एक पहेली	अप्रैल	1916
9.	चमकते हुए हीरे	मई	1916
10.	ग्रहों की दूरी कैसे नापी गयी?	मई	1916
11.	मुर्चा लगने के कारण और उनसे बचने के उपाय	मई	1916
12.	पानी छिड़कने से ठंडक क्यों होती है?	जून	1916
13.	अंकपाश	जुलाई	1916

14. ग्रहों की दूरी कैसे नापी जाती है? जुलाई 1916
15. ओस सितम्बर 1916
16. गुरुदेव के साथ यात्रा अक्टूबर 1916
17. रबर नवम्बर 1916
18. नगर के कूड़ा करकट से ईंधन जून 1917
19. नया दूरवीक्षण यंत्र जुलाई 1917
20. अधिक भोजन करने के दोष अगस्त 1917
21. अस्थायी तारे सितम्बर 1917
22. क्या भूख भी नापी जा सकती है? फरवरी 1918
23. विमानों से बातचीत फरवरी 1918
24. विद्युत तरंग अथवा अदृश्य प्रकाश की प्रकृति फरवरी 1918
25. कड़ाही में घी क्यों जलने लगा? मई 1918
26. कितना पानी वर्षा? सितम्बर 1918
27. सृष्टि विभ्रम नवम्बर 1918
28. हमारा कल्याण उसी में है नवम्बर 1918
29. रोटी क्यों फूलती है? फरवरी 1919
30. हिन्दू बालक के आविष्कार जून 1919
31. समय का हेर–फेर जून 1919
32. उन्नत देश के देहाती कैसे रहते हैं? दिसम्बर 1919
33. जार्ज स्टिफिंसन फरवरी 1920
34. मकड़ी अप्रैल 1920
35. सर जगदीश चन्द्र बसु मई 1920
36. धन मई 1920
37. लौंद का महीना मई 1920
38. नवग्रह नवम्बर 1920
39. पृथ्वी की दैनिक गति नवम्बर 1920
40. विज्ञान और आविष्कार दिसम्बर 1920
41. पाला जनवरी 1921
42. पृथ्वी की दैनिक गति 1921
43. पृथ्वी की वार्षिक गति फरवरी 1921

44. जंगलों का प्रभाव	मार्च	1921
45. ग्रहों की चाल	सितम्बर	1921
46. वैज्ञानिकीय	मार्च	1921
48. फलाहार की महिमा	दिसम्बर	1921
49. कहाँ है?	अप्रैल	1922
50. भिन्न–भिन्न तिथियों और तारीखों का संबंध	दिसम्बर	1933
51. सभी जगह काम देने वाली धूप घड़ी	अप्रैल	1936
52. इन्दौर–पंचाग–शोधन कमेटी की रिपोर्ट भाग 1 और 2 अगस्त	1936	
53. पंचांग शोधन	मई	1943
54. सरल विज्ञान सागर, भारतीय ज्योतिष आकाश के चित्र, जन्मपत्र, फलित ज्योतिष	अप्रैल	1945
55. परमाणु बम	अप्रैल	1945
56. भारतीय ज्योतिष	अप्रैल	1945
57. परमाणु शक्ति और परमाणु बम	सितम्बर	1945
58. सर जेम्स जीन्स	सितम्बर	1946

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा लिखित पुस्तकें

1. विज्ञान प्रवेशिका भाग 2 — 1917
2. सूर्य सिद्धान्त–विज्ञान भाष्य–प्रथम संस्करण — 1940
3. गुरुदेव के साथ यात्रा (अनुवाद) — 1917
4. क्षय रोग — 1917

सम्पादन

1. समुद्र की सैर (सागर रहस्य : बंगला पुस्तक)
2. आकाश की सैर (दुर्गा प्रसाद खेतान कृत)

सन्दर्भ

1. विज्ञान (दिसम्बर, 1938) – विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद
2. विज्ञान (नवम्बर, 1945) – विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद
3. विज्ञान (विभिन्न अंक) – विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद
4. सूर्य सिद्धान्त (प्रथम संस्करण, 1940, द्वितीय संस्करण, 1982) – विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

रामदास गौड़ - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० सुनील दत्त तिवारी*

संसार के इतिहास में एक भी पंडित या मुनि ऐसा नहीं हुआ जिसने भले और बुरे की पहचान करने की कोई वैज्ञानिक यानी सर्वमान्य रीति बतलाई हो। कोई बताये भी कैसे? प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःकरण की अन्तर्ध्वनि को ही ठीक मानता है। यही अन्तर्ध्वनि अन्त में भले–बुरे का ज्ञान कराती है। तात्पर्य यह नहीं कि एक मनुष्य दूसरे की बात मानता ही नहीं या एक विचार के बहुत मनुष्य नहीं होते। मतलब यह है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे की बात को ठीक समझता है तो वह इसलिए कि स्वयं भी ठीक समझता है। एक ही वस्तु को भिन्न द ष्टिकोण से देखने वाले व्यक्ति मिलते हैं। इतना होते हुए भी सौभाग्य की बात यह है कि मानुषिक स्वभाव एक ही होने के कारण विचार सामंजस्य भी काफी मात्रा में पाया जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्यों में सुमति और मतभेद दोनों का होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। फिर भी जिसने अन्तःकरण वाणी द्वारा मिले हुए सिद्धान्तों का संतोषजनक पालन कर लिया वह अपने जीवन के उद्देश्य को सफल हुआ समझता है, अपने को धन्य समझता है। स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ के सम्बन्ध में यह बात पूर्णरूपेण ठीक बैठती है। 'कविता कौमुदी' के सम्पादक श्री रामनरेश त्रिपाठी ने दूसरे भाग में गौड़ जी का परिचय इस प्रकार दिया है––

"बाबू रामदास गौड़ का जन्म संवत् 1938 (सन् 1881) की मार्गशीर्ष अमावस्या को जौनपुर शहर में हुआ। ये जाति के कायस्थ हैं। वहाँ इनके पिता मुंशी ललिता प्रसाद चर्च मिशन हाई स्कूल के सेकेंड मास्टर थे। इनके प्रपितामह मुंशी भवानी बख्श जी फैजाबाद जिले के विड़हर इलाके की जमींदारी छोड़कर संवत् 1867 विक्रमी के लगभग काशी जी में आकर रहने लगे थे।

गौड़ जी ने फारसी, गणित और अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से पाई। इनकी माता और नानी नित्य नियमपूर्वक रामचरित मानस का

*विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षिदयानन्द मार्ग, इलाहबाद–2

पाठ किया करती थी। इससे चार पाँच वर्ष की अवस्था में ही इनको रामचरित मानस से प्रेम हो गया। इन्होंने जौनपुर हाई स्कूल से संवत् 1953 में एंट्रेंस, सेण्ट्रल कॉलेज से संवत् 1958 में एफ०ए० और म्योर सेण्ट्रल कॉलेज से 1960 में बी०ए० पास किया। इसके बाद वह सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज में रसायन के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। परन्तु परीक्षफल घोषित होते ही काशी से प्रयाग चले आये और एल०एल०बी० क्लास में पढ़ने लगे। मिर्जापुर में इनके बड़े भाई का देहान्त हो जाने से वकालत पढ़ना छूट गया। संवत् 1961 से 1963 तक कायस्थ पाठशाला में रसायन के प्रोफेसर और संवत् 1963 से संवत् 1965 में पढ़ाते समय ही इन्होंने रसायन में एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। संवत् 1975 में हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग में रसायन के प्रोफेसर तथा सीनेट और फैकल्टीज ऑव आर्ट्स, साइन्स और ओरियन्टल लर्निगं के सदस्य रहे। संवत् 1977 में असहयोग आन्दोलन के लिए विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ दी। वहाँ से राष्ट्रीय विद्यालय मिरजापुर में कार्य करने लगे।

13 दिसम्बर 1921 को प्रयाग में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के 55 मेम्बरों में ये भी गिरफ्तार किये गये। इनको डेढ़ वर्ष का कठिन कारावास तथा 100 रु० का अर्थदण्ड दिया। आगरे और लखनऊ की जेलों में एक वर्ष से अधिक रहने के बाद जनवरी 1923 में इन्हें सरकार ने छोड़ दिया। इसके बाद वे काशी में रहने लगे। कुछ समय तक वहाँ म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बर और उसकी पब्लिक वर्क्स कमेटी के सभापति भी रहे। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्थाई सदस्य भी थे। बी०ए० पास करने के बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा के लिए इन्होंने संवत् 1962 तक के हिन्दी के ज्ञात ग्रन्थों की सूची अंग्रेजी में तैयार की जिसमें ग्रन्थ के निर्माण काल और कवियों के संक्षिप्त वृत्त अनेक ग्रन्थों और रिर्पोटों से संकलित किये गये थे।

आपकी लोक सेवा

आप अपने काम में इतने व्यस्त रहते थे कि अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की आप अनदेखी करते थे जो कालान्तर में शिरोरोग, दिल की धड़कन जैसे रोगों का कारण बना। बाद में ये रोग स्थाई हो गये। अन्ततः आपकी आत्मा 13 सितम्बर सन् 1938 को अनन्त में विलीन हो गयी।"

आप चित्रगुप्तवंशीय कायस्थों की 12 उपजातियों की गौड़ उपजाति के रत्न थे। गौड़ कायस्थों की संख्या कम होने के कारण शादी विवाह में अनेक कुरीतियों ने जन्म ले लिया था। इसलिए आपका ध्यान सबसे पहले अपनी विरादरी को सुधारने पर ही गया। इसलिए संवत् 1961 में उर्दू में 'गौड़ हितकारी' मासिक पत्र निकाला। जो दस वर्ष तक लगातार चलकर बन्द हो गया। संवत् 1967 में आपने "तजकिरै सुचारूवंशी" नामक गौड़ कायस्थों के इतिहास को छपवाकर बिरादरी में बिना मूल्य के ही बँटवाया। आपके ही प्रयास से 1967 में "गृहलक्ष्मी" पत्रिका भी प्रकाशित हुई।

हिन्दुस्तानी भाषाओं द्वारा सर्वसाधारण में विज्ञान का प्रचार करने के लिए संवत् 1970 (सन् 1913 ई०) में म्योर सेण्ट्रल कॉलेज के कुछ अध्यापकों और अपने पुराने शिष्यों के सहयोग से "विज्ञान परिषद" (वर्नाक्यूलर साइंटिफिक लिटरेरी) सोसाइटी की स्थापना की। तथा लाला सीताराम और पं० श्रीधर पाठक जैसे हिन्दी साहित्य के महारथियों को सम्पादक पद देकर "विज्ञान" नामक मासिक पत्र का आयोजन किया। आपने इसको विकसित करने के लिए अथक प्रयास भी किया।

प्रयाग में निवास काल के दौरान ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भी काम किया। सम्मेलन की परीक्षाओं की शुरूआत आप ही के समय में आरम्भ हुई। आप ही इसके प्रथम संयोजक बनाये गये।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आपने हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने का प्रस्ताव रखा। वैसे यह कार्यरूप में नहीं लाया जा सका परन्तु सिद्धान्ततः मान लिया गया। विश्वविद्यालय से अलग होकर आपने "ज्ञान मंडल" के प्रकाशन विभाग का अध्यक्ष पद भी संभाला। इसी काल में आपने पंडित हरिमंगल मिश्र लिखित प्राचीन भारत का इतिहास, अपना वैज्ञानिक 'अद्वैतवाद' तथा पं० पदमसिंह शर्मा जी को काशी बुलाकर बिहारी सतसई के संजीवन भाष्य प्रथम भाग को लिखवाकर प्रकाशित किया।

आप उच्च शिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। आपके अनुसार धार्मिक अथवा सामाजिक सुधार करने के लिए उच्च शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु बाद में आपके विचार कुछ बदल गये।

आप वार्तालाप करने में पटु थे। इतिहास, पुराण, पुरातत्व, धर्म, विज्ञान, भाषा, शिक्षा आदि अनेक विषयों पर आप घंटों का वार्तालाप कर सकते थे और व्याख्यान दे सकते थे। व्यंगात्मक लेख लिखने या शिष्ट मजाक करने में आप सिद्धहस्त थे। आप कवि भी थे। आप की कविताएँ "रसिक वाटिका" में छपती रहीं। 18–20 वर्ष की अवस्था की कविताएँ "छत्तीसगढ मित्र" में छपती थीं। उस समय इनका नाम "रस" था जो बाद में रघुपति हो गया। 'गृहलक्ष्मी' तथा 'विज्ञान' में आपकी कविताएँ पढने को मिल जाती हैं (परिशिष्ट–3 भी देखें)। आपके सम्पादकत्व के समय 'विज्ञान' के मंगलाचरण अधिकतर आप ही के द्वारा विरचित हैं। मंगलाचरण का एक उदाहरण निम्न है—

जिसने प्रति अंडाणु बीच ब्रह्माण्ड बनाया। जिसने अणु–अणु निजमुख स्वचारित कहलाया।
रक्त स्रोत में अखिल विश्व का दृश्य दिखाया। देवासुर संग्राम प्रतिक्षण जहाँ कराया।
उस पराशक्ति के विविध विधि पेखन देखन हार जय।
विज्ञान अनाथइ अकर्त्तृ अज प्रकृति परेखनहार जय।।

(सितम्बर 1937 में प्रकाशित)

गौड़ जी ने जो कुछ साहित्य की साधना और देश सेवा की है उसको अधिकांशतः उस अवकाश में किया है जो जीविकोपार्जन की मुख्य सेवा करने के बाद मिलता था। स्पष्ट है कि आपके कन्धों पर बहुत अधिक बोझ था। बाद में नौकरी छोड़कर केवल लेखन कार्य को ही जीविका का साधन बनाने पर आपकी आर्थिक परेशानियाँ और अधिक हो गयी (देखें परिशिष्ट–4)। परन्तु स्वाभिमानी होने के कारण किसी से कुछ कहते न थे। आत्मसम्मान का बलिदान करके धन कमाना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था।

गौड़ जी के पढ़ने लिखने का यह हाल था कि वह जिस पुस्तक को हाथ में उठा लेते थे उसे बिना समाप्त किये छोड़ते न थे। 24 घंटों में से लगभग 18 घंटे अध्ययन में ही बिताते थे। अपनी जानकारी के लिए वह छोटी से छोटी पुस्तक भी चाहे उसे किसी साधारण लेखक ने ही लिखा हो, व्यर्थ नहीं समझते थे। यही कारण है कि उन्हें प्रत्येक विषय की अच्छी

जानकारी थी। उनकी इस विद्वता पर मुग्ध होकर लोग पीठ पीछे उन्हें Living Encyclopaedia कहा करते थे। एक दिन जब उनसे किसी ने यह बात कह दी तो उन्होंने कुछ न कहकर केवल इतना कहा — "मैं इस योग्य नहीं हूँ।" उनमें घमण्ड छू तक नहीं गया था।

वैज्ञानिक भाषा के प्रवर्तक :

सामान्य हिन्दी जगत में जो स्थान महावीर प्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है बिल्कुल वही स्थान श्री रामदास गौड़ जी को हिन्दी वैज्ञानिक जगत में है। यह बात बकट लाल ओझा ने गौड़ साहब के कार्यों को देखते हुए हिन्दी के जाने माने साहित्यकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखी थी। द्विवेदी जी ने वर्तमान हिन्दी में जिस प्रकार गद्य की रूपरेखा निर्धारित की उसी प्रकार गौड़ जी ने वैज्ञानिक साहित्य के लिए भाषा की रूपरेखा तैयार की। उनके निरीक्षण में विज्ञान के सभी अंग जैसे– भौतिक शास्त्र, रसायन, गणित, ज्योतिष, जीव विज्ञान आदि लिखे जाने लगे। उस समय पारिभाषिक शब्दों की कमी के साथ–साथ विषयोचित भाषा के निर्माण की भी समस्या थी क्योंकि सामान्य साहित्यिक गद्य और वैज्ञानिक गद्य में विशेष अन्तर होता है। इसमें विदेशी शब्दों के प्रयोग के कारण कुछ व्याकरण के नियम भी निर्धारित करने पड़ते थे। अपने अथक परिश्रम और लगन से 'विज्ञान हस्तामलक' लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि हिन्दी भाषा अब इस योग्य हो गयी है कि इसमें विज्ञान के सभी अंग व्यक्त किये जा सकते हैं। इस रचना के लिए आपको 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' भी मिला।

गौड़ जी द्वारा रचित साहित्य :

गौड़ जी के प्रमुख ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं –

1 तजकिर–ए–सुचारुवंशी (गौड कायस्थों की विवाहदि रस्म गीत) (1910 में प्रकाशित)

2 सुचारुवंशी गौड़ों का इतिहास : (1910 में, एक प्रकार की गौड़ों की मर्दुमशुमारी)

3 भारी भ्रम–नार्मल एंजेल के एक राजनैतिक ग्रन्थ का अनुवाद (1914 में प्रकाशित)

4 विज्ञान प्रवेशिका (प्रथम भाग – प्रो० सालिगराम भार्गव के सहयोग से) अनेक परीक्षाओं में स्वीकृत (1914)

5 भुनगा पुराण – विज्ञान भाग–3 (मई–1916) में गौड़ जी ने भुनगा पुराण का सर्वप्रथम अंश दिया। नासिकेतोपाख्यान के समान पौराणिक शैली पर सृष्टि के विकास की कथा आरंभ की गयी। यह 9–10 अध्याय निकलकर ही समाप्त हो गया।

6 दियासलाई और फास्फोरस (विज्ञान में प्रकाशित लेख का पुनर्मुद्रण (1918)

7 वैज्ञानिक अद्वैतवाद (सन् 1920 में) देश की कल्पना, काल की कल्पना, जगत की सृष्टि और लय, वस्तु की सत्ता, आत्मा–अनात्म, वेदान्त उपासना आदि दार्शनिक विषय वैज्ञानिक पुट लिये हुए लिखे गये हैं। इसमें गौड़ जी के मौलिक विचारों का समावेश है।

8 इटली के विधायक महात्मागण – (1920) ज्ञान मण्डल, वाराणसी।

9 बच्चों की रक्षा (लुई कूने की पुस्तक का अनुवाद, सवंत् 1978 था सन् 1921 में प्रकाशित)।

10 ईश्वरीय न्याय– (1925), गंगा पुस्तक माला, लखनऊ।

11 रामचरित मानस की भूमिका : (1925), यह पुस्तक पाँच खण्डों में विभाजित है। (1) रामचरित मानस की शिक्षा और व्याकरण (2) मानस शब्दावली (3) मानस कथा कौमुदी (4) मानस शब्द सरोवर (5) तुलसी चरित चन्द्रिका। यह पुस्तक गौड़ जी की सबसे उत्तम साहित्यिक कृति है तथा मानस सम्बन्धी गहन अनुशीलन का परिणाम है।

12 कन्याओं की पोथी (सन् 1927 में प्रकाशित)

13 हाथ की कताई–बुनाई (अनुदित) सन् 1927 में प्रकाशित

14 पौराणिक सृष्टि एवं विकासवाद : 11 नवम्बर 1932 को विज्ञान अधिवेशन में पढ़ा गया निबन्ध। नवम्बर 1932 के 'विज्ञान' का पूरा अंक है।

15 विज्ञान हस्तामलक (सन् 1936 में हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित। इस ग्रन्थ पर साहित्य सम्मेलन से मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला)।

16 उद्योग व्यवसायांक (विज्ञान का योगांक–क्षेमांक, मार्च 1936 विज्ञान)।

17 स्वास्थ्य साधन–(1936)

18 हिन्दुत्व– (1938)

19 हमारे गाँवों की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली–(1938)

20 अन्योक्ति कल्पद्रुम (दीनदयाल गिरि की काव्य पुस्तक की टीका)

21 हिन्दी भाषा सार, प्रथम भाग–लाला भगवानदीन के सहयोग से गद्य लेखकों के उद्धरण तथा जीवनी सहित।

22 बालकों को राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए बालपोथियाँ (आठ खंडों में प्रकाशित)।

23 यूरोप का इतिहास

गौड़ जी को ज्योतिष और वैद्यक का भी अच्छा ज्ञान था। कुण्डली बनाना, लगन देखना, कुण्डली देखकर विवाह की तिथि आदि बताना उन्हें मालूम था।

आपने बालक बालिकाओं के लिए हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, इण्डियन प्रेस आदि के द्वारा साहित्य और विज्ञान की बहुत सी पुस्तकमालाएँ गुप्त और प्रकट नामों से प्रकाशित कीं। "आत्माराम की कहानी" में भूगर्भ तथा सृष्टि विज्ञान, रसायन सूत्र में रसायन विज्ञान आदि का आरम्भ बड़े ही सुन्दरता के साथ किया गया है। परन्तु ये सभी ग्रन्थ अधूरे रहे।

आरम्भ में कई वर्षों तक विज्ञान परिषद् की कार्रवाई अंग्रेजी में लिखी पढ़ी जाती थी क्योंकि अधि कांश पदाधिकारी म्योर कॉलेज के प्रोफेसर थे। चार वर्ष तक सफलतापूर्वक चलने के बाद आपने चाहा कि यह काम अपनी भाषा में हुआ करे परन्तु यह स्वीकार नहीं किया गया। तब आपने अपना त्यागपत्र दे दिया। इससे पता चलता है कि

वह अपनी मातृभाषा हिन्दी के कितने हिमायती थे। किसी द्वारा यह पूछने पर कि विज्ञान में हिन्दी का क्या औचित्य? इस पर उनका कहना था–– 'बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को सूल'। इस सम्बन्ध में उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी कम प्रभावी नहीं हैं।

'विज्ञान' के भाग 45 संख्या 6 में 'अखिल भारतीय रसायन शब्दकोश' का परिचय दिया गया था। उसके विषय में स्वर्गीय रामदास गौड़ ने लिखा कि "जहाँ हम राष्ट्रभाषा और भारत व्यापी लिपि के प्रचार द्वारा देश को एक सूत्र में बाँधने की चिन्ता में हैं, वहाँ पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में हम कितनी भारी भूल कर रहे हैं और हमारी कितनी उलटी गति है, यह समझने के लिए किसी विशिष्ट बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। हमने इन कालमों में इस प्रसंग में बार–बार लिखा है परन्तु किसी ओर से हमें प्रोत्साहन का अवसर न मिला........ हमें यह लिखते हर्ष होता है कि इस ओर हमारे एक उत्साही युवक मित्र श्री बापू वाकणकर जी का ध्यान गया है। उन्होंने कम से कम रसायन शास्त्र के लिए यह भार लिया है कि सारे विद्वानों की सहायता से ऐसी पारिभाषिक शब्दावली संग्रह करें जो अखिल भारतीय रूप से सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो सके"।

आपने और भी तर्क पेश किये जिसमें एक था विज्ञान का जनसामान्य के लिए सुलभ होना। हिन्दी में जिस सिद्धान्त पर वैज्ञानिक शब्द बनते थें उस विषय में उनका कहना था कि अंग्रेजी के नाम प्रायः लैटिन भाषा से लिए गये हैं जो संस्कृत से बहुत कुछ मिलते जुलते है। आप उन्हीं शब्दों को संस्कृत का रूप देना चाहते थे। आपने प्रसंगवश यह भी बताया कि बहुत से स्वीकृत शब्दों से आप सहमत नहीं 'हैं, उसमें एक आर्गेनिक का हिन्दी रूप है जिसे प्रायः लोग 'कार्बनिक' कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द से मेल नहीं खाता। और इसे वह आंगारिक रखना चाहते थे जो अंग यानी 'आरगन' से मिलता है। यही बात आपने हरिन् (क्लोरीन) के बारे में बताई।

उनके सम्पादकनव काल में 'विज्ञान' पत्रिका ने काफी प्रगति की। उनके समकालीन परिषद् के संस्थापक सदस्यों में से कुछ का विचार यह था कि 'विज्ञान' पत्रिका में अवैज्ञानिक विषयों पर लेख प्रकाशित

न हुआ करें। उदाहरण के लिए फलित ज्योतिष, होमियोपैथी, प्रेतवाद आदि। गौड़ जी इन विषयों को भी वैज्ञानिक समझते थे। अनुरोध करने पर भी वह अपनी धारणां नहीं बदल सके।

आप आयुर्वेद, होमियोपैथी, जल चिकित्सा तथा बायोकेमिक प्रणालियों के अच्छे ज्ञाता थे। इन विषयों पर आपने अनेक लेख और पुस्तकें लिखी हैं। काशी के आयुर्वेद सम्मेलन में पंचभूत तथा त्रिदोष पर दिये हुए व्याख्यानों से विदित होता है कि आप इस विषय के कितने पंडित थे। आयुर्वेद के प्रति आपका रुझान आपके सम्पादकत्व के समय विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित लेखों से चलता है जिसमें आपके और स्वामी हरिशरणानंद 'वैद्य' के अनेक चिकित्सकोपयोगी लेख हैं।

'विज्ञान' का दुबारा सम्पादन भार सम्भालने के पूर्व 'विज्ञान' बहुत ही नीरस और शुष्क हो गया था। गौड़ जी ने कार्यभार अपने हाथों लेकर इसकी काया ही पलट दी। उनका रुझान अब ऐसे लेखों को प्रकाशित करने की तरफ हुआ जिनको पढ़कर उसके पाठक उनका उपयोग करके कुछ कमाई भी कर सकते थे। इससे स्पष्ट होता है कि विज्ञान का मात्र प्रचार ही उनका उद्देश्य नहीं था अपितु विज्ञान के माध्यम से सम्भावित आर्थिक उपार्जन की ओर भी ध्यान देते थे। उनके इस रुझान से 'विज्ञान' पत्रिका की बिक्री संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। गौड़ जी कहते थे – मुझे अधिकांश लेख ऐसे ही विषयों पर चाहिए जिसमें प्राप्त जानकारी से गरीब लोग बिना मशीन के अपने झोपड़े में अपने हाथ से बना सकें और जिसके द्वारा विदेशी धन शोषण घटाया जा सके। इन लेखों में उन रासायनिक पदार्थों के प्रयोग की बात न की जाय जिससे विदेशों को लाभ होता हो। व्यसन की सामग्री पर हमारा ध्यान कम होना चाहिए। अधिकांश वही सामग्री तैयार हो जो हमारे जीवन परिमाण के लिए आवश्यक हो। बिसाती की दुकानों पर जितनी चीजें मिलती हैं उन सब पर भी लेख हों। जापान, जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि जो चीजें भेजकर हमें चूसते हैं उन चीजों का निर्माण हमारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। गौड़ जी न केवल इन्हीं विषयों पर अपितु वे हिन्दी में औद्योगिक विषयों, कुली, मजदूर, किसानों तथा मिस्त्रियों के काम की एक सरल सुबोध ग्रन्थमाला में रोजमर्रा के काम

की सब चीजों के बनाने की विधियों का तथा छोटी मशीनों को चलाने और मरम्मत करने की रीतियों का वर्णन करना चाहते थे। उन्होंने इस सूची में 150 ग्रन्थों का समावेश किया था। इसकी कीमत भी नाममात्र की रखना चाहते थे ताकि जिनके लिए यह ग्रन्थमाला तैयार की जायेगी वे खरीद सकें। परन्तु उनका यह स्वप्न कार्यरूप में न बदल सका। फिर भी अपने प्रयत्न में कहाँ तक दत्तचित्त थे यह उनके उद्योग व्यवसायांक (क्षेमांक) को देखने से भली–भाँति मालूम हो जाता है। इस अंक का लगभग सम्पूर्ण भाग आपने ही लिखा। इसमें आपने 141 विषयों का समावेश किया।

होमियोपैथी की स्थिति के बारे में गौड़ साहब की टिप्पणी इस प्रकार थी "सभी प्रकार के उपचार शास्त्रों में होमियोपैथी और मानसोपचार शास्त्र ही ठीक–ठीक वैज्ञानिक प्रयोगों पर आधारित चिकित्सा विधियाँ हैं। हानिमान के समय से लेकर आज तक होमियोपैथी की असंख्य परीक्षाएँ हो चुकी हैं और इस विषय का साहित्य बहुत विशाल हो गया है। जिन लोगों ने कुछ भी आरम्भिक वैज्ञानिक शिक्षा पायी है, वे भी साधारणतया घरेलू इलाज पुस्तकों के सहारे कर लेते हैं। परन्तु इसका पेशा करने के लिए विधिपूर्वक कुछ रसायन विज्ञान, कुछ भौतिक विज्ञान, शरीरच्छेद विज्ञान, शरीर व्यवस्था विज्ञान, शारीरिक रसायन, औषधिगुण, लक्षणोपचार संग्रह, इत्यादि आवश्यक आनुषंगिक विषयों का अनुशीलन अनिवार्य है। जिसने विधिवत इनका अध्ययन नहीं किया है, वह पेशे का अधिकारी नहीं है। यद्यपि यह सच है कि किसी विशेष विधान का नियन्त्रण न होने से बहुत से नौसिखिये भी डाक्टरी करने लगे हैं, तथापि यह भी सच है कि जिन विधियों में पर्याप्त नियन्त्रण है, उन विधियों के अनुयायी जो नये–नये कार्यक्षेत्र में आते हैं, उन नौसिखियों से अधिक प्रवीण नहीं होते और उनकी अपेक्षा जनता की कम हानि नहीं करते। अल्लोपैथी के तो अनुभवी डॉक्टर भी प्रमादवश रोगी के लिए प्राणघातक हो जाते हैं, और बड़े–बड़े डाक्टरों का तो यहाँ तक कहना है कि उनकी दस में नौ असफलता का कारण ओषधोपचार है। अतः चिकित्सा के सम्बन्ध में योग्य लोगों को स्वतन्त्रता भी चाहिये और नितान्त अयोग्यों को इस पेशे में न आने देने के लिये किसी परीक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

हम ऐसे कई अच्छे होमियोपैथों को जानते हैं, जिन्होंने न विधिवत् किसी संस्था में इस विषय की शिक्षा पायी और न कोई परीक्षा पास की है। परन्तु वह बड़े ही दक्ष उपचारक हैं। वे इस योग्य हैं कि वह औरों की परीक्षाएं लें। होमियोपैथी के इतिहास में तो आरम्भ से ही ऐसों के उदाहरण भरे पड़े हैं। इस प्रान्त में इस बात की आवश्यकता है कि एक "हानिमान–परिषद्" बने जिसमें यहाँ के अच्छे–अच्छे होमियोपैथ सम्मिलित हों। यही परिषद् परीक्षा लिया करे और प्रमाणपत्र दिया करे। यदि परिषद् कुछ काल तक ठीक राह पर चलकर अपनी साख जमा लेगी तो जनता और पेशा दोनों को सुभीता हो जायेगा। आशा है कि प्रान्त के प्रमुख होमियोपैथ हमारे इस प्रस्ताव पर जल्दी ही विचार करेंगे"।

अल्लोपैथ एवं आयुर्वेद के सम्बन्ध में एक लेखक द्वारा की गयी टिप्पणी पर उनका कहना था कि चिकित्सा के दोनों क्षेत्र भिन्न एवं बेकार हैं। वैद्य द्वारा किये गये उपचार से तुरन्त लाभ न होने पर डॉक्टर बुला लिया जाता है। अल्लोपैथिक डाक्टर की दशा ठीक वैसी ही है, भिन्न नहीं। केवल इतना भेद है कि डाक्टर का निघंटु भिन्न है। उसकी सफलता वैद्य और हकीम से अधिक नहीं होती। यह समझना कि अल्लोपैथी शुद्ध विज्ञानानुमोदित है लेखक की भूल है। अँधेरे में ढेला मारने वाले दोनों हैं।

उनका यह भी कहना था कि विज्ञान का नितान्त अज्ञान उसी तरह हानिकर है जिस तरह उसका आतंक। जो विषय व्यवहार में उपयोगी पाया जाय, किन्तु उसकी वैज्ञानिक व्याख्या न हो सके, वह अवैज्ञानिक नहीं समझा जाना चाहिये। व्यवहार ही सत्य की कसौटी है और विज्ञान का आधार है।

अन्ततः यह कहना ही होगा कि स्वतन्त्रतापूर्व विज्ञान का लेखन, व्याख्यान, प्रकाशन द्वारा प्रचार एवं प्रसार करने वाले, देश को आत्म निर्भरता की शिक्षा देने वाले, स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर जोर देने वाले, घरेलू उद्योगों की प्रतिमूर्ति श्री रामदास गौड़ जी स्तुत्य हैं। इनके बारे में निम्नलिखित श्लोक समीचीन एवं द्रष्टव्य है:

जयन्ति ते सुकृतिनः कर्तव्यनिष्ठ कर्मपरायणाः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

नोट : गौड़ जी द्वारा रचित वैज्ञानिक एवं औद्योगिक साहित्यों की सूची परिशिष्ट में दी गयी है। अन्य सम्बन्धित विवरण भी परिशिष्टों में देखें।

परिशिष्ट - 1

श्री रामदास गौड़ द्वारा 'विज्ञान' में प्रकाशित लेख

क्र०सं०	लेख	माह	सन्
1.	विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता	अप्रैल	1915
2.	सभ्यता की पुकार	जुलाई	"
3.	नौ मील ऊँचा जीवन स्तम्भ	अगस्त	"
4.	रसायन	फरवरी और मई	"
5.	रंगीले की होली	मार्च	"
6.	वायुमंडल पर विजय	अप्रैल, जुलाई	"
7.	तारपीन विरोजा	अप्रैल	"
8.	भुनगा पुराण	मई, जून	"
9.	विज्ञान और देशपुराण	जुलाई	"
10.	संवत् 2050 विक्रमाब्द, भविष्य का सपना	"	"
11.	गन्धक	अक्टूबर	1917
12.	भुनगा पुराण	नवम्बर	"
13.	बड़ों की छोटी–छोटी बातें	जनवरी	1918
14.	कॉच और सिलिकन	फरवरी, अप्रैल	
15.	गंधकाम्ल	मई	"
16.	काल की कल्पना	जुलाई	"
17.	वस्तु की सत्ता	"	"
18.	भुनगा पुराण	"	"
19.	वस्तु की सत्ता	अगस्त	"
20	विज्ञान अध्ययन के सिद्धान्त और विभाग	"	"
21.	आत्म और अनात्म	सितम्बर	"
22.	हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य	दिसम्बर	1919
23.	आधुनिक विज्ञान एवं प्रकृति के रहस्य	जनवरी	1920

24.	अनात्म की एकता पर अधिभौतिक विचार		"
25.	जगत की सृष्टि और प्रलय	मार्च	"
26.	गर्मी और बरसात	अगस्त	"
27.	मिथ्योपचार	फरवरी, मार्च	1925
28.	रोग मीमांसा	"	"
29.	पौराणिक सृष्टि और विकासवाद	नवम्बर	1932
30.	वेद और विज्ञान की समीक्षा	मार्च	1933
31.	आत्मनिवेदन	मई	"
32.	जीवन का रहस्य	"	"
33.	हमारे अनावश्यक अंग	"	"
34.	पौधों का जीवन	"	"
35.	ज्ञान और भक्ति	"	"
36.	ऐंस्टन का सापेक्षवाद	जून	"
37.	हिस्टीरिया और मूल विज्ञान	अगस्त, सितम्बर	"
38.	वैज्ञानिक को आश्रय की आवश्यकता	अप्रैल	1934
39.	विज्ञान का दुरुपयोग	"	"
40.	हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य	मई	"
41.	विज्ञान और पुराण का समन्वय	अप्रैल	1935
42.	सृष्टि क्रम विकास	"	"
43.	मनोविश्लेषण और अध्यात्म विज्ञान	"	"
44.	हिन्दुओं की राज्य सम्बन्धी आदर्श कल्पना	मई	"
45.	वैज्ञानिक हरिजन रामदीन	जुलाई	"
46.	पास से देखी साफ तस्वीर (संस्मरण, गणेश प्रसाद)	सितम्बर	"
47.	डॉ० गणेश प्रसाद एक आदर्श आचार्य थे	अक्टूबर	"
48.	धर्म और भगवान के विरुद्ध आन्दोलन	दिसम्बर	"
49.	व्यवहारिक एल्लोपैथी की अवैज्ञानिकता	जनवरी	1936

50.	प्राच्य और पाश्चात्य खगोल का विस्तार	फरवरी	"
51.	जो कुछ अपना है उसकी रक्षा	मार्च	"
52.	बेकार रहना महापाप है	"	"
53.	घोर परिश्रम से विपत्ति के दिन काट दिये	"	"
54.	पैसे की माया बलवती है	"	"
55.	आर्थिक दशा का दर्पण	मार्च	"
56.	स्वदेशी का कठोर व्रत लो	"	"
57.	त्यौहारों में किफायत	"	"
58.	सफाई और किफायत	"	"
59.	स्वदेशी और रंग छपाई	"	"
60.	उचित आहार से आत्मरक्षा और समाज रक्षा	"	"
61.	नशे के पीछे देश का नारा	"	"
62.	सहज और स्वाभाविक इलाज	"	"
63.	देश और काल के संकोच से हानि	"	"
64.	छोटी–छोटी वस्तुओं में स्वदेशी और किफायत	"	"
65.	सस्ते विदेशी से मँहगा स्वदेशी क्यों अच्छा है?	"	"
66.	मँहगे स्वदेशी में भी किफायत है	"	"
67.	स्वदेशी फैशन में भी किफायत है	"	"
68.	खेल तमाशे में भी किफायत है	"	"
69.	खद्दर में भी किफायत है	"	"
70.	शिक्षा की विकट समस्याएँ	"	"
71.	संस्कारों में भारी खर्च और ऋण का बोझ	"	"
72.	एक–एक मिनट का हमारा जीवन अनमोल है	"	"
73	स्वदेशी का प्रचार कमखर्ची का उपाय	"	"
74	शहरी मजदूरों के धंधे और उनके साधन (14 विषयों का समावेश) अर्थशास्त्र	अप्रैल	

75	सफल रोजगार के लिए क्या क्या चाहिए?	"	"
76	किसानों के लिए सहज घरेलू धंधे	"	"
77	आँखों की रक्षा	मई	
78	हमारे विश्व की रचना	"	"
79	सफाई के चमत्कार और शल्य चिकित्सा	मार्च	1937
80	जीवरासायनिक चिकित्सा	मार्च	"
81	एकटक निगाह से इलाज	मई	"
82	आदमी के घर का धीरे धीरे विकास	"	"
83	नराकार प्राणियों का वंशवृक्ष	जुलाई	

परिशिष्ट -2

भारत के शहरी मजदूरों के लिए औद्योगिक ग्रंथावली

1. जस्ता ताँबा और सीसा
2 अल्यूमीनियम और टीन
3 निकिल आदि अलौकिक धातुएँ
4 लोहा
5 कोयले की खुदाई
6 लोहा गलाने की भट्ठी
7 लोहे और पीतल की ढलाई के लिए मिट्टी के साँचे बनाना
8 मिश्रित धातुएँ तैयार करना और उनका उपयोग
9 पीतल आदि मिश्रित धातुओं को ढालने के लिए
10 साधारण धातु–विश्लेषण–छोटे कारखानों के लिए
11 ढलाई, खाने के औजार
12 पक्के सॉचे–धातु, निर्मित–ढलाई के लिए
13 ढलाई, खाने का व्यापार–छोटे पैमाने पर
14 इस्पात को गलाना
15 इस्पात की ढलाई
16 लोहारों के औजार

17 लोहे को गढ़ना
18 गैस से झाल बनाना
19 बिजली से जोड़ों को झाल लगाना
20 अलौकिक वस्तुओं की झाल
21 आबदारी
22 धार लगाना
23 खराद यन्त्र और खरादना
24 खराद कर चूड़ी काटना
25 खरादोपयोगी सारणियाँ
26 उॅचे दर्जे की खराद करना
27 खराद के औजार
28 लकडी खरादना
29 बरमा और रन्दा मशीनों का काम
30 मिलिंग मशीन
31 स्पायरल मिलिंग
32 किर्रे काटना
33 ब्रोचिंग और प्रेसिंग
34 फिटिंग
35 इरेक्टिंग
36 बिजली द्वारा कलई करना
37 साधारण कलई
38 धातु के नलों को झुकाना
39 टीन का काम
40 लोहे की पत्ती का काम
41 लोहे के ट्रूक और तिजोरी
42 ठप्पे बनाना
43 ठप्पों का उपयोग
44 टिन के खिलौने बनाना
45 स्टोव पेन्टिंग
46 स्प्रे पेन्टिंग
47 बिजली के मोटर और डायनेमों की मरम्मत और सम्भाल

48 बिजली के तार लगाना
49 मोटरगाड़ी चलाना
50 बिजली के तार लगाना
51 मोटरगाड़ी की मरम्मत
52 मोटरगाड़ी की सफाई और रंगाई
53 मोटर बाईसिकिल
54 बाइसिकलों की मरम्मत
55 टाइपराइटरों की मरम्मत
56 सीने की मशीनों की मरम्मत
57 ब्लाकों की मरम्मत
58 छोटी घड़ियों की मरम्मत
59 ग्रामोफोन की मरम्मत
60 बिजली के घरेलू यन्त्रों की मरम्मत
61 गैस की बत्तियों और अंगीठियों की मरम्मत
62 सितार आदि तार के बाजों की मरम्मत और निर्माण
63 हारमोनियम आदि सुरबाजों की मरम्मत
64 कम्पोजिंग
65 प्रेस की छपाई और यंत्र
66 लीथो की लिखाई और छपाई
67 जिंकोग्राफ की छपाई
68 टाइप फाउण्ड्री
69 ब्लाक बनाना
70 मैट्रिक्स तैयार करना
71 जिल्दसाजी
72 प्रेस का सम्बन्ध
73 प्रकाशन कार्य
74 साइनबोर्ड लिखना
75 सुनार का काम
76 बहुमूल्य मणियों की पहिचान और जड़ाव तैयार करना
77 जड़ाई–आभूषणों में मणि लगाना
78 सोने और चाँदी पर रंग करना

79 डेन्टिस्ट का काम
80 बढ़ई के औजार
81 लकड़ी पर खुदाई करना
82 हाथी दाँत पर खुदाई करना
83 पत्थर पर खुदाई करना
84 काँच पर लिखाई करना
85 फर्नीचर
86 गद्दे लगाना
87 फर्मे बनाना
88 रोगन, रंग और पालिश
89 गाड़ी और बग्घी बनाना
90 रबर स्टाम्प और रबर के खिलौने
91 कागज के खिलौने
92 आतिशबाजी
93 साबुन बनाना
94 सुगंधित तेल और इत्र
95 धोबी का काम
96 सूती कपड़ों की रंगाई
97 सूती कपडों की छपाई
98 रेशमी और ऊनी कपड़ों की रंगाई और धुलाई
99 घरेलू औद्योगिक नुस्खें
100 स्याहियाँ तैयार करना
101 दरजी–घरेलू और बाजारू
102 हलवाई
103 अत्तरी शिक्षा
104 शरबत/मुरब्बे और अचार
105 पत्थरों का उपयोग
106 ईंट बनाना
107 टाइल बनाना
108 चूना बनाना और उसका उपयोग
109 सीमेन्ट बनाना और उसका उपयोग
110 गृहरचना और नक्शे
111 गृहनिर्माण में लोहा और छप्पर लगाना

112 चीनीमिट्टी का उद्योग
113 गृहनिर्माण
114 जिनिंग प्रेस
115 मिल की कताई और बुनाई
116 मिल की बुनाई और रंगाई
117 खाँड़ की मिल
118 आटे की मिल
119 चमड़े का उद्योग
120 तेल के छोटे इंजन
121 वाष्प के मिल
122 रेलवे यन्त्र शास्त्र
123 व्यापार संगठन
124 फैक्टरियों का प्रबंध और स्थापना
125 बहीखाता
126 मूल्य और मूल्य का अनुमान
127 लिमिटेड कम्पनियाँ
128 बैंकिंग
129 विज्ञापन कला
130 विक्रय कला
131 व्यापारिक पत्र व्यवहार
132 कारखानों की दुर्घटनाएँ
133 पूँजीपति और मजदूरों से कानूनी सम्बन्ध
134 वोयलर एक्ट
135 पेटेन्ट और रजिस्ट्रेशन एक्ट
136 म्यूनिसपल कानून
137 पुलिस और नागरिक जीवन
138 मजदूरों की बेकारी का समय
139 मजदूरों का स्वास्थ्य और उनके घर
140 मजदूर और उनके बच्चों की शिक्षा
141 रद्दी कागज गलाकर उसकी चीजें बनाना।

परिशिष्ट - 3

(कविता)

गरमी और बरसात

कविता की उमंग थी ह्रदय था,
लिखने को कलम था, कुछ भय था,
गरमी से हुई कहीं जो दो चार,
भागे घर छोड़ प्रेम श्रृंगार
सूखे रस, भाव खा गया ताव,
टूटी तंत्री, लगा कीं घाव।

लिखने को जरा कलम उठाया,
स्याही सूखी पसीना आया
थी पानी की खींच पड गया काल,
रुखसत किया जाजिबों को फिलहाल।

दुनिया गरमी से तप गयी थी
ठंडक भी पनाह ढूंढती थी,
या छॉह भी छॉह ढूढ़ती थी।

पर्वत के खोह में, दर्रों में,
तहखानों पटाव के घरों में
गहराव में, बावड़ी कुओं में,
जाकर छिपी मांदों, बोबदों में।

गरमी कि दुहाई फिर गयी थी,
ठंडक चहुँ ओर घिर गयी थी
छाया पे धूप की पड़ी छॉह।

रातों में असह्य चाँदनी थी,
अपनी असलियत उसने पकड़ी।
कुछ देर पे आम भी जो आये,
गरमी का पयाम खास लाये।

हुए फोड़े और फुन्सियों के उत्पात,
सरकार के गुप्त चरने की घात
नहीं अन्न में स्वाद! करम फूटे।

छक्के थे रसोइयों के छूटे।

रस से और अन्न से न थी भेंट,
पानी पी पी के भर लिये पेट
भोजन का स्वाद और आनन्द,
जलपान नहान में हुआ बन्द।

थी धूप में बढ़ गई व ज्वाला,
आँखें नहीं सहती थीं उजाला
जो था जहां वां ही तप रहा था,
हांफे था पड़ा तड़प रहा था
पंखों से आग थी बरसती,
बहने को वायु थी तरसती
कपड़ा काँटे था यों बदन पर,
था धाम ही का लिवास तन पर।

दरवाजे झरोखे बन्द करकर,
खसखाने कितने ही किये तर

छन्नू भी एक प्रसन्न मन था,
"चरली सब घास" यों मगन था
हां, और, मियॉ मदार फूले,
थे "अर्क" के नामपर जो भूले,
सब प्राणियों में वरिष्ठ हम हैं
प्रत्युत, नहीं देवों से भी कम हैं।

यह गर्व के वाक्य कहने वाले,
सब दर्द व गर्म सहने वाले

इतने में हुआ व घोर घमसान,
छूटे जो आँख आपके बान।

धरती सारी उसी से पाटी,
गरमी की ऋतु समस्त काटी

क्या धूम से अबके आयी बरसात,
सुख के संदेश लायी बरसात।
उमड़ी हैं घटायें काली काली,

ठंड़क धरती प' लानेवाली
पाकर के बड़ों की छत्र छाया,
अब भूति को ताप की न चिन्ता।

कम हो गया इस तरह उजाला,
अब आँखों की मिट गयी है ज्वाला

लिये मोरछलों को मोर भाते,
हैं नाचते गाते पेंच खाते।

तरुवर तर हो रहे हैं जल से,
पर ऋतु के देखते हैं जल से,
क्या बचने को धूप और जल से
जगंल ने लगा रखे हैं छाते,
बरगद छतनारे क्या खड़े हैं,
खेमें सुरराज के गड़े हैं
कादम्बिनी के लिये प्रेम उपहार,
कलियां ले, कदम्ब पर हैं असवार।

या गोलियां युद्ध से बची हैं,
शोभार्थ कदम्ब पर रची है
प्यारा? कहीं बगल में आये,
शायद कि खिलत हमें पिन्हायें।

घनश्याम के नाम पर है भूला,
इस ख्याल प' है कदम्ब फूला
खेतों में हरे भरे जो निकले,
अंकुर मक्का ज्वार बाजरे के
दिल आज किसानों का हरा है,
भंडार आनन्द का भरा है
वह गरमी की धूप और मैदान,
दिन दिन रहे जिसमें वह परीधान।

जितना था पसीना तब गिराया,
उतना ही फल अब अभी सा पाया
क्या सब्ज परी की इन प' है शान,

लहरा रहे हैं आनन्द से धान।

यह देखिये वायु के भी धन्धे,
कंधों से छिल रहे हैं कंधे
दुर्भिक्ष दमन की या कर्मों ले,
हरी–कुर्ती के ये खड़े रिसाले।

या श्याम के प्रेम में अड़ी है,
इक पांव पे गोपियां खड़ी हैं

हे सुख की बढ़ाने वाली बरसात,
अमरित बरसाने वाली बरसात।

शीतलता लानेवाली बरसात,
मुरदों को जिलाने वाली बरसात
खेती की प्राण, वर्ष की जान,
अनपूर्णा देवी अन्न की खान।

आनन्द की जो बहायी धारा,
उसमें है मगन जगत् य' धारा,
तु संखों साधुवाक के योग्य,
औं कोटि गुणानुवाद के योग्य।

रखे तुझे ईश जल से भरपूर,
दुर्दैव दुकाल दुख रहे दूर
ऋतु में तेरा इष्ट आगमन हो,
दुर्भिक्ष दरिद्र का दमन हो।

पूरी ऋतु हर बरस हो तेरी,
उत्पत्ति हो अन्न की घनेरी
दिन श्रावणी कृष्ण जन्म की रात,
दिन दिन हो ईद, रात शबरात।

इस ढब से सदैव आये बरसात।
सुख के संदेश लाये बरसात

— श्री रामदास गौड़ द्वारा रचित

परिशिष्ट-4

(श्री बनारसी दास चर्तुवेदी द्वारा श्री बंकट लाल ओझा को लिखे पत्र का अंश जो गौड़ साहब की आर्थिक दशा के बारे में है)

"स्वर्गीय रामदास जी गौड़ की साहित्यिक सेवाओं और आर्थिक स्थिति से आप परिचित होंगे, उनके र्स्वगकाल के बाद परिवार की स्थिति और भी शोचनीय हो गयी है, मैं स्वयं गत 29 सितम्बर को काशी गौड़ जी के परिवार से मिलने के लिए गया था, दीन हीन दशा देख कर रोना आ गया, गौड़ जी का सारा पुस्तकालय चोरी चला गया, जो कुछ कागजात बचे थे, उन्हें देखने से पता चला कि बनारस बैंक, सस्ता साहित्य मण्डल और हिन्दुस्तानी एकेडेमी से उनका रुपया आना है, मण्ड़ल के मन्त्री महोदय से नयी दिल्ली में मिला था, और शेष दोनों से मैनें पत्रव्यवहार किया, वहाँ से उत्तर मिला कि श्रीमती जानकीदेवी गौड़ (स्वर्गीय गौड़ जी की पत्नी) के नाम का सक्सेसन सर्टीफिकेट पेश करो तब रुपया मिलेगा। इस पर श्रीमती गौड़ जी को मैंने लिखा, तो उत्तर आया कि, "इस प्रकार का प्रमाणपत्र मुझ जैसी गरीब औरत के लिये प्राप्त करना कठिन है, पैसा हो तो गवाह मिले सकते हैं" बिना उस प्रमाणपत्र के काम नहीं चल सकता, इसके लिये मैं आपको कष्ट देना चाहता हूँ, कि आप श्रीमती गौड़ जी को उपरोक्त प्रमाणपत्र दिलवाने की कृपा करें, इस कार्य में जो भी व्यय होगा मैं आपके पास मनीआर्डर से भेज दूँगा।

आपको लिखने के पूर्व मैंने गौड़ जी के कई मित्रों और शिष्यों को लिख चुका हूँ, स्मरण पत्र भी भेजे परन्तु किसी ने उत्तर तक नहीं दिया "यह है हम लोगों की अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धा।"

— समाचार पत्र प्रदर्शनी—डायरी में
प्रकाशित—सं० वेंकट लाल ओझा,
मार्च 1950

संदर्भ

1 विज्ञान 'मासिक' अगस्त 1920, प्रकाशक—विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद

2 विज्ञान–उद्योग व्यवसायांक (विज्ञान का योगांक–क्षेमांक) मार्च 1936, प्रकाशक – विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद

3 विज्ञान–सितम्बर–1937, प्रकाशक–विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद

4 विज्ञान–दिसम्बर–1937, प्रकाशक–विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद

5 विज्ञान परिषद के संस्थापक–श्री रामदास गौड़–विज्ञान, जुलाई–1992

6 हिन्दी पुस्तक साहित्य (सम्पादक–माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक–हिन्दुस्तानी एकेडमी 1945)

7 हिन्दी समाचार–पत्र सूची–भाग–1 (1826-1925) सम्पादक–बेंकट लाल ओझा मार्च 1950

विज्ञान लेखन की आधारशिला : डॉ० (स्वामी) सत्यप्रकाश सरस्वती

–तुरशन पाल पाठक

(स्वामी सत्यप्रकाश ने विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए जो जो प्रयास किये उनका दिग्दर्शन कराने वाला आत्मीय विवरण)

आज विज्ञान–लेखन के क्षेत्र में अधिक नहीं तो कम से कम खोजने पर कुछ लेखक मिल ही जाते हैं लेकिन सन् 1947 में देश के स्वतंत्र होने से पहले विज्ञान–लेखक की बात एक अजूबा लगती थी। भारतीय भाषाओं तथा सर्वाधिक बोली जाने वाली हिन्दी भाषा में हमारे देश के विस्तार और आबादी की तुलना में, विज्ञान–लेखक "ऊँट के मुँह में जीरा" से भी कहीं कम, अर्थात् विरले ही मिलते थे, ऐसे समय में इस विशाल देश के जनमानस को विज्ञान और वैज्ञानिक सोच के सहारे जीवन के यथार्थ को समझाने वाले, कुछ लोग ही सही, सच्चे अर्थों में आज की वैज्ञानिक प्रगति और विज्ञान प्रसार के क्षेत्र में नींव के पत्थरों से किसी भी तरह कम नहीं हैं। यदि ये लोग न होते तो आज विश्व के सामने सीना तान कर खड़ा होने वाला वैज्ञानिक ज्ञान और प्रसार का भारतीय भवन कभी का चरमरा गया होता।

तब राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद अर्थात् एन.सी. एस.टी.सी. जैसे विज्ञान संचार को समर्पित राष्ट्रीय संस्थान भी न थे और आज जैसी सुविधायें भी न थीं, विज्ञान लेखकों को तब कुछ अपनी समझ, सूझ–बूझ और अपने ही हौसलों के बलबूते पर ही करना होता था, एक तरह से विज्ञान लेखन के प्रति दीवानगी थी कुछ लोगों में।

आज हालांकि उस समय के बहुत से नाम चर्चा के पात्र हैं लेकिन मैं चर्चा करना चाहूँगा वैज्ञानिक परिब्राजक डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के बारे में। इसका एक कारण यह भी है कि स्वामी जी सी.एस.आई.आर., नई दिल्ली के "भारत की सम्पदा–वैज्ञानिक विश्वकोश" के प्रमुख संपादक थे

प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, "सीएसआईआर"
नई दिल्ली - 110 012

और मुझे उनके निर्देशन मे वर्ष 1971 से "भारत की सम्पदा–वैज्ञानिक विश्वकोश" का कार्य करने का सौभाग्य मिला। मैं उनके नजदीक रह कर उन्हें निकट से सुनने, समझने आदि का अवसर पा सका। इसलिए हिन्दी विज्ञान लेखन के बारे में उनके कार्य और विचारों की जानकारी मुझे सीधे, डायरेक्ट लाइन की तरह, इन्हीं से मिली है, जिसे मैं लगभग उसी रूप में आपके सामने रखने का प्रयास कर रहा हूँ।

सुनता आया था कि स्वामी सत्यप्रकाश जी ने अपने बचपन के प्रारंभिक दिनों से ही कठोर परिश्रम और विपरीत परिस्थितियों में जीने का अभ्यास करना प्रारंभ कर दिया था लेकिन कभी उन्हें देखा नहीं था। वे मात्र 22 वर्ष की उम्र में सन् 1927 में एम.एस–सी. की परीक्षा पास कर "विज्ञान" नामक वैज्ञानिक पत्रिका के सहायक सम्पादक के रूप में हिन्दी विज्ञान की सेवा करने लगे थे और उसके बाद हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में समान अधिकार के साथ उनका जो लगातार लेखन चला उससे जनमानस को स्वामी जी की मौलिक और संपादित दो दर्जन से अधिक पुस्तकें मिलीं, इनमें से कुछ छोटी हैं तो कुछ बड़ी, कुछ अंग्रेजी में हैं तो कुछ हिन्दी में, कुछ सामान्य कक्षाओं के लिये हैं तो कुछ बड़ी कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें हैं जो विज्ञान के अतिरिक्त कुछ दर्शन और धर्म से भी संबंधित हैं, तभी तो कहा जाता रहा है कि डॉ० सत्यप्रकाश जी की पुस्तकें हाई स्कूल, इण्टर तथा जूनियर स्कूलों एवं विश्व विद्यालयों में रसायन विज्ञान की परीक्षा पास करने के लिये लगभग हर विद्यार्थी को पढ़नी ही पढ़ती थीं, क्योंकि रसायन विज्ञान की परीक्षाओं की वैतरणी पार करने के लिये स्वामी जी की पुस्तकों के अलावा अन्य उपयुक्त पुस्तकें उपलब्ध की कहाँ थी। इसीलिये पीढ़ी दर पीढ़ी लोग चाहे स्वामी जी को व्यक्तिगत रूप से न जानते हों लेकिन उनकी पुस्तकों के कारण वे उनसे अच्छी तरह परिचित रहते थे।

उन दिनों स्वामी सत्यप्रकाश जी सन्यासी बन चुके थे और नैरोबी की यात्रा से भारत वापस लौट कर दिल्ली में ठहरे हुये थे। उनके यात्रा वृतांत को लोग बड़ी उत्सुकता से सुना करते थे। ऐसे वरिष्ठ विद्वान विज्ञान लेखक स्वामी सत्यप्रकाश जी से 'भारत की सम्पदा' हेतु जब मुझे उत्साहवर्धक मार्गदर्शन मिला तो धीरे–धीरे निकटता बढ़ने पर एक दिन आर्यसमाज मंदिर हनुमान रोड, नई दिल्ली में कड़ाके की सर्दियों में केवल हल्के गेरुवे वस्त्र पहने उन्हें कार्य में व्यस्त देखा तो

मैंने उनसे एक "सवाल" पूछ लिया स्वामी जी! आप इतने कम कपड़ों में कड़ाके की सर्दी में लगातार कार्य कैसे कर लेते हैं। क्या आपको सर्दी नहीं लगती? मेरा सवाल सुन कर वे बड़े ही विनोदी स्वभाव में मुस्कराते हुये बोल पड़े थे, "भई पाठक" तुम भी एक बात बताओ तुम ढेर सारे कपड़े पहने हो और तुमने अपनी नाक को कोई भी कपड़ा नहीं पहनाया। फिर नाक कैसे सर्दी सह लेती है? अरे भाई चुप क्यों रह गये? सीधी सी बात है इस शरीर को जैसी आदत डालोगे वैसी ही पड़ जाती है, एक तपस्वी की तरह कठोर परिश्रम के लिये सर्दी, गर्मी सभी परिस्थितियों को झेलने का अभ्यास करते–करते मनुष्य उन पर विजय पा सकता है और फिर उनसे होने वाले दुःख–सुख से निश्चिन्त होकर अपने कार्यों में एकाग्रचित्त होकर कठोर मेहनत कर सफलता का सुख भोग सकता है।

कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि स्वामी जी बचपन से ही सर्दी में केवल चादर लेकर छत पर सोने का और गर्मियों में कड़ी धूप में चलने का अभ्यास किया करते थे। इस तरह उन्होंने सैनिकों की तरह अपने को घोर विपरीत परिस्थितियों में भी कठोर परिश्रम करने के अनुकूल ढाल लिया था। संभवतः लगातार जीवन भर धर्म, दर्शन और विज्ञान पर लिखते रहने का डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश जी का अन्य बातों के अलावा यही प्रमुख रहस्य रहा हो।

स्वामी जी का मानना था कि अगर कुछ लिखना है तो उसकी बारीकियों पर विचार करते रहने में अधिक समय बर्बाद नहीं करना चाहिये बल्कि जो भी विचार बन पड़ें उनको झटपट लिखना प्रारंभ कर देना ही उचित है। यदि आवश्यक हो तो इन्हीं विचारों के अन्य नये विचारों से जोड़ते रहना चाहिये। इस तरह कुछ समय बाद यह लेखन एक अच्छा ड्राफ्ट बन जाता है, जिसे कुशल संपादन के बाद एक उत्तम कृति का रूप देना आसान होता है। अन्य सुधीजन भी कल लेगें के विचार से अपने को मुक्त करके "जब आगे तभी सवेरा" की तरह तुरंत लेखन प्रारंभ कर आगे बढ़ सकते हैं और यदि विज्ञान लेखक हैं, तो समाज को उत्तम कोटि का लोकविज्ञान उपलब्ध करा सकते हैं।

'भारत की सम्पदा' के संपादन और उसे अद्यतन बनाने के संदर्भ में स्वामी जी से नई दिल्ली में बड़े ही सरल, सहज, प्रेम तथा विनोदी

वातावरण में बैठकें हुआ करती थी। डॉ० शिव गोपाल मिश्र जी के इलाहाबाद वापस चले आने के बाद जब इस विश्वकोश के नई दिल्ली कार्यालय का भार मुझ पर आ गया तो एक दिन वे बैठक में कहने लगे "पाठक जी! अब तेजी से काम करने वाले शिवगोपाल तो इलाहाबाद चले गये, तुम वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के सरकारी दफ्तर से आये हो, कहीं सरकारी दफ्तरों की चींटी की चाल की तरह इसे उलझा कर भारत की सम्पदा के बजाय भारत की विपदा न बना देना। भई! अब मैं बहुत अधिक जीने वाला भी नहीं हूँ। अच्छा तो यह होगा कि भारत की सम्पदा का कार्य जल्दी–जल्दी हो और मेरे सामने ही पूरा हो जाय, क्योंकि मेरे बाद अंग्रेजी वाले तुम्हें सुविधा देना तो दूर रहा, ठीक से काम भी नहीं करने देंगे। तब यह कार्य पिछड़ जायेगा और समाज इस बहुमूल्य वैज्ञानिक जानकारी को आसानी से नहीं पा सकेगा।

स्वामी जी की भावना के अनुसार हम सभी तेजी से कार्य करने लगे और सात–आठ खण्ड निकालने में सफल हुये। फिर समय बदला। किन्हीं कारणों से स्वामी जी की सरपरस्ती इस कार्य से हट गई और जैसा स्वामी जी ने कहा था ठीक वैसा ही हुआ। आज इस विश्वकोश का कार्य तो जरूर हो रहा है लेकिन स्वामी जी की भविष्यवाणी के अनुसार कार्यालयी मकड़जालों में फँस कर सामान्य गति भी खो बैठा है। अतः कहा जा सकता है कि स्वामी जी विज्ञान लेखन और विज्ञान के साहित्य को समाज के लिये दूरदर्शी निगाहों से देखते थे और ऐसे कार्यों में विलम्ब पसंद नहीं करते थे।

विज्ञान–लेखन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली की विशेष कोई भी अभिव्यक्ति शब्दों के बिना संभव नहीं होती लेकिन यदि शब्दों के अनेक अर्थ होने लगें अथवा एक ही अर्थ के लिये अनेक शब्दों का उपयोग किया जाने लगे तो कम से कम विज्ञान के क्षेत्र में तो, जहाँ निश्चित बात के लिये शब्द की निश्चित होते हैं, इससे अर्थ के बजाय अनर्थ ही होता है। सच मानिये जब समूचे देश में विज्ञान पुस्तक लेखन के प्रारंभिक दिनों में विद्यार्थियों के लिये विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाने लगीं तो जिस भी लेखक को जो भी शब्द अच्छा लगा उसने उसी का इस्तेमाल करना प्रारंभ कर दिया था। इससे विद्यार्थियों को शिक्षा का स्थान बदलने पर या बड़ी क्लास में आ जाने

पर अलग अलग पुस्तकों में अलग अलग शब्दावली के उपयोग से बड़ी कठिनाई आने लगी थी। अतः जब इस समस्या के समाधान के लिये देश में शब्दों की रचना और उनके मानकीकरण तथा एकरूपता के लिये वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग अस्तित्व में आया तो रसायन शब्दावली के लिये प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा के संयोजकत्व में डॉ० सत्यप्रकाश जी और राँची कालेज के प्राध्यापक डॉ० जदुनन्दन प्रसाद को मिलाकर तीन व्यक्तियों की रसायन विज्ञान शब्दावली समिति गठित हुई।

इस समिति की लगभग हर तीसरे महीने नई दिल्ली में बैठक हुआ करती थी। डॉ० सत्यप्रकाश जी सभी बैठकों में आते थे और बड़ी लगन एवं निष्ठा के साथ रसायन शब्दावली के कार्य को आगे बढ़ाया करते थे। बाद में तो अनेक लोगों ने इसमे हाथ बँटाया था। लगभग दस वर्ष में समिति ने कार्य पूरा किया। संस्कृत साहित्य की भरपूर जानकारी रखने के कारण डॉ० सत्यप्रकाश जी का शब्दावली निर्माण के इस कार्य में बहुत योगदान था। उनके प्रशंसनीय योगदान के बारे में समिति के प्रमुख प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा जी ने भी समय–समय पर उल्लेख किया है।

"सन् 1930 में महामना मालवीय जी द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी प्रकाशन समिति की स्थापना की जा चुकी थी। नागरी प्रचारणी सभा की देखरेख में हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली की रचना हेतु भी समिति बन गई थी। इससे हिन्दी विज्ञान लेखन के लिये अनुकूल माहौल बनने लगा था। समिति के सभी सदस्य विज्ञान और हिन्दी के परम प्रेमी थे, अतः शब्दावली की रचनाओं में वे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों का नितांत हिन्दीकरण करने पर तुल गये थे, रोमन अंकों के लिये तो हिन्दी अंक पहले से ही थे। तत्वों, अंतर्राष्ट्रीय सांकेतिक अक्षरों तथा रसायन विज्ञान के समीकरणों आदि का भी हिन्दीकरण करके उन्हें देवनागरी के अक्षरों में व्यक्त करने का चलन चल पड़ा था। पाठ्य पुस्तकें भी इस नई परिपाटी में तैयार होने लगी थीं। प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा जैसे विद्वान लेखक की बी.एस.सी. की एक पुस्तक का अधिकांश भाग इसी रीतिनीति के अनुसार छप चुका था। इस पर कुछ दूरदर्शी लोग चिंतित थे। उनमें एक वाराणसी के डॉ० नंदलाल सिंह भी थे। अपनी समस्या लेकर वे डॉ० सत्यप्रकाश जी से मिले और उन्होंने समीकरणों की जटिलता और उनकी गूढता की ओर ध्यान

आकर्षित करते हुये, रसायन विज्ञान की शिक्षा पर पड़ने वाले इसके बुरे प्रभाव की चर्चा करते हुये अंतराष्ट्रीय पद्वति की उपयोगिता की वकालत की थी।

"डॉ० सत्यप्रकाश जी भी रसायन शब्दावली की इस स्थिति से परिचित थे। अतः उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी मधुरता के साथ डॉ० नन्दलाल सिंह को सान्तवना देते हुये आश्वासन दिया था कि भई घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी बात ठीक है, अतः तुम जैसा सोचते हो वैसा ही होगा, और हुआ भी ऐसा ही क्योंकि डॉ० सत्यप्रकाश जी के सहयोग से केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा भी अंतराष्ट्रिय संकेतों के उपयोग की ही संस्तुति हुई थी। इस निर्णय से प्रो० फूलदेव सहाय ने भी अपनी पुस्तकों में यथा स्थान संशोधन कर उन्हें अतंराष्ट्रिय प्रणाली के आधार पद छपवाया था। इस तरह डॉ० सत्यप्रकाश जी विज्ञान की हिन्दी शब्दावली के प्रति कोरी हिन्दी भावना के बजाय उसकी ठोस राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय उपयोगिता के अनुसार रचना किये जाने के पक्षधर थे।"

विज्ञान परिषद, इलाहाबाद की 'विज्ञान' एक लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका है। इस प्रकाशन ने विज्ञान के प्रसार के साथ हिन्दी के अनेक विज्ञान लेखक तैयार करने का मौलिक कार्य भी किया है। डॉ० सत्यप्रकाश जी ने विज्ञान की शब्दावली के बारे में अपने विचार सन् 1930 के आस पास ही प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिये थे। उन्होंने शब्दावली की चर्चा "विज्ञान" के माध्यम से भी थी। उनके "वैज्ञानिक परिभाषिक शब्द" शीर्षक से लेख विज्ञान के 1930 के मार्च, अप्रैल, मई, जून के चार अंकों में प्रकाशित हुये थे। सके अतिरिक्त आपके लेखन से परिपूर्ण सितम्बर 1930 का ही पूरा का पूरा अंक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली पर प्रकाशित हुआ था। ठीक इसी तरह विज्ञान के ही सितम्बर 1931 के अंक में आपका मराठी का "वैज्ञानिक साहित्य और पारिभाषिक शब्द" लेख प्रकाशित हुआ था।

डॉ० साहब का वैज्ञानिक शब्दावली के संपादन का कार्य भी स्मरणीय है। आपके द्वारा संपादित वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली (1930), और पारिभाषिक शब्दावली (1945) कृतियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

विज्ञान लेखकों को विज्ञान की शब्दावली के अतिरिक्त सामान्य साहित्य के शब्दों की भी आवश्यकता रहती है। इस आवश्यकता की

पूर्ति हेतु डॉ० सत्यप्रकाश जी द्वारा संपादित और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'मानक अंग्रेजी–हिन्दी कोश' अपना विशेष स्थान रखता है। इस कोश के निर्माण का कार्य हालांकि 1953 में प्रारंभ हुआ था लेकिन अनेक कठिनाइयों के कारण लगभग 14 वर्षों तक लटके रहने से नहीं चल सका तब यह कार्य डॉ० सत्यप्रकाश जी को सौंपा गया था। आपने सम्मेलन के ही पं० बलभद्र प्रसाद जी मिश्र के सहयोग से यह महत्वपूर्ण कार्य पूरा किया था। आज यह कोश वैज्ञानिक शब्दावली और सामान्य साहित्य दोनों तरह के शब्दों की पूर्ति करने में सफल प्रकाशन माना जाता है। इस कोश की भूमिका डॉ० सत्यप्रकाश जी ने लिखी है जो मुखपृष्ठ में है। वह अपने आप में कोश और शब्दावली विज्ञान की जानकारी से भरपूर है।

स्वामी जी शब्द–भण्डार के धनी थे। किसी भी शब्द की व्याख्या महापंडित राहुल सांकृत्यायन की तरह ऐसे सहज तरीके से करते थे कि श्रोताओं को तुष्ट होना ही पड़ता था। जिन लोगों ने स्वामी जी को सुना है अथवा उनकी रचनायें पढ़ी हैं वे बड़ी सहजता से अंदाज लगा सकते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति में शब्दों का चयन सरल–सहज होने के साथ कुछ ऐसा होता था कि पाठक और श्रोता दोनों ही नीरसता अनुभव करने के बजाय उसमें तल्लीन होकर समझते चले जाते थे। तभी तो उनके संपर्क में आने वाले उनसे विमुख होने के बजाय उनसे जुड़ते चले जाते थे।

विज्ञान को आम आदमी तक पहुँचाने के लिये इलाहाबाद में जिस 'विज्ञान परिषद' की स्थापना की गई है उसे वे सदा सक्रिय बनाये रखना चाहते थे। अंतिम दिनों में उनका मुझसे यह कहना कि मैं तो अब रहूँगा नहीं, विज्ञान परिषद् के कार्यक्रमों के लिये निमंत्रण मिल पाये या न मिल पाये तुम आते अवश्य रहना, उनका विज्ञान के प्रसार और व्यक्तियों के प्रति परम प्रेम को दर्शाता है। तभी तो मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि डॉ० (स्वामी) सत्यप्रकाश सरस्वती जी विज्ञान लेखन की मजबूत आधारशिलाओं में से एक प्रमुख व्यक्तित्व थे।

हाँ, एक बात और, स्वामी सत्यप्रकाश जी से अन्तिम दिनों में पुस्तकों की भूमिका लेखन पर मेरी चर्चा हुई थी। उनके विचार से ग्रंथों

की भूमिकायें विस्तृत होने के साथ ग्रंथ रचना से संबधित हर प्रकार की जानकारी से परिपूर्ण होनी चाहिये जिससे पाठकों और लेखकों दोनों को ही इन ग्रंथों को समझने और भविष्य के रचनाकारों को प्रशिक्षित करने के लिये भरपूर सहायता मिल सके। स्वामी जी की पुस्तकों में उनकी लिखी भूमिकायें इसी तरह की हैं। विज्ञान के ग्रंथों के लिये तो वे विस्तृत भूमिकाओं को नितांत आवश्यक मानते थे।

उनका कहना था कि मेरी इच्छा है कि मैंने जितनी भी भूमिकायें लिखी हैं यदि उनका एक संकलन प्रकाशित किया जा सके तो यह विज्ञान लेखकों सहित सभी के लिये उपयोगी हो सकता है। यह कार्य प्रारम्भ भी नहीं हो सका तब तक वे हम सब के बीच से उठ गये।

क्या ही अच्छा हो कि 'विज्ञान परिषद्' इस कार्य को पूरा करे। साधनों के अभाव में यदि अकेली विज्ञान परिषद् ऐसा कर लेने में अपने को असमर्थ पाती है तो हाल ही में एन.सी.एस.टी.सी. और विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली जैसे साधनसम्पन्न संगठनों से बढ़ी विज्ञान परिषद् की दोस्ती को और आगे बढ़ाते हुये उनके सहयोग से स्वामी सत्य प्रकाश जी की भूमिकाओं के संकलन के प्रकाशित किये जाने का कार्य पूरा किया जा सकता है, जो निश्चय ही परिषद्, एन.सी.एस.टी.सी., विज्ञान प्रसार जैसे संगठनों सहित विज्ञान प्रसार से लगी सभी संस्थाओं और हम सभी के लिये भी परम उपयोगी रहेगा।

औद्योगिक साहित्य के संवर्धक डॉ० गोरख प्रसाद

डॉ० शिवगोपाल मिश्र*

जीवन वृत्तः गोरख प्रसाद का जन्म 28 मार्च 1896 को गोरखपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम बृजभूषण प्रसाद था। वहीं उन्हें इण्टर तक की शिक्षा प्राप्त हुई। 1916 में बी.एस–सी. उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस और 1918 में एम.एस–सी. की डिग्री प्राप्त की। यहीं पर डॉ० गणेश प्रसाद से उनका परिचय हुआ और उन्होंने उनके निर्देशन में शोधकार्य प्रारम्भ कर दिया। शोध का विषय था "गतीय खगोल शास्त्र"। इस बीच उन्हें अध्यापन कार्य भी मिल चुका था। किन्तु 1923 में छात्र–वृत्ति प्राप्त हो जाने से वे एडिनबरा चले गये जहाँ 16 मास तक शोधकार्य करने के बाद उन्हें डी.एस–सी. डिग्री प्राप्त हुई।

विदेश से लौटने पर 21 जुलाई 1925 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रीडर पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। इस पर पर कार्यरत रहकर उन्होंने 20 दिसम्बर 1957 को अवकाश प्राप्त किया और तभी 'हिन्दी विश्वकोश' के सम्पादन हेतु नागरी प्रचारणी सभा द्वारा वाराणसी बुला लिये गये जहाँ पर वे अन्तिम समय तक कार्यरत रहे। उनका निधन 5 मई 1961 को गंगा नदी में स्नान करते समय हुआ। वे 65 वर्ष तक जीवित रहे। इनकी चार सन्तानों में तीन पुत्रियां (गिरिजा देवी, दुर्गावती तथा माधुरी देवी) एवं एक पुत्र (चन्द्रिका प्रसाद जो योग्य पिता की योग्य सन्तान हैं) है।

लेखन के प्रति झुकाव : "विज्ञान परिषद्" के कर्णधार श्री रामदास गौड़ तथा श्री सालिग राम भार्गव के प्रोत्साहन पर हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रति रुचि जगी। वे विज्ञान परिषद् के सम्पर्क में आये। वे 1935 से 1940 तक परिषद् के प्रधानमन्त्री, 1934 में और फिर स्थायी रूप से 1941 से 1944 तक 'विज्ञान' मासिक के सम्पादक तथा पहले 1940-43 तक और फिर 1960 में सभापति बने।

---

*25, अशोक नगर इलाहाबाद–1 (उ.प्र.)

डॉ० गोरख प्रसाद अध्यापन के साथ ही सम्पादन एवं पुस्तक लेखन का कार्य करते रहे। डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार विश्वविद्यालय की राजनीति के कारण प्रोफेसर न बनाये जाने पर डॉ० गोरख प्रसाद ने अपना प्रेस खोला और छपाई के कार्य में जुट गये।

डॉ० गोरख प्रसाद विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य रहे। उन्होंने विश्वविद्यालय में फोटोग्राफी एसोसिएसन की स्थापना की और फोटोग्राफी पढ़ाते भी रहे। उनके इस प्रयोग का ही परिणाम है कि आज फोटोग्राफी का नया विभाग विश्वविद्यालय में बन चुका है।

व्यक्तित्व : डॉ० गोरख प्रसाद अत्यन्त शान्त प्रकृति के थे। उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख अंग उनका हिन्दी प्रेम था। उनके सम्पर्क आने वालों ने उनके अनेकानेक दुर्लभ गुणों का उल्लेख किया है। यथा–सज्जनता, समय–निष्ठा, विनोदप्रियता, सीखने–सिखाने की प्रवृत्ति, रियलिस्टिक कार्य की पसन्दगी, बाल सुलभ स्वभाव (बच्चों के साथ बच्चा बन जाना, बड़ों के बीच बड़ा बन जाना)। डॉ० गोरख प्रसाद में अनेक रुचियों का संगम था। उन्हें हाथ से चीजें बनाने का शौक था। वे कुशल फोटोग्राफर और निपुण तैराक थे।

वे लोगों से काम लेना जानते थे। शाबाशी भी देते थे और सीख देना भी नहीं भूलते थे। वे अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने न केवल 'विज्ञान' मासिक के सम्पादक का उत्तरदायित्व निभाया अपितु उन्होंने स्वयं अनेक पुस्तकें लिखीं। अन्यों का सहयोग लिया और उन पुस्तकों को विज्ञान परिषद् की सम्पत्ति बनायी। मुद्रण एवं प्रकाशन के साथ साथ फोटोग्राफी के व्यावहारिक ज्ञान के फलस्वरूप वे जनोपयोगी सस्ती पुस्तकें प्रदान कर सके। विज्ञान परिषद् को सक्रिय बनाने, उसे एक बुनियादी संस्था बनाने में उनका बहुत बड़ा योगदान था।

विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में योगदान : डॉ० गोरख प्रसाद अपने को रामदास गौड़ तथा सालिग राम भार्गव का ऋणी बताते हैं जिन्होंने विज्ञान लेखन के अखाड़े में उन्हें उतारा। उन्होंने विज्ञान लोकप्रियकरण में जितने प्रकारों से सहायता पहुँचाई उसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. लेखन के प्रारम्भिक प्रयास

डॉ० गोरख प्रसाद ने डॉ० गणेश प्रसाद का संस्मरण लिखते हुए अपने विषय में लिखा है कि किस तरह वे रामदास गौड़ के सम्पर्क में आये और विज्ञान के लिए पहला लेख लिखा।

"मैं डॉ० गणेश प्रसाद के निजी कमरे मे बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। तभी उनकी तलाश करते गौड़ जी आये परन्तु डॉ० साहब के न मिलने के कारण वे भी वहीं बैठ गये। बातचीत शुरू हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि हिन्दी में क्यों नहीं कुछ लिखा करते। मैंने शायद यह कहा कि हिन्दी में लिखने योग्य कोई उपयुक्त विषय मुझे नहीं सुझता और हिन्दी में लिखने की योग्यता मुझमें नहीं है। वहीं 'साइंशिया' नामक एक पत्रिका पड़ी थी जिसमें विज्ञान विषयक कई मनोरंजक लेख थे। उनमें से एक लेख चुनकर उन्होंने कहा कि आप इसी का अनुवाद हिन्दी में करने की चेष्टा कीजिये। जो शब्द या वाक्य आप हिन्दी में न कर सकें, उन्हें ज्यों का त्यों रहने दें। मैं हिन्दी कर दूंगा।... उसके कुछ ही दिनों बाद गौड़ जी सालिगराम भार्गव तथा गोपाल स्वरुप भार्गव काशी पहुँचे। उन्होंने मुझसे हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखने का विशेष अनुरोध किया। इन्हें वे 'विज्ञान' के लिए चाहते थे। उन दिनों सालिग्राम ज़ी विज्ञान परिषद के मन्त्री और गोपाल स्वरुप जी दोनों ने आश्वासन दियां कि यदि मुझे कहीं थोड़ी सी भी कठिनाई पड़े तो मैं उन स्थानों में अंग्रेजी शब्द या वाक्य लिख सकता हूँ और वे उसे ठीक कर लेंगे। इस तरह मैं हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने लगा। मेरा पहला लेख फोटोग्राफी सम्बन्धी था और वह 'विज्ञान' में छपा।

"तुकबन्दियाँ" : मैं अध्ययन के लिए विलायत जाने वाला था और मुझे रुपये की सख्त जरूरत थी। मेरे कुछ लेख और कुछ तुकबन्दियाँ (जो उस समय तक अप्रकाशित पड़ी थीं) लेकर गौड़ जी के पास पहुँचा. . उन्होंने एक सिफारशी चिटठी के साथ एक लेख 'माधुरी' में छपने भेज दिया जिसके मुझे पैसे मिले। तुकबन्दियों को बेचने के लिए कुछ पते बतलाये। अंत में ये नकद दाम पर हिन्दी पुस्तक एंजेसी के हाथ बिकी और कुछ समय बाद प्रकाशित हुई।

जब भी हिन्दी सम्बन्धी कोई काम पड़ा, मुझे गौड़ जी से बराबर सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहा। उनकी और सालिग्राम जी की उदारता के बिना शायद ही में हिन्दी का लेखक बन पाता।"

डॉ० गोरख प्रसाद के विलायत से लौटने पर गौड़ जी ने अपने पुराने मित्र डॉ० गणेश प्रसाद को विज्ञान परिषद् का सभापति बनाया। डॉ० गणेश प्रसाद, डॉ० गोरख प्रसाद के गुरु थे। अतः जब गौड़ जी ने डॉ० गोरख प्रसाद से अनुरोध किया तो वे विज्ञान परिषद् के सभ्य बनें और फिर मन्त्री बने। उसके बाद वे उपसभापति तथा सभापति भी बने। किन्तु विज्ञान परिषद् में 'विज्ञान' के सम्पादक रुप में उनका कार्य सर्वाधिक सराहनीय रहा।

2. विज्ञान का सम्पादन

उन्होंने सर्वप्रथम 1934 में तथा फिर 1938-1944 तक विज्ञान का सम्पादन किया। विज्ञान का सम्पादन करते हुए पुस्तक लेखन, पुस्तक सम्पादन तथा पुस्तक–प्रकाशन का अति महत्वपूर्ण कार्य भी अपने हाथों में लिया और उसे बड़े ही उत्तरदायित्व के साथ निभाया।

सम्पादक के रूप में वे लेखों या पुस्तकों के पाठ में काट–छाँट करते तथा सामग्री जोड़ते थे। वे पाठकों की रूचि का ध्यान भी रखते थे। वे ज्ञानवृद्धि के साथ पाठकों की क्रय शक्ति का ध्यान में रखते हुए सस्ती पुस्तकों के हामी थे। वे प्रकाशकों से लिखा–पढ़ी करके पुस्तकों के अनुवाद की स्वीकृति प्राप्त करने की भी झंझट मोल लेते थे। वे पारिभाषिक शब्दों के विषय में प्रारंभ से ही जागरूक थे किन्तु वैज्ञानिक लेख या पुस्तक लिखते समय वह यह ध्यान रखते कि वाक्य सरल हों और तथ्य इस तरह से रखे जाय कि सर्वसाधारण भी उन्हें समझ सकें। वे लिखते हैं––

"सम्पादक के नाते मैनें 'मधुमक्खी पालन' में आवश्यक तथा अनावश्यक सभी प्रकार की काट–छांट करके कई स्थानों पर सामग्री बढ़ा दी है। 'सरल विज्ञान सागर' में सम्पूर्ण विज्ञान का सार ठूंसा नहीं गया ... यदि ऐसा किया गया होता तो बच्चों का मन ऊब जाता और उनके ज्ञानवृद्धि में सहायक न होता।"

"परिषद का सदा ही यही उददेश्य रहा है कि जनता को वैज्ञानिक पुस्तकें सस्ते में मिलें"।

"या तो अंग्रेजी शब्दों का ज्यों का त्यों प्रयोग किया जाय या नये शब्द गढ़े जाय" (फोटोग्राफी की भूमिका)।

फल संरक्षण का प्रथम संस्करण समाप्त हो गया तो उन्होंने श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह (जो सह लेखक हैं) को लिखा कि द्वितीय संस्करण का सम्पादन कर दूँ। उस समय वे सरकारी पद पर कार्य कर रहे थे।. ... डॉ० गोरख प्रसाद ने द्वितीय संस्करण की भूमिका में सारा श्रेय उन्हें दे दिया।

"इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में लिखने का साहस मैंने केवल इस लिए किया था कि हिन्दी में फल–संरक्षण ऐसे महत्वपूर्ण विषय में कोई पुस्तक नहीं थी। मैं इस विषय का विशेषज्ञ नहीं था परन्तु पुस्तक अध्ययन तथा प्रदर्शनी अवलोकन और कुछ निजी प्रयोगों के सहारे मुझे इतना ज्ञान हो गया था कि मैं एक उपयोगी पुस्तक लिख सका। तो भी मुझे उस पुस्तक से संतोष नहीं हुआ और मैं बराबर इसी चेष्टा में था कि कोई उसे सुधार दे।"

3. अनुवाद कार्य

डॉ० नवरत्न कपूर लिखते हैं "उनका यही मत था कि हिन्दी में होने वाला अनुवाद इतना सरल हो कि थोड़ा पढ़ा लिखा व्यक्ति भी उसे समझ सके। एक बार उन्होंने बताया कि मैं जब कभी अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करता हूँ तो दो–चार कठिन वाक्यों का हिन्दीकृत अंश अपनी पत्नी को पढ़कर सुना देता हूँ। वे अधिक पढ़ी लिखी नहीं हैं। जब वे मेरे भावों को समझ जाती हैं, तभी मुझे संतोष होता है कि सच्चा अनुवाद हुआ है। ..... अनुवाद करते समय वे बिना शब्द कोशों की सहायता के धाराप्रवाह हिन्दी बोलकर मुझे लिखवाते रहते थे। संपादन के समय विज्ञान के विभिन्न चौदह विषयों पर आत्मविश्वास से ही अपनी लेखनी सरलता से चला देते थे।"

डाक्टर गोरख प्रसाद के नाम से दो अनुदित पुस्तकें पाई जाती हैं। (1) सूर्य तथा (2) ज्योतिष की पहुँच।

4. विश्वकोश का सम्पादन

डॉ० गोरख प्रसाद ने अपने जीवन भर के लेखन, मुद्रण तथा प्रकाशन के अनुभव का उपयोग हिन्दी विश्वकोश के सम्पादन में किया। वे विज्ञान का सम्पादन करते समय ऐसे विश्वकोश की कल्पना तथा योजना बना चुके थे। वे अच्छे लेखकों का चयन करके उनसे लेख मंगाते। मुझसे भी कृषि विज्ञानियों की जीवनियाँ लिखने के लिए पत्र भेजा था।

डॉ० कपूर लिखते हैं "विश्वकोश की रचना को डॉ० साहब व्यावसायिक दृष्टि से नहीं देखते थे प्रत्युत इस कार्य में उनकी रुचि हिन्दी माता के प्रति कर्तव्य के रूप में थी। .... इलाहाबाद के अध्यापन काल में उनका स्वयं ही विश्वकोश प्रणयन और प्रकाशन का विचार था। किन्तु अकेले आदमी के लिए असंभाव्य तथा मंहगा कार्य होने के कारण वे अपनी इच्छा को कार्यान्वित न कर पाये। उन्हें सदैव विश्वकोश का ध्यान रहता था। यात्रा के लिए उन्होंने 'हिन्दी विश्वकोश' की एक प्रति अपने पास रख ली थी जिससे विश्वकोश में रुचि रखने वालों को व दिखा सकें। जब भी यात्रा से लौटते तो प्रायः चार–पांच लेखकों के जिनमें अधिकांश से गाड़ी में ही परिचय होता था — पते ले आते थे।"

"मैंने देखा कि उनका हर काम व्यवस्थित होता था। आडम्बर से वे बचते थे। अन्तिम दिनों में क अक्षर के लेखों का सम्पादन चल रहा था। क वर्ग के लेखों की साइक्लोस्टाइल्ड सूची उनकी मेज पर पड़ी रहती थी। लेखकों के आये हुए लेखो का क्रमांक, चित्र की सूची, शब्द संख्या, लेख पहुँचने की तिथि आदि सभी विवरण उसमें रहते थे। अपने निधन से पूर्व 25 अप्रैल तक प्राप्त लेखों की शब्द संख्या गिनवाकर मुझसे वर्मानुसार एक सूची तैयार करवा ली ताकि लेखकों का पारिश्रमिक यथाशीघ्र भेजा जा सके। विश्वकोश के लिए उन्होंने स्वयं बहुत से लेख अपनी ही लेखनी से लिखे थे–कठिन से कठिन विषयों पर अपने अनुभव और पाण्डित्य के आधार पर, बड़ी ही सरल भाषा में।"1

5. बाल साहित्य सृजन

डॉ० गोरख प्रसाद को बच्चे अत्यन्त प्रिय रहे हैं। वे अपने बचपन की यादें करते हुए लिखते हैं–

"मैंने सोलह वर्ष की आयु में तैरना सीख..... (और उन्होंने "तैरना" पुस्तक लिखी)।"

"मुझे बचपन से शिल्प का शौक था इसलिए मैंने स्वयं कई बार लकड़ी पर पालिश और वार्निश की (अतः उन्होंने लकड़ी पर पालिश पुस्तक लिखी)।"

वे बचपन के भरपूर विज्ञान परोसना चाहते थे इसीलिए 'सरल विज्ञान सागर' के कई खण्डों की योजना बनाई परन्तु केवल उसका एक भाग ही वे पूरा कर सके।

सरल विज्ञान सागर बच्चों के लिए लिखा गया विश्वकोश है। इसे अत्यन्त रोचक ढंग से लिखा गया है जिससे बच्चों का मन ऊबे नहीं। यह सचित्र है।

इस विश्वकोश के कई भाग होने थे। पहला भाग जीव विज्ञान और ज्योतिष पर है। शेष भागों में भूगर्भ विज्ञान, रसायन, भौतिक विज्ञान, उद्योग और क्रियात्मक विज्ञान (वैज्ञानिक यंत्रों का अपने हाथ से बनाना तथा सरल अथवा मनोरंजक प्रयोगों का करना) विषयक सामग्री होनी थी किन्तु शेष भाग नहीं निकल पाये।

प्रथम भाग की अधिकांश सामग्री डॉ० गोरख प्रसाद ने अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी थी किन्तु जहाँ कहीं भी उदाहरण दिये गये हैं वे यथासम्भव भारतीय वनस्पतियों और जन्तुओं से लिए गये हैं। ..... डाक्टर रामकुमार सक्सेना ने वनस्पति शास्त्र संबंधी अंश तथा श्रीचरण वर्मा ने जंतुशास्त्र संबंधी चित्र चुनने तथा कुछ अंश लिखने में डॉ० गोरख प्रसाद की सहायता की जिसका उल्लेख भूमिका में हुआ है। भारतीय ज्योतिष वाला अंश बाबू महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ने लिखा।

एक उदाहरण (मार्च 1943 विज्ञान में प्रकाशित; पृष्ठ 202)

"कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनमें रीढ़ होती है और कुछ ऐसे हैं जिनमें रीढ़ नहीं होती। उदाहरणतः मनुष्य में रीढ़ होती है, बकरी में भी रीढ़ होती है और मछली में भी। परन्तु मक्खी, केंचुए, या चींटी में नहीं होती। इसलिए वैज्ञानिकों ने सब प्राणियों को दो समूहों में बाँटा है।

(1) पृष्ठवंशी (2) अपृष्ठवंशी

संस्कृत में रीढ़ को पृष्ठवंश कहते हैं इसलिए उन प्राणियों को जिसमें रीढ़ होती है पृष्ठवंशी कहा जाता है जिनमें रीढ़ नहीं होती उनको अपृष्ठवंशी कहते हैं। फिर पृष्ठवंशी प्राणियों को पांच श्रेंणियों में बाँटा गया है"।

डॉ० गोरख प्रसाद ने स्वतन्त्रता के बाद भी बच्चों के लिए विज्ञान विषयक रेडियोवार्ताएं प्रसारित कीं। उदाहरणार्थ, तुम्हारे आस–पास शीर्षक से तीन वार्ताएं 1957 में प्रसारित की गई। बर्फ जमना, विज्ञान की दुनिया और (मेरी समझ में) पंचांग क्या है वार्ताएं भी बच्चों के ही लिए थीं। एक उदाहरण देखें––

"यदि किसी ने एक या दो आँख वाली दूरबीन तुम मॅगनी मॉग सको तो वृहस्पति को तुम दूरबीन से देखो। वृहस्पति के चार चाँद ऐसे हैं जो छोटी दूरबीन से भी दिखाई पड़ते हैं। ये चाँद हमें तो नन्हें–नन्हें तारे से दिखाई पड़ते हैं परन्तु वस्तुतः इनमें से दो हमारे चाँद से बड़े हैं। ...... ये चाँद वृहस्पति का चक्कर लगाते रहते हैं इसलिए यदि तुम कई दिनों तक प्रति रात्रि वृहस्पति को दूरबीन से देखोगे तो किसी न किसी रात तुमकों चारों चाँद दिखाई पड़ जाएंगें।"

अपने पत्रों में भी अपने नातियों को नसीहतें देते रहते थे "तुम बीमार पड़े, जानकर दुख हुआ। अब भी कमजोर हो इसलिए धूप और गरमी से बचना। खाना जो सुगमता से पचे। दूध अधिक पीना। फल खाना। तुम घूमने जाते हो यह अच्छी बात है।

6. औद्योगिक साहित्य को प्रोत्साहन और उसका प्रणयन

रामदास गौड़ स्वदेशी के समर्थक थे। उन्होंने उद्योग–धन्धों की एक लम्बी सूची 'विज्ञान' के उद्योग अंक (1936) में छापी थी। डॉ० गोरख प्रसाद भी उद्योग धन्धों के हामी थे। उन्होंने विज्ञान परिषद् के लिए फल संरक्षण, लकड़ी पर पलिश, तैरना, घरेलू डाक्टर, उपयोगी नुस्खे और हुनर नामक पुस्तकें लिखीं जिनका प्रकाशन वे पहले विज्ञान के विभिन्न अंकों में करते रहे। ये पुस्तकें 1937 से 1945 के बींच की लिखी हैं। वैसे औद्योगिक विषयों पर 1933 से 1941 के बींच उनके 14 लेख छपे। इनमें बच्चों के खिलौने, कलई और रंगाई, ब्लाक बनाना, दर्पण बनाना, बागवानी उल्लेखनीय हैं। "साइकिल की कहानी" लेख (जून

1940) भी इसी दिशा में प्रयास है। सरल बढ़ईगीरी पर 1934–35 में 3 लेख लिखे और स्कूटर साईकिल (मार्च 1935) तथा सुन्दर खिलौने (जुलाई 1936) पर लेख लिखे। उन्होंने 'मधुमक्खी पालन' नामक पुस्तक लिखवा कर उसमें न केवल काट–छाँट की अपितु कई स्थानों पर सामग्री बढ़ा भी दी।

'घरेलू डाक्टर' संग्रह करने के पीछे वे अपने साथ घटी घटना का उल्लेख करते हैं—

"1939–40 में मैं बीमार पड़ा परन्तु एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ने से रोग के कारण और उपचार पढ़ने पर सान्त्वना मिली तभी से ध्यान में आया कि हिन्दी में भी कोई ऐसी पुस्तक हो तो बहुत अच्छा हो।"

पुस्तक लिखते समय वे सर्वसाधारण को ध्यान में रखते थे। वे लिखते हैं "अंग्रेजी पुस्तकें विदेशों के वातावरण के अनुकूल होती है। वहाँ की लिखी पुस्तक यहाँ के सर्वसाधारण के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। इसीलिए मैंने यह निश्चय किया कि एक ऐसी पुस्तक डॉक्टरों की सहायता से लिखी जाय।"

डॉ० गोरख प्रसाद की दृष्टि में सामान्य पाठक मुख्य था– उसे विषय इस प्रकार समझाना था कि कोई व्यावहारिक क्रिया अस्पष्ट, दुरूह या रहस्यमय न रह जाय।

7. फोटोग्राफी

डॉ० गोरख प्रसाद को फोटोग्राफी अतिप्रिय थी। 1927 में उन्होंने पहला लेख विज्ञान के लिए लिखा। फिर उन्होंने एक पुस्तक ही लिख डाली। 1931 मे 'फोटोग्राफी' नामक पुस्तक इण्डियन प्रेस से छपी। यह अति सरल भाषा में, नौसिखियों के लिए लिखी गई। इतना ही नहीं, उन्होंने विश्वविद्यालय में 'फोटोग्राफी एसोसिएशन की स्थापना की और छात्रों को फोटोग्राफी की शिक्षा भी देते रहे। बाद तक फोटोग्राफी को नवीनतम उपलब्धियों से वे अपने को अवगत रखते रहे। 'गंगा[3]' के विज्ञान विशेषांक के लिए जनवरी 1934 में उन्होंने 'कागज पर रंगीन फोटो' शीर्षक से निबन्ध लिखा। 1940 के मई अंक में विज्ञान में 'फोटोग्राफी का व्यवसाय' तथा नवम्बर 1940 में 'फोटो खींचने का कैमरा' लेख भी लिखे। 1941 में 'एनलार्ज करने' पर भी एक लेख छापा।

8. ज्योतिष

डॉ० गोरख प्रसाद का शोध कार्य खगोल शास्त्र से संबंधित था। अतः विदेश से आने पर उन्होंने "विज्ञान" में अनेकानेक लेख लिखे जो 1927 से 1945 के बींच छपे। यह संयोग ही कहा जायेगा कि उनका अन्तिम लेख जो अप्रैल 1961 में विज्ञान में छपा उसक शीर्षक था "अंतरिक्ष के अद्‌भुत दृश्य"।

लोकप्रिय शैली के साथ ही डॉ० गोरख प्रसाद ने ज्योतिष के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन के बाद पाण्डित्यपूर्ण शैली में कई ग्रन्थ लिखें। 1931–37 के बीच उन्होंने सौर परिवार, नीहारिकाएँ, आकाश की सैर, चान्द्र सारणी, सौर सारणी नामक पुस्तकें लिखीं जो उस समय की सम्मानित संस्थाओं—हिन्दुस्तानी एकेडमी, राष्ट्रभाषा परिषद् तथा नागरी प्रचारिणी से छपीं।

"फोटोग्राफी" पर उन्हें मंगला प्रसाद पुरस्कार तथा "सौर परिवार" पर छन्नूलाल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

9. पाठ्य पुस्तकें

विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य करते हुए उन्होंने हिन्दी के माध्यम से हाई स्कूल, इण्टर तथा बी0एस0सी0 छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखीं। ये पुस्तकें अति हृदयग्राही सिद्ध हुई।

10. भाषण

डॉ० गोरख प्रसाद ने स्कूलों में छात्रों के समक्ष तथा विज्ञान परिषद् के अधिवेशनों एवं साहित्य सम्मेलन के विज्ञान परिषद् के मंच से उत्तेजक भाषण दिये। ऐसे भाषणों का उल्लेख श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह ने किया है।

"1935 में क्रिश्चियन कॉलेज प्रयाग की भौतिक विज्ञान शाला में भाषण देना था, "ठीक समय क्या है? भाषण में सारे देश के विभिन्न पंचांगों और समय सूचित करने की प्रथा का विश्लेषण करते हुए बताया कि हमारे देश की प्रणाली शुद्ध है"। अन्त में मैंने पूछा "अब ठीक समय क्या है? ...... उत्तर दिया "कौन सा समय"।[4]

"1936 में डॉ० गोरख प्रसाद अखिल भारतीय हैहय क्षत्रिय महासभा के प्रयाग अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। मैं कार्यकर्ता के रूप में लगा था। उन्होंने मुझे बुला कर पूछा "आपने ही मेरे भाषण के बाद पूछा था "ठीक समय क्या है?.... मुझे उनकी स्मरण शक्ति पर आश्चर्य हुआ।

"फिर मैं हैहय क्षत्रिय नवयुवक संघ के सभापति के नाते उनसे उद्घाटन करने लिए प्रार्थना की तो वे अति व्यस्त होते हुए भी आये। भाषण में सामाजिक उन्नति के साथ विज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रगति करने को प्रोत्साहित किया।"

11. पारिभाषिक शब्द

डॉ० गोरख प्रसाद पारिभाषिक शब्दावाली के निर्माण से उतने जुड़े हुए नहीं थे किन्तु शब्दावली के प्रयोग, उसकी उपयुक्तता, अनुपयुक्तता पर उन्होंने तमाम लेख लिखे और भाषण दिये।

इसी से सम्बद्ध कोश निर्माण विषय था जिसकी ओर उनकी रूचि प्रारम्भिक काल से ही थी।

फोटोग्राफी की भूमिका में वे लिखते हैं——

"या तो अंग्रेजी शब्दों का ज्यों का त्यों प्रयोग किया जाय या नये शब्द गढ़े जायें"।

पारिभाषिक शब्दावली का स्वरूप क्या हो इस सम्बन्ध में उनके विचारों का उल्लेख बंकटलाल ओझा करते हैं[1]——

"भारत सरकार ने 1941 में सारे देश में यथासम्भव एक ही पारिभाषिक शब्दावली रखने के लिए सर अकबर हैदरी की अध्यक्षता में एक सलाहकार मंडल बनाया जिसमें अंग्रेजी शब्दावली को ही अन्तर्राष्ट्रीय नाम से प्रचलित करने का अनुरोध था। उस समय डॉ० गोरख प्रसाद ने इसका प्रचंड विरोध किया——"सरकार अपना जोर लगाकर जबरदस्ती सब स्कूलों/कालेजों में अंग्रेजी शब्दावली का प्रचार करे मेरी समझ में ऐसा करने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावना है। मातृभाषा में विज्ञान पढ़ाने का अभिप्राय यही है कि विद्यार्थी अधिक सुगमता से ज्ञान प्राप्त करें।"

उन्होंने विज्ञान के मार्च 1942 अंक में "भारत सरकार और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द" नामक लेख में उपर्युक्त सुझाव रखे। इसके बाद विज्ञान के अगस्त, सितम्बर 1943 अंकों में पारिभाषिक शब्दावली शीर्षक लेख पुनः लिखा जिसमें उन्होंने कोश निर्माण के विषय में एक रूपरेखा प्रस्तुत की।

(1) सभी विषयों के शब्द मिलाकर 75000 होंगे जो 500–700 पृष्ठ में आ जायेंगे।

(2) कोश सस्ता हो। शिक्षकों को आधे मूल्य पर मिले।

(3) एक ही हिन्दी शब्द को दो विभिन्न पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त न किया जाय।

(4) कुछ अंग्रेजी शब्द ज्यों के त्यों ले लिए जायं।

ऐसे शब्दों के लिए लिंग भी सूचित कर देना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद

1949–50 में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली की समस्या पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई एक गोष्ठी में डॉ गोरख प्रसाद ने कहा––

"हिन्दी माध्यम कराने के लिए आवश्यक हैं कि इण्टरमीडिएट बोर्ड में प्रस्ताव रखे जायं क्योंकि बोर्ड में बैठने वाले छात्रों की संख्या बहुत बढ़ गई है। आवश्यक है कि ए, बी, सी, डी, के स्थान पर क, ख, ग, घ, प्रयुक्त हो। इससे छपाई में सुविधा तथा अनावश्यक रोमन लिपि का ज्ञान कराने से बचा जा सकेगा। डॉ० रघुबीर के बनाये हुए शब्दकोश के 60 प्रतिशत शब्द अपना लेने लायक हैं। रसायन सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द विवादग्रस्त हैं।

लिपि सम्बन्धी विचार

विज्ञान (1949–50) में डॉक्टर गोरख प्रसाद ने लिपि सम्बन्धी कुछ विचार रखे। वे हिन्दी अंकों के पक्षधर थे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तथा जब वे हिन्दी विश्वकोश में थे तो सरकार को बाध्य किया कि हिन्दी अंको को मान्यता दी जाय। वे समीकरणों तथा संकेतों, सूत्रों में भी हिन्दी संकेतों के प्रयोग के पक्षधर रहे। विशेषतया जब मार्च अप्रैल

1961 में डाक्टर कोठारी ने विश्वकोश की हिन्दी नीति की कटु आलोचना की तो अपने पक्ष के समर्थन हेतु दिल्ली भी गये।

मैं डाक्टर ब्रजमोहन[1] की इस टिप्पणी से सहमत हूँ कि "डॉ० गोरख प्रसाद चलती फिरती संस्था थे। विज्ञान परिषद् के वे पोषक एवं उन्नायक थे।" विज्ञान परिषद् ने उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष एक व्याख्यान की व्यवस्था की है जिसका प्रथम व्याख्यान डॉ० गोरख प्रसाद के अत्यन्त आत्मीय स्वामी सत्यप्रकाश ने मार्च 1990 में दिया। 1978 से प्रतिवर्ष उनके नाम पर "विज्ञान" में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ लेख पर पुरस्कार भी प्रदान किया जाता है। 1961 में उनका स्मृति अंक भी छपा।

विज्ञान में प्रकाशित लेख

ज्योतिष विषयक:-

1. वह तारा कितनी दूर	नवम्बर–दिसम्बर 1927
2. तारे कितने बड़े	सितम्बर 1938
3. तारा समूह	अगस्त 1942
4. पंचांग शोध	फरवरी 1942
5. आकाश के 50 सबसे अधिक चमकीले तारे	अप्रैल 1943
6. तारे क्या हैं	जून 1945
7. अन्तरिक्ष के अद्भुत दृश्य	अप्रैल 1961

औद्योगिक:-

बिना धुएँ की फ्लैश लाइट	सितम्बर 1933
कैलिडस्कोप	सितम्बर 1933
कोसों दूर से साफ फोटो खींचना	दिसम्बर 1933
सबके लिए सरल बढ़ईगीरी (3 अंको में)	मार्च, जून 1934
गुद–गुदे खिलौने बनाना	फरवरी 1935
बच्चों की लकड़ी की बनी स्कूटर	फरवरी 1935
साइकिल	मार्च 1935
खेल का और काम का ठीक तराजू	अप्रैल 1935

सुन्दर खिलौने	जुलाई 1936
धातुओं की कलई और रंगाई	दिसम्बर 1939
फोटोग्राफी का व्यवसाय	मई 1940
फोटों खींचने का कैमरा	नवम्बर 1940
ब्लाक कैसे बनते हैं	अप्रैल 1941
एनलार्ज करना	मई 1941
हाफ्टोन कैसे बनते हैं	मई 1941
दर्पण बनाना	सितम्बर 1941
गणित और देवनागरी	अगस्त 1960

अन्य रोचक विषय:-

डायनैमाइट	मार्च 1938
साइकिल की कहानी	जून 1940
बागवानी	मार्च 1941
आग पर चलना	जुलाई 1941
विज्ञान और निनाद	अगस्त 1941
कुछ उपयोगी नुस्खे	मई, जून 1945

"विज्ञान" के अतिरिक्त अन्य पत्रिकाओं में उनके लेख छपते रहे जिनमें उल्लेखनीय हैं–

1. प्रारम्भिक कविताएँ	बाल सखा
2. कागज पर रंगीन फोटो	"गंगा" विशेषांक जनवरी 1934
3. लिपि सुधार	सरस्वती

पुस्तकें

वैसे तो पाठ्य पुस्तकें (11 हिन्दी में 11 अंग्रेजी में), विज्ञान विषय मौलिक पुस्तकें (13 हिन्दी में 1 अंग्रेजी में) एवं अनूदित पुस्तकें (2) हैं किन्तु 1930–47 की अवधि में लिखी गई प्रमुख पुस्तके निम्नलिखित हैं—

फोटोग्राफी	इंडियन प्रेस 1931
सौर परिवार	हिन्दुस्तानी एकेडमी 1931
नीहारिकाएँ	बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्

आकाश की सैर	इंडियन प्रेस	1936
चन्द्र सारणी, सूर्य सारणी	नागरी प्रचारिणी	
फल संरक्षण	विज्ञान परिषद्	1937
लकड़ी पर पालिश	"	1940
घरेलू डाक्टर	"	1940
तैरना	"	1940
उपयोगी नुस्खे और हुनर	"	1946
सरल विज्ञान सागर	"	1946

अनुवाद

सूर्य

ज्योतिष की पहुँच : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी उत्तर प्रदेश

सन्दर्भ :

1. डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति अंक "विज्ञान" विशेषांक जून–जुलाई 1961 विज्ञान, अक्टूबर 1962, पृ० 13–14.
2. सरल विज्ञान सागर : भाग–1, 1946 पृ० 472
3. 'गंगा' का विज्ञान विशेषांक, जनवरी 1934
4. विज्ञान, अक्टूबर 1962, पृ० 13

युगपुरुष श्री गोपाल स्वरूप भार्गव

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल"*

गुरूजी के नाम से विख्यात स्वतन्त्रतापूर्व के विज्ञान लेखक श्री गोपाल स्वरूप भार्गव प्रारम्भ में इलाहाबाद के के०पी० इण्टरमीडिएट कालेज में भौतिक शास्त्र के प्रवक्ता थे। कालान्तर में वे चौधरी महादेव प्रसाद डिग्री कॉलेज में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हो गये। वे 'विज्ञान' के सम्पादक भी कई वर्षों तक रहे। यद्यपि उन्होंने रसायन शास्त्र में एम०एस-सी० की डिग्री प्राप्त की थी किन्तु प्रबन्ध समिति ने अज्ञात कारणों से भौतिक शास्त्र के प्रवक्ता के रूप में उनकी नियुक्ति की थी।

श्री भार्गव जी नगर के सम्भ्रान्त भार्गव परिवार के एक सुशिक्षित प्रतिभावान सदस्य थे। इनके दादा श्री रामजीवन लाल भार्गव, धौलपुर रियासत के एक वरिष्ठ अधिकारी थे। उनके पिता का नाम श्री बद्री प्रसाद भार्गव एवं माता का नाम श्रीमती गंगा देवी भार्गव था। गोपाल स्वरूप जी तीन भाइयों और एक बहन में सबसे बड़े थे।

श्री गोपाल स्परूप भार्गव की पत्नी का नाम श्रीमती लीला देवी भार्गव था। इनके पांच पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ थीं। बड़े पुत्र श्री रतन लाल भार्गव जनरल मैनेजर, वेस्टको पेपर मिल कर्नाटक तथा अन्य चार श्री मधुसूदन लाल भार्गव एडवोकेट, श्री बृजभूषण लाल भार्गव इलेक्ट्रिकल्स इंजीनियर, ओरियन्ट पेपर मिल, वृजराज नगर उड़ीसा, श्री चन्द्रभूषण लाल भार्गव प्रवक्ता, फिजिक्स आई०ई०आर०टी० इलाहाबाद तथा श्री शशिभूषण भार्गव एडवोकेट, इलाहाबाद हाईकोर्ट हैं। पुत्रियाँ कान्ति, शान्ति एवं सुधा हैं।

सवँत् 1960 की बसन्त पंचमी के पावन पर्व पर अलवर के हाईस्कूल के भार्गव छात्रावास में, नये छात्रों के दीक्षा समारोह में, पं. गोपाल स्वरूप भार्गव जी का भी उपनयन संस्कार सपन्न हुआ। उनके दीक्षा–गुरू थे, वहाँ के गणित के प्रसिद्ध अध्यापक, पं. रामजीवन लाल

---

*पूर्व विभागाध्यक्ष, दुग्ध विज्ञान एवं पशुपालन विभाग, कुलभाष्कर आश्रम महाविद्यालय, इलाहाबाद (उ०प्र०)

जी भार्गव, जो थियोसाफिकल सोसाइटी के सक्रिय सदस्य थे। थियोसाफी के प्रचार–प्रसार में उनका बड़ा योगदान था। वे थियोसॉफिकल साहित्य के मान्य व्याख्याता, एवं लेखक थे तथा गीता के अनुशीलन में सदा तत्पर रहते थे। वे बड़े ही चरित्रवान, दयावान, विनम्र एवं परोपकारी व्यक्ति थे। उनके छोटे भाई पं. सालिगराम जी भार्गव बड़े कुशाग्र बुद्धि के थे। पं. सालिगराम भार्गव का भी उपनयन संस्कार पं. गोपाल स्वरूप भार्गव के साथ ही सम्पन्न हुआ। इस तरह दोनों गुरूभाई बन गये। पं. गोपाल स्वरूप भार्गव को एक प्रतिभासम्पन्न गुरू और कुशाग्र बुद्धि के गुरूभाई का इस तरह सहज ही सान्निध्य प्राप्त हो गया जिसका पं. गोपाल स्वरूप जी भार्गव के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा। गोपाल स्वरूप के जीवन में परोपकार, संयम, सदाचार, कर्तव्यपरायणता, गीता अनुशीलन, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति गौरव का भाव एवं लोक सेवा की अभिलाषा तथा हिन्दी भाषा के प्रति अद्भुत प्रेम गुरू कृपा एवं सद्–मित्र के सान्निध्य से ही संभव हो सका था।

गोपाल स्वरूप जी भार्गव–सन् 1903 से 1908 तक अलवर के स्कूल में अध्ययन करते रहे। वहाँ से उन्होने 1908 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके गुरूभाई पं. सालिग राम जी भार्गव अपनी कुशाग्र बुद्धि का लाभ उठाते हुये समय बचाने के उद्देश्य से, हाई स्कूल की परीक्षा एक प्राइवेट छात्र के रूप में उत्तीर्ण करके, काशी विश्वविद्यालय में आगे की पढ़ाई करने के लिये चले गये। किन्तु काशी में उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, अतः वे वहाँ से लौट आये और आगरा कालेज, आगरा से इन्टर व बी. एस–सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1909 में गोपाल स्वरूप ने भी आगरा कॉलेज में ही इण्टर कक्षा में प्रवेश ले लिया किन्तु सालिगराम भार्गव से वे दो वर्ष पीछे हो गये। आगरा कालेज के भार्गव छात्रावास में दोनों पूर्व परिचित मित्र साथ–साथ एक ही कमरे में रहते थे। वहाँ भी वे मित्र मण्डली के साथ प्रातः भ्रमण में जाया करते थे। इस मित्र मण्डली में रास्ते में धर्म, समाज व राजनीति की चर्चा चला करती थी।

आगरा कॉलेज में भार्गव जी के रसायनशास्त्र के अध्यापक थे श्री नागेन्द्र चन्द्र भाभा, जो अंग्रेजी व हिन्दी की मिली–जुली खिचड़ी भाषा

में रसायन शास्त्र पढ़ाया करते थे। उनके व्याख्यान बड़े ही लोकप्रिय व उपयोगी हुआ करते थे। प्रो. भाभा की प्रेरणा से ही पं. सालिग राम भार्गव एवं पं. गोपाल स्वरूप भार्गव तथा उनके मित्र मण्डली के अन्य सदस्यों में यह भावना जगी कि विज्ञान का पठन–पाठन तथा लेखन हिन्दी भाषा में भी होना चाहिये। तभी से ये लोग उस ओर तत्पर हुये तथा आजीवन हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान की सेवा करते रहने का संकल्प लिया और उसे निभाया भी।

1909 में पं. सालिगराम जी बी.एस–सी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् आगरा कॉलेज में ही डिमांस्ट्रेटर हो गये। उन्होंने प्रयोगशाला में अनेक नये यन्त्र व उपकरण मँगाये, तथा उन पर प्रयोग कराये जाने लगे। पं. गोपाल स्वरूप भार्गव इन प्रयोगों से काफी लाभान्वित हुये। डिमांस्ट्रेटर होने के साथ–साथ 1910 में पं. सालिगराम जी भार्गव ने एम.एस–सी. की परीक्षा दी किन्तु उसमें वे असफल रहे। उस वर्ष गोपाल स्वरूप भार्गव ने इण्टर पास कर लिया। भार्गव जी के एक मित्र पं. महेश प्रसाद ने, जो बाद में देहरादून में इम्पीरियल पेपर एक्सपर्ट हो गये थे, तथा एक साल पूर्व से प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में पढ़ रहे थे, भार्गव बन्धुओं को बतलाया कि इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कॉलेज की प्रयोगशालायें बहुत सम्पन्न हैं तथा वहाँ विज्ञान के पठन–पाठन की बड़ी सुविधायें हैं। पंडित महेश जी की इस सूचना के अनुसार श्री सालिगराम तथा श्री गोपाल स्वरूप जी 1910 में प्रयाग आ गये। गोपाल स्वरूप ने बी–एस.सी. में तथा सालिगराम ने एम. एस–सी. में प्रवेश लिया। दोनों हिन्दू बोडिंग हाऊस में एक ही कमरे में रहने लगे। उनके बगल के कमरे में मुंशी वैद्यनाथ प्रसाद रहते थे, जो बाद में सुप्रसिद्ध गणितज्ञ हुये, और प्रयाग विश्वविद्यालय में वर्षों तक अध्यापन करते रहे।

प्रयाग आने पर परिवर्तित वातावरण एंव खानपान की वजह से इन राजस्थानी भार्गव बन्धुओं का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। किसी अनुभवी व्यक्ति ने सुझाव दिया कि प्रयाग में भोजन में चावल खाना तथा प्रातः नियमित भ्रमण करना आवश्यक हैं। इस सुझाव का अनुपालन करने के पश्चात् इन लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहने लगा।

1911 में सालिगराम जी म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में डिमांस्ट्रेटर नियुक्त हुये। भार्गव बंधु हिन्दू बोर्डिंग हाउस के चौथे ब्लाक में रहते थे। पं. सालिगराम भार्गव ने डिमांस्ट्रेटर नियुक्त हो जाने के पश्चात्, म्योर सेण्ट्रल कॉलेज की प्रयोगशाला को भी और आधुनिक रूप दिया तथा अनेक नये प्रयोग प्रारम्भ करवाये। हिन्दू बोर्डिंग हाउस में देशप्रेमियों तथा हिन्दी भाषा प्रेमियों का जमघट लगा रहता था। वहाँ बरामदे में एक खाट बिछी रहती थी। इन गोष्ठियों में तत्कालीन आवासी सर्वश्री हीरालाल खन्ना (प्रिंसिपल), डॉ. निहाल चन्द्र वैश्य (बी. एस–सी. बार ऐट ला), जगन्नाथ प्रसाद (अवकाशप्राप्त रजिस्ट्रार सोसायटी के प्रधान), केशवचन्द्र सिंह (एम. एल. ए.), लक्ष्मी नारायण गुप्ता (एडवोकेट), पं. अम्बिका प्रसाद पाण्डेय (एडवोकेट), हर दयाल सिंह (केन्द्रीय कृषि विभाग दिल्ली), महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (सूर्यसिद्धान्त के विज्ञान भाष्य पर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त) आदि प्रमुख रूप से भाग लेते थे। पं. गोपाल स्वरूप भार्गव उम्र में यद्यपि इन सब में सबसे छोटे थे किन्तु गुरुजनों के कृपापात्र एवं प्रतिभासम्पन्न होने की वजह से इन गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। इन गोष्ठियों में हिन्दी में विज्ञान लेखन पर विशेष जोर दिया जाता था, विशेष रूप से रामदास गौड़ और पं. सालिग राम ने एक योजना में प्रो. हमीदुद्दीन साहब की भी पूर्ण सहमति थी। इस कार्य योजना के अनुसार ही 1913 में "विज्ञान परिषद" का जन्म हुआ। अंग्रेजी में इसे "वर्नाक्यूलर साइन्टिफिक लिटरेरी सोसाइटी तथा उर्दू में "अन्जुमन सनायेवफनून" भी कहा जाता था। विज्ञान परिषद् के क्रियाकलापों में हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक लेख एवं पुस्तकें लिखना तथा व्याख्यान दिलवाना शामिल था। इस सम्बन्ध में श्री रामदास गौड़ व पं. सालिगराम भार्गव ने पहल करके "विज्ञान प्रवेशिका", भाग–1 लिखी, जिसका उर्दू अनुवाद "मुफलालउलफनून" के नाम से भी छपा। व्याख्यान के क्रम में प्रथम वैज्ञानिक व्याख्यान हिन्दी भाषा में पं. सालिगराम जी भार्गव ने भारती भवन के सभा कक्ष में दिया। उस सभा के सभापति पं. मदन मोहन मालवीय जी थे। तदन्तर व्याख्यानो की श्रृंखला म्योर सेण्ट्रल कॉलेज एवं के. पी. कॉलेज में जारी रही। पं. गोपाल स्वरूप इन व्याख्यानों के आयोजन में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। इन व्याख्यानों के प्रति तत्कालीन अध्यापकों व छात्रों में बड़ा उत्साह रहता था। वे बड़ी संख्या में इसमें भाग लेते थे। कटरा में पं.

सालिगराम के घर पर विज्ञान परिषद की योजनायें बना करती थीं। पहले विज्ञान परिषद् का कार्यालय चौक में था। पं. गोपाल स्वरूप भार्गव के. पी. कॉलेज से छुट्टी मिलते ही चौक में विज्ञान परिषद् के कार्यालय में पहुँच जाया करते थे। इनके सद्प्रयास से ही "विज्ञान" पत्रिका का प्रकाशन सुचारू रूप से प्रारम्भ हो गया। सी.ए.वी. कॉलेज के खन्ना जी विज्ञान परिषद के मैनेजर बनाये गये। पं. सालिगरामजी मंत्री और सह–सम्पादक नियुक्त हुये। पं. श्रीधर पाठक सम्पादक का कार्य करते थे। पं. के. सी. भल्ला ने 'विज्ञान' पत्रिका के प्रकाशक का कार्यभार सम्भाल लिया। इस प्रकार "विज्ञान" पत्रिका का प्रथम संस्करण पूर्ण सजधज के साथ प्रकाशित हुआ जिसका हिन्दी जगत में बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। "विज्ञान परिषद" का कार्यालय म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में ही बना लिया गया।

पं. गोपाल स्वरूप भार्गव विज्ञान में लेख लिखने के लिए हमेशा छात्रों व अध्यापकों को प्रोत्साहित करते रहते थे। डॉ सत्यप्रकाश उन्हीं की प्रेरणा से उच्च कोटि के विज्ञान लेखक बने तथा आजीवन विज्ञान परिषद से जुड़े रहे। प्रो. गोपाल स्वरूप के वैज्ञानिक विषयों पर सार्वजनिक व्याख्यान भी होते थे। डॉ. सत्यप्रकाश ने भौतिकी विभाग के लेक्चर थियेटर में उनका जो व्याख्यान सुना था वह विज्ञान–वाद पर था। उनकी शैली बड़ी सुगम व रोचक थी तथा उनके लेख भी सुरुचिपूर्ण होते थे। उनके लेख 'विज्ञान' पत्रिका में भी प्रकाशित हुए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने भी आपकी एक पुस्तक "नमक की कहानी" छापी। एक सफल अध्यापक होने के साथ–साथ वे एक सहृदय सहयोगी तथा सहायक भी थे। परिचितों से सुख–दुख में सद्भावपूर्ण सहयोग करते थे।

जब विज्ञान परिषद की रजत जयन्ती 1938–39 में मनाई गई तब प्रो. भार्गव जी ने विज्ञान परिषद का इतिहास लिखा। म्योर सेण्ट्रल कॉलेज की भूमि पर बने विज्ञान परिषद के नये भवन में आयोजित कई अधिवेशनों में भाग लिया। कायस्थ पाठशाला से 1961 में सेवानिवृत्त होने के पश्चात् भी वे सक्रिय रहे। नित्य सपत्नीक बेली घाट पर वे गंगा स्नान करने जाते थे। थक जाने पर राह की पुलिया पर आराम करते थे। वृद्धावस्था के कारण काफी अशक्त हो जाने पर भी उनका प्रातः भ्रमण गंगा स्नान का कार्यक्रम अनवरत चलता रहा।

गुरू जी बड़े संयमी प्रकृति के व्यक्ति थे। वह नित्य प्रातः चार बजे उठ जाते थे। नित्य क्रिया से निवृत्त होने के पूर्व वे कुछ देर तक सस्वर भजन करते थे। तत्पश्चात् पैदल ही गंगास्नान के लिए जाते थे, स्नान से लौट कर नियमित पूजन, संध्यावंदन एवं हवन का उनका क्रम था। तत्पश्चात् कुछ देर अध्ययन एवं सात्विक भोजन करके ठीक समय से विद्यालय में उपस्थित हो जाते थे। विद्यालय वे इक्के से जाते थे। विद्यालय में भौतिक शास्त्र पढ़ाने के साथ–साथ विद्यालय में होने वाले धार्मिक एवं सांस्कृतिक समारोहों का संचालन भी वही किया करते थे।

भौतिक शास्त्र के प्रवक्ता के रूप में वे अपने छात्रों को भौतिक शास्त्र की नवीनतम जानकारी देने का प्रयास करते थे। फलतः जब इण्टर के स्तर से अधिक गूढ़ बातें छात्रों को बताने लगते थे तो छात्रों की समझ में कम ही आ पाता था। छात्रों द्वारा प्रश्न करने अथवा और स्पष्टीकरण माँगने पर वे उन्हें झिड़क देते थे। "मूढ़ कहीं के" उनका तकिया–कलाम था। वे बहुत सख्त और मूडी स्वभाव के अध्यापक थे। जरा भी लापरवाही होने पर छात्रों को बेंच पर खड़ा कर देते थे।

श्री भार्गव जी बड़े ही कट्टर एंव स्वाभिमानी प्रकृति के अध्यापक थे। के.पी.कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य श्री गोकुल चन्द्र से विद्यालय व्यवस्था को लेकर प्रायः उनकी मुठभेड़ हो जाया करती थी। विद्यालय के दो वरिष्ठ कर्णधारों के साथ वाद–विवाद अन्य सहयोगी अध्यापकों एवं छात्रों के लिये बहुधा एक रोचक प्रसंग उत्पन्न करता था। तर्क–वितर्क की भाषा प्रायः उच्च कोटि की अंग्रेजी होती थी, जिसमें एक दूसरे से बाजी मार ले जाने के लिए दृष्टान्तों एवं मुहावरों की भरमार होती थी। दो प्रतिभाशाली दिग्गजों का वाग् युद्ध भी एक शालीन शैक्षिक वातावरण उपस्थित कर देता था। यह वाग्युद्ध अल्पकालिक ही होता था। थोड़ी देर में सब कुछ शान्त, जैसे कुछ हुआ ही न हो । क्षण भर में ही दोनों का आपसी मेल–मिलाप, हँसी–मजाक, अपने–अपने कार्य में संलग्नता एंव सहयोग – दो निस्पृह कर्म योगियों का एक स्वस्थ उदाहरण प्रस्तुत करता था। ऐसा दृश्य विद्यालय में प्रायः उपस्थित हो जाया करता था। दोनों महानुभावों की अपनी मान्यताओं एवं आदर्शों के पिष्ट–पेषण का द्वन्द। उनमें एक कट्टर परम्परावादी तथा वैज्ञानिक एवं दूसरा आधुनिक सत्यता का आदर्शवादी।

श्री भार्गव जी विद्यालय के कार्यों से निवृत्त होने के बाद कटरा के नेतराम चौराहे पर स्थित मेसर्स विशन लाल भार्गव की स्टेशनरी की दुकान पर नियमित रूप से बैठते थे। यह दुकान श्री गोपाल स्वरूप भार्गव जी ने ही अपने चचेरे भाई श्री विशन लाल भार्गव जी को आर्थिक सहयोग एवं आजीविका प्रदान करने के लिये खुलवायी थी।

अध्यापन के अलावा श्री भार्गव जी नगर की अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। वे कटरा की रामलीला कमेटी के वर्षों तक अध्यक्ष रहे। इसके अलावा वे नगर के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनेक पदों पर सेवारत रहे। मधुमेह के रोगी होती हुये भी उनकी सक्रियता प्रशंसनीय थी।

लेखक के साथ ही वैज्ञानिक शोधों में भी उनकी अभिरुचि थी। उन्होंने 1934 में ही एक अच्छी टेलिस्कोप खरीद कर अपने घर में लगा लिया था, जिससे वे रात–रात भर जाग कर अंतरिक्ष का निरीक्षण किया करते थे। 1935 में उन्होंने अपने सहयोगी श्री वृज बिहारी सहाय (निवर्तमान प्राचार्य कुलभाष्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय) के साथ मिल कर सिविल लाइन्स के भार्गव इंजीनियरिंग वर्क्स की दुकान पर मात्र पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर एक रेडियो सेट तैयार किया था जो उस समय प्रयाग नगर के लिये एक अद्भुत घटना थी। 1936 में उन्होंने अकेले ही एक रेडियोसेट तैयार करके अपने बड़े लड़के को (रतन लाल भार्गव को) भेंट स्वरूप प्रदान किया था। यह ऐतिहासिक रेडियो सेट एवं टेलीस्कोप आज भी श्री रतनलाल भार्गव के पास सुरक्षित है यद्यपि यह दोनों उपकरण टूटी–फूटी स्थिति में है।

के. पी. कॉलेज के उनके कार्यकाल में घटित एक विशेष घटना विशेष उल्लेखनीय है। विद्यालय की किसी छमाही परीक्षा में श्री भार्गव जी ने एक प्रश्न प्रश्नपत्र में दिया था जिसके कारण उन्हें काफी परेशानी उठानी पड़ी थी। प्रश्न था कि–एक टंकी में आधा पानी भरा है। टंकी की पानी की टोंटी से जितना पानी टंकी में जा रहा है उससे अधिक निकास नली से पानी बाहर निकल रहा है। इस तरह टंकी खाली हो जाती है। यदि निकास नली को बंद कर दिया जाय, तो वह कितनी देर में पुनः भर जायेगी। टंकी का आकार प्रकार एवं टोंटी से पानी आने की गति व मात्रा आदि सभी ऑकड़े दिये गये थे। सभी छात्रों ने इस प्रश्न को हल किया था

किन्तु सभी का उत्तर पुस्तक में दिये गये उत्तर से भिन्न था । पुस्तक में दिया गया उत्तर एक घंटा था जबकि अधिकांश छात्रों का उत्तर दो घंटा था। अतः भार्गव जी ने सबको गलत काट कर उस प्रश्न पर शून्य अंक प्रदान किया। छात्रों को अपनी गलती समझ में नही आयी। अतः उन सभी ने मिल कर प्राचार्य श्री गोकुल चन्द्र से शिकायत की। प्राचार्य जी तो भार्गव जी के विरुद्ध शिकायत की ताक में रहते थे। उन्होंने तुरन्त छात्रों की शिकायत पर उनकी उत्तर पुस्तिकाओं को पुनः निरीक्षण हेतु विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्रसिद्ध भौतिकशास्त्र के वैज्ञानिक डॉ० मेघनाद साहा जी के पास प्रस्तुत कर दिया। दुर्भाग्य से डॉ० साहा ने उस वक्त भार्गव जी को गलत सिद्ध किया, और छात्रों को उनके उत्तर पर पूर्ण अंक प्रदान कर दिया। भार्गव जी की इस गलती पर प्राचार्य जी ने प्रबन्ध समिति से कार्यवाही करके उन्हें निलंबित करा दिया। इसी बीच उनके सहयोगी श्री वृजबिहारी सहाय को जब घटना का पता चला तो उन्हौंने भार्गव जी के पक्ष को सही करार दिया, तथा कहा कि इस प्रश्न का मूल रहस्य यह था कि टंकी आधी भरी थी, अतः आधी टंकी ही पुनः भरने का समय बताना था न कि पूरी टंकी भरने का, जैसा कि छात्रों ने किया था। इसी आधार पर पुस्तक में दिया गया उत्तर "एक घंटा" सही था। पुस्तक भी किसी अंग्रेज लेखक की विश्व भर में मान्यताप्राप्त एक स्तरीय पुस्तक थी। अतः उसमें छपे उत्तर के गलत होने का प्रश्न ही नहीं था। भार्गव जी जो निलंबन के कारण बहुत खिन्न व दुखी थे, उनके द्वारा तर्क को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये, तथा उनकी बाछें खिल गईं। तुरन्त वे दौड़े–दौड़े प्राचार्य कार्यालय में पहुँचे और पुस्तक का उत्तर दिखला कर अपने पक्ष को सही कहा। प्राचार्य तो हक्के–बक्के रह गये। उन्होंने तुरन्त डॉ० मेघनाद साहा से सम्पर्क किया। वे आये, भार्गव जी के पक्ष को सुना, और अपनी भूल स्वीकार की। इस प्रकार भार्गव जी का निलम्बन वापस हुआ और फिर सब सामान्य दिनचर्या चलने लगी। ऐसे प्रतिभाशाली अध्यापक का स्मरण कर आज का युग श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है। प्रयाग नगर का गौरव यह विज्ञान लेखक अपने सक्रिय जीवन का पूर्ण सुखभोग कर 1961 में चिर निद्रा में सो गया। ऐसे युग पुरूष को कोटिशः नमन्।

सम्पादक के रूप में

1917 में भार्गव जी 'विज्ञान' मासिक के सम्पादक रहे और 1926 तक

बड़ी ही कुशलता तथा लगन से सम्पादन कार्य करते रहे। वैसे तो जब वे बी.एस–सी. में थे तभी 'सरस्वती' में उनका लेख छपा था। सम्पादक बनने के पूर्व वे 1915 से ही विज्ञान में लेख लिखने लगे थे। आत्मकथा के रूप में कोयले का वैज्ञानिक विवरण विज्ञान लेखन में आत्मकथा शैली को जन्म देने वाला था। 'विज्ञान में छपे उनके लेखों की सूची इस प्रकार है।

लेख का शीर्षक	प्रकाशन माह	प्रकाशन वर्ष
1. कोयले की आत्मकथा	अप्रैल	1915
2. अणुलीला	दिसम्बर	1915
3. अणु और परमाणु	जनवरी	1916
4. कागज की लुगदी	मई	1916
5. विस्फोटको का इतिहास	जून	1916
6. कोकेन–मनुष्य जाति का एक भयानक, शत्रु	जून	1916
7. आकाशीय टूट अर्थात टूटने वाले तारे	जनवरी	1917
8. नमक व नमक की खानें	अप्रैल	1917
9. मनुष्य का नया नौकर	मई	1917
10. वेदन विजय	अगस्त	1917
11. मौलिको की आत्मकथा	सितम्बर	1917
12 भाप की भभकी	जून	1919
13. वायु के चमत्कार	नवम्बर	1919
14. रागा या टिन (मौलाना करामत हुसैन कुरेशी के नाम से)	सितम्बर	1922
15. लोहे के यौगिक	अक्टूबर	1922
16. कास्टिक सोडा	अक्टूबर	1922
17. विश्व का विस्तार	अप्रैल	1925

18. होयटजन प्राणि सांप है या पक्षी	अप्रैल	1925
19. अध्यक्षीय भाषण	फरवरी	1933
20. वैज्ञानिक योगान्तर	जून	1934
21. अल्युमनियम की अर्धशताब्दी	अप्रैल	1936
22. लैंगले के कुछ आविष्कार	दिसम्बर	1938

अध्यक्षीय भाषण

ग्वालियर में भार्गव जी ने जो अध्यक्षीय भाषण (विज्ञान फरवरी 1933) दिया उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं।

"हिन्दी में मनोरंजक तथा लोकप्रिय साहित्य की बड़ी आवश्यकता है। "विज्ञान" की सहायता करने के अतिरिक्त बालोपयोगी और मनोरंजक पत्र की योजना शीघ्र होनी चाहिए। बँगला में "द बुक आफ नालेज" का अनुवाद छप रहा है। इण्डियन प्रेस को हिन्दी संस्करण भी निकालना चाहिए।"

छद्मनाम से लेखन :-

शायद भार्गव जी पहले लेखक हैं जिन्होंने 'कुरैशी' तथा 'रामप्रसाद' नामों से भी 'विज्ञान' में लिखा है।

सन्दर्भ

1. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का लेख 'विज्ञान' मसिक 1961
2. अध्यक्षीय भाषण 'विज्ञान' फरवरी 1933
3. मनोरंजक रसायन प्रकाशक : विज्ञान परिषदप्रयाग

स्वामी हरिशरणानन्द

श्री श्याम सुन्दर शर्मा*

आमतौर से समझा जाता है कि केवल वे ही व्यक्ति जिन्होंने विज्ञान की विधिवत शिक्षा ग्रहण की है, प्राचीन परंपराओं और मान्यताओं को अपनाने से पहले उन्हें प्रयोगों की कसौटी पर कसते हैं। पर यदा–कदा इसके अपवाद भी मिलते हैं। स्वामी हरिशरणानंद एक ऐसे ही अपवाद थे। औपचारिक शिक्षा के नाम पर केवल मिडिल स्कूल तक पढ़े, योग और सिद्धि की तलाश में अनेक वर्षों तक पहाड़ों और साधुओं–वैरागियों के मठों में भटकते रहने वाले और मात्र 15 वर्ष की उम्र में संन्यास ग्रहण करने वाले स्वामी हरिशरणानंद सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक थे। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण एकदम वैज्ञानिक था। जीवन के उत्तरार्द्ध में वैद्य और आयुर्वेद की हर मान्यता और तकनीक को वैज्ञानिक प्रयोगों की कसौटी पर कसते रहते थे और औषधियों के प्रभावों को जानने के लिए वे स्वयं अपनी जिंदगी को भी दाँव पर लगाने में हिचाकिचाते नहीं थे। अपने इसी स्वभाव के फलस्वरूप ही वे विज्ञान परिषद के सम्पर्क में आए। कहा जाता है कि विज्ञान परिषद की पुस्तकों और पत्रिकाओं का जितना लाभ उन्होंने उठाया उतना शायद ही किसी ने उठाया होगा। वे स्वयं को विज्ञान परिषद और "विज्ञान" का ऋणी मानते थे। इसीलिए परिषद के जुलाई 1934 में आयोजित वार्षिक अधिवेशन में जब उन्हें मालूम हुआ कि परिषद् की आर्थिक दशा बहुत कमजोर है तो उन्होंने अपनी आयुर्वेदिक फार्मेसी परिषद को सौंप देने की पेशकश की। अपनी पत्रिका "आयुर्वेद–विज्ञान" को तो "विज्ञान" में मिला ही दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने परिषद् को आर्थिक सहायता भी दी और ग्यारह महीने तक, अक्टूबर 1941 से अगस्त 1942 तक, अमृतसर से मुद्रित भी कराया।

वर्ष 1925 में उनकी पहली पुस्तक "आसव विज्ञान" प्रकाशित हुई। उसके बाद 1960 तक वे कुछ न कुछ लिखते रहते थे। उन्होंने कुल मिलाकर 13 पुस्तकें लिखीं। इसके अतिरिक्त मौलिक लोकप्रिय तथा बाल

---

*डी 120 हौज खास, नई दिल्ली–110016

विज्ञान विषय वैज्ञानिक साहित्य के लेखन को प्रोत्साहन देने हेतु विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में 3 पुरस्कार चालू कराये और उसके लिये 3500 रुपये प्रतिवर्ष देते रहे। "विज्ञान" को भी वे प्रतिवर्ष 1000 रुपए दान देते रहे।

स्वामी हरिशरणानंद का जन्म कानपुर में सन् 1889 के अगस्त मास (विक्रम संवत के अनुसार श्रावण मास) में एक कनोजिया ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका जन्म का नाम था हरिश्चन्द्र जो 15 वर्ष की उम्र में सखी मत की दीक्षा लेने पर हरिशरण हो गया और बाद में 26 वर्ष की उम्र में, सखी–मत के पीले रंग के वस्त्र त्याग कर संन्यासी के भगवा वस्त्र धारण करने पर वे हरिशरणानंद बन गए।

पिता मुन्नीलाल के साधु–संतों के प्रति अनन्य भक्ति भाव रखने के परोक्ष प्रभाव स्वरूप बाल हरिश्चंद्र बाबा गोपालदास के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। मात्र 8 मास की उम्र में माता को खो देने वाले हरिश्चंद्र को बाबा गोपालदास ने मां का प्यार दिया, अक्षर ज्ञान कराया और स्कूल की पढ़ाई छूट जाने पर संस्कृत की शिक्षा दी तथा "सारस्वत" और 'अमरकोश' पढ़ाया। परंतु इन सबसे कहीं अधिक बड़ा काम किया बालक हरिश्चंद्र के मन में योग और आयुर्वेद के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न करके–ऐसी रुचि जो जीवनपर्यन्त बनी रही।

मात्र 14 वर्ष की उम्र में पिता का साया और 15 वर्ष की उम्र में बाबा गोपालदास का साया खो देने पर तथा बाद में बाबा गोपालदास की बेटी के बेरुखे व्यवहार ने किशोर हरिश्चंद्र को, राम नवमी के अवसर पर, रामकथा सुनने अयोध्या जाने वाले लोगों की टोली में शामिल कर दिया। अयोध्या पहुँचने पर योगी की तलाश ने, उसे बाबा ईश्वरदास से दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। इस प्रकार 15 वर्ष की कच्ची उम्र में ही हरिश्चंद्र वैरागी साधु, हरिदास, बन गया।

अयोध्या से ही किसी ऐसे योगी की तलाश ने जो उसे योग की शिक्षा दे सके, उसका अभ्यास करा सके और सिद्धि–प्राप्त करा सके, किशोर हरिदास को चित्रकूट, प्रयाग और हरिद्वार की यात्रा कराई। हरिद्धार में हरिदास की भेट बाबा वैष्णवदास से हुई। वह शीघ्र ही घनिष्ठता में बदल गई। यह घनिष्ठता बाबा वैष्णवदास के जलियांवाले बाग हत्याकांड में, शहीद हो जाने तक बराबर बनी रही।

यद्यपि वैष्णवदास का लक्ष्य योगी की खोज न था पर वे जन्मजात घुमक्कड़ थे और देशाटन का उन्हें हरिदास की तुलना में कहीं अधिक अनुभव था। जब वैष्णवदास ने गंगोत्री, बदरीनाथ वगैरह घूमने का प्रस्ताव रखा तब यह सोचकर कि हिमालय की कंदराओं के एकांतवास में कदाचित् उन्हें कोई सच्चा योगी मिल जाए, हरिदास उनका साथ देने के लिए राजी हो गए। गांव–गांव भटकते, ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ते–उतरते, दुर्गम पथों पर रात–दिन चलकर, दोनों ने उक्त तीर्थों की यात्रा की पर घुमक्कड़ी के उद्देश्य से सफल इस यात्रा में उन्हें कोई सिद्ध पुरुष नहीं मिला। बहरहाल हरिद्वार लौटने पर, वर्ष 1907 के अंतिम दिनों में, हरिदास की भेंट सखी–मत के बाबा सुदुरूप्रसाद शरण से हुई। सुदुरूप्रसाद शरण अच्छे पढ़े लिखे व्यक्ति थे जिन्होंने योग का अध्ययन किया था पर अभ्यास नहीं। उन्होंने हरिदास को पुनः दीक्षा दी और इस प्रकार 21 वर्ष की उम्र में बचपन के हरिश्चंद्र हरिशरण बन गए।

सुदुरूशरण रसायन (सोना–चांदी बनाने की विद्या) जानने का भी दावा करते थे और उस दौरान जब हरिशरण उनके साथ रहे उन्होंने पाँच बार पारे को चांदी में बदला भी। पर बाद में हरिशरण ने यह महसूस किया कि यह मात्र धोखा था। उक्त क्रिया के दौरान पारा–चांदी में नहीं बदला था बल्कि चांदी की डली चोरी से सामग्री में रख दी गई थी। उन्होंने बाबा से रसायन की विद्या सीखने की बहुत कोशिश की पर बाबा ने उन्हें वह नहीं सिखायी–यद्यपि योग का पुस्तक–ज्ञान अवश्य करा दिया। योगाभ्यास न उन्हें आता था और न ही वे सिखा सकते थे।

कुछ दिन बाद हरिशरण की भेंट फिर वैष्णवदास से हो गई और एक बार वे फिर घुमक्कड़ी पर चल दिए। इस बार वे कैलाश–मानसरोवर की ओर चल पड़े। वे अगस्त के महीने में यात्रा पर निकले थे। मानसरोवर पहुँचते–पहुँचते सर्दी बहुत बढ़ ही जाती थी। अतएव सर्दी की ऋतु इन्हें मानसरोवर के तट पर ही गुम्फा में, तिब्बती लामाओं के साथ, बितानी पड़ी और पेट भरने के लिए याक का मांस भी खाना पड़ा। गर्मी की ऋतु आरंभ होने पर, भारत लौटने पर मुनि की रेती (ऋषिकेश) में उनकी भेंट, काफी हद तक पहुँचे हुए योगी, स्वामी सत्यानंद से हो गई। उन्होंने हरिशरण को बताया कि योग सीखने का

नहीं वरन् करने का काम है। इस बात की गाँठ बाँध कर हरिशरण ने पहले ऋषिकेश के पास गंगा के किनारे कोयलघाटी में, फिर कनांव गाँव के निकट देवप्रयाग के निकट और अंत में यमुना के तट पर पांवटा ग्राम के पास योगाभ्यास किया। पांवटा में उन्होंने शरीर की आवश्यकताओं, भूख, नींद आदि, को कम से कम करके तथा बिना किसी से मिले, मौन रह कर मन को एकाग्र करने में बहुत हद तक सफलता कर ली थी। यदि उस समय उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल गया होता जो उनकी देख–भाल कर सकता तो वे अपनी तपस्या में सफल हो जाते। पर प्रारब्ध को कुछ और ही मंजूर था। वह तो उन्हें संसार से दूर रह कर नहीं वरन् संसार में रह कर ही और बाद में गृहस्थ भी बन कर, सच्चे अर्थों में योगी और वैज्ञानिक बनाना चाहता था।

कदाचित इसी निमित्त एक मामूली घटना घट गई जिसने हरिशरण के जीवन को एकदम नया मोड़ दे दिया। वर्ष 1914 के कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की एक रात को वे पद्मासन में बैठे योग में लीन थे कि उनके ऊपर गुत्थमगुत्था होते हुए दो सांप गिर पड़े। यद्यपि वे सांपों, बिच्छुओं से भरी जगहों पर तथा उन वनों में जँहा जंगली हाथी और अन्य जंगली जानवर स्वच्छंद रूप से विचरण करते थे, महीनों तक नितांत अकेले रहे थे पर इस घटना ने उन्हें एकदम विचलित कर दिया। इससे उनका ध्यान ही भंग नहीं हुआ उनके मन में अत्यंत भय भी बैठ गया। उन्हें चक्कर आ गया। स्वस्थ होने पर उन्होंने पुनः ध्यान लगाने की कोशिश की। पर फिर चक्कर आ गए। वास्तव में इस घटना के बाद वे पहले की तरह पूरे मनोयोग से ध्यान लगा ही नहीं सके। जब वे ऐसी कोशिश करते उन्हें चक्कर आ जाते। अंत में हारकर वे आबादी में आ गए। अपने भक्तों के बीच आ कर रहने लगे। उन्हें अपने मन को समझाना पड़ा कि योग द्वारा सिद्धि प्राप्त करना उनके प्रारब्ध में नहीं है।

इसके बाद उनका पूरा जीवन ही बदल गया। उनका पुस्तक–प्रेम जो बाबा गोपालदास ने उनके मन में भर दिया था, फिर से जाग उठा। पांवटा में रहते उन्हें गुरुकुल कांगड़ी के प्रो० विनायक गणेश साठे रचित "विकासवाद" ग्रंथ पढ़ने को मिला। साठे जी की यह पुस्तक उनके लिए दिशा–परिवर्तन का निमित्त बनी। उनकी विज्ञान के प्रति धारणा ही

बदल गई जिसने उन्हें रसायनशास्त्र, भौतिकी, चिकित्सा शास्त्र आदि विषयों की पुस्तकों का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

सौभाग्य से उसी समय सन् 1913 में प्रयाग में ''विज्ञान परिषद'' की स्थापना हुई। हरिशरण उसके सदस्य बन गए और 'विज्ञान' का प्रकाशन आंरभ होने पर वे उसके नियमित पाठक हो गए। वे ''विज्ञान'' का नियमपूर्वक पाठ करते थे परन्तु अंग्रेजी का उनका ज्ञान बहुत सीमित था। वे उसके माध्यम से विज्ञान की विभिन्न उपलब्धियों की जानकारी हासिल करने की अपनी साध पूरी नहीं कर पा रहे थे पर '' विज्ञान'' ने इस बारे में उनकी बहुत मदद की। अब वे हिंदी में उपलब्ध विज्ञान की हर पुस्तक का अध्ययन करते। उनके इस पुस्तक–प्रेम ने बाद में आयुर्वेद विषय पर कितने ही ग्रंथों, जिनमें से अनेक पाण्डुलिपियों के रूप में ही उपलब्ध हैं के अध्ययन में उनकी बहुत मदद की।

अभी तक बाबा हरिशरणानंद के तन पर पीले कपड़े थे। अब उनको बदल कर उन्होंने गेरुए वस्त्र पहनने शुरू कर दिए और अपने नाम के पीछे "आनन्द" और जोड़ दिया। वे हरिशरण से हरिशरणानंद बन गए।

योग के प्रति लगन समाप्त हो गई थी पर आयुर्वेद के प्रति रुचि उससे भी अधिक वेग से प्रकट हो गई। आयुर्वेद के बारे में अधिकाधिक जानकारियां प्राप्त करने में वे जी–जान से जुट गए। अगले चार वर्षों में उन्होंने न केवल आयुर्वेद परीक्षाएँ पास कीं वरन् वनौषधियों की खोज में लाहोल–स्पीति से लेकर शिमला, जम्मू–कश्मीर, अमरनाथ, पेशावर तक सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र खोज डाला। अपनी इस घुमक्कड़ी के दौरान उन्होंने अनेक अनुभवी वैद्यों से विचार–विमर्श किया। साथ ही उन्हें अनेक दुर्लभ आयुर्वेदिक ग्रंथों के अध्ययन के अवसर मिले।

अपनी इस घुमक्कड़ी के दौरान रावलपिंडी में उनकी भेंट फिर से वैष्णवदास से हो गई। उनके साथ ही वे पेशावर गए और कबायली क्षेत्रों में घूमे–फिरे। अंत में दोनों दोस्त अमृतसर आकर टिक गए। अब तक स्वामी हरिशरणानंद को वैद्यक का काफी अनुभव हो गया था। पर चिकित्सा को वे अपनी रोजी का साधन नहीं बनाना चाहते थे। उसको तो वे लोगों की सेवा का ही साधन मानते थे। उनका उद्देश्य तो बड़े पैमाने पर आयुर्वेदिक औषधियों का उत्पादन करना था।

वैसे अब हरिशरणानंद 30 वर्ष के हो चुके थे जिसका आधा भाग उन्होंने घूमते–फिरते ही बिताया था। घूमने–फिरने से उनका मन भर चुका था। इसलिये भी वे एक जगह स्थायी रूप से रहना चाहते थे। यद्यपि वैष्णवदास को आयुर्वेद में विशेष रुचि नहीं थी पर वे भी अपना शेष जीवन, हरिशरणानन्द के साथ ही, एक स्थान पर रह कर गुजारना चाहते थे। स्थायी रूप से निवास करने पर और आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण हेतु फार्मेसी स्थापित करने के लिए अमृतसर से बेहतर जगह और कौन सी हो सकती थी। दोनों स्वामी अपने सपनों को साकार करने के लिए योजना बना रहे थे पर प्रारब्ध को तो हरिशरणानंद के जीवन में एक और मोड़ देना था।

उस समय प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने भारत के धन–जन को स्वाहा कर दिया था। उस दौरान अनेक ऐसे कानून बनाये थे जो शांति के समय लागू नहीं किए जा सकते थे। इनके फलस्वरूप जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति अत्यधिक आक्रोश था। उसको भड़कने के लिए उत्प्रेरित किया रोलेट कानून ने। गाँधी जी ने उस कानून के विरुद्ध देश–व्यापी हड़ताल का आह्वान किया। क्योंकि पंजाब में लोग हर बात में अन्य देशवासियों से आगे रहना चाहते थे इसलिए 6 अप्रैल, 1919 को अमृतसर में भी जोरदार हड़ताल तथा रोलेट कानून विरोधी सभाएं हुई। उनसे अंग्रेज घबरा गए। फलस्वरूप 11 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के बड़े नेताओं को पकड़ लिया गया। इसके विरुद्ध 12 अप्रैल को सरकार के सख्ती से मना कर देने पर भी बहुत बड़ा जुलूस, जिलाधीश के घर को घेरने के उद्देश्य से, निकला। हरिशरणानन्द ने अखबारों में इस जुलूस के बारे में पढ़ लिया था। वे और वैष्णवदास भी, देश प्रेम की सुप्त भावना के वशीभूत, जुलूस में शामिल हो गए। जुलूस को पीछे धकेलने की कोशिश में एक अंग्रेज सैनिक के घोड़े का धक्का वैष्णवदास को लग गया। उसका बदला लेने के लिए उन्होंने जो पथराव किया उसका परिणाम उस गोली के रूप में हुआ जो वैष्णवदास की कोख में लगी। हरिशरणानन्द पीछे थे। इसीलिए बच गए। उन्होंने अपने मित्र को गोली खाते गिरते देखा। पर उस समय हो रहे गोलीकांड और भगदड़ के कारण वे उन्हें उठा भी नहीं सके। बाद में, भीड़ छँट जाने पर उन्हें उठा कर अपने साथ धर्मशाला ले आए। बड़ी मुश्किल से डाक्टर को दिखाया। गोली शरीर में ही रह गई थी

इसलिए आपरेशन जरूरी था। पर उस समय आपरेशन करे कौन? अगले दिन तो जलियाँवाले बाग का भयावह हत्याकांड हो गया। और उसी दिन वैष्णवदास सदा के लिए हरिशरणानंद से बिछुड़ गए। वैष्णवदास तो शहीद हो गए पर हरिशरणानंद को पुलिस से अपनी जान बचानी मुश्किल हो गई। उन्हें अमृतसर छोड़ना पड़ा, गांवों में छिप कर शरण लेनी पड़ी और अंत में एक बार फिर पहाड़ों में घुमक्कड़ी के लिए निकल जाना पड़ा। इन सब घटनाओं ने उनके मन में मौजूद सुप्त देश–प्रेम को जगा दिया। आर्य जाति का होने का उन्हें अभिमान था। अब उस आर्य जाति को गुलामों से भी बदतर जीवन बिताते देखकर वे अत्यंत क्षुब्ध हो उठे। वह समझने लगे कि महात्मा गाँधी स्वराज्य की माँग क्यों कर रहे हैं।

उन्होंने न केवल 1919 की सर्दियों में अमृतसर में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में सक्रिय भाग लिया वरन् वे राजनीतिक पुस्तकों को, विशेष रूप से जब्त की गई पुस्तकों को, चाव से पढ़ने लगे। क्रान्तिकारियों से उनकी पूरी सहानुभूति हो गई। पर फार्मेसी स्थापित करने के उद्देश्य ने उन्हें सक्रिय क्रांतिकारी बनने से रोक लिया।

यद्यपि वे क्रांतिकारी नहीं बन सके पर कांग्रेसी तो बन ही सकते थे। उन्होंने लायलपुर के निकट चकझूमरा में कड़े विरोध के बाद कांग्रेस कमेटी बनाई, सभाएं कीं, जुलूस निकाले और देश–प्रेम के गीत लिखे। इस दौरान उन्हें भाषण देने पड़े और जल्दी ही वे अच्छे वक्ता बन गए। 1922 में विदेशी कपड़ों का बायकाट आरम्भ होने पर उन्होंने उसमें भी सक्रिय भाग लिया। फलस्वरूप वे गिरफ्तार हुए और 15 दिन तक हवालात में रहे। आखिर स्वामी जी ने स्वराज्य की खातिर जेल की रोटियों का भी आनंद ले लिया।

असहयोग आंदोलन के ठंडा पड़ जाने के बाद, स्वामी हरिशरणानन्द का कांग्रेस से सक्रिय सहयोग भी मंद पड़ने लगा। अब उनका ध्यान फार्मेसी स्थापित करके अपने स्वप्न को साकार करने की ओर पुनः गया। इस विचार से वे फिर अमृतसर आ गए और उन्होंने वैद्यक का काम शुरू कर दिया। पर वैद्य बने रहना उनका ध्येय नहीं था। इसलिए थोड़ा सा पैसा हाथ में आते ही "स्वामी फार्मेसी" की स्थापना कर दी।

अब आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के बारे में उन्हें इतनी जानकारी हो गई थी कि आयुर्वेद के अनेक सिद्धांत उन्हें निरर्थक मालूम होने लगे। वे इन सिद्धांतों को विज्ञान की कसौटी पर कसते और खरे न उतरने पर वैद्यों से उनको त्याग देने की बात करते। वास्तव में

वे आयुर्वेद को ठोस वैज्ञानिक आधार प्रदान करना चाहते थे। पर लकीर के फकीर होने के कारण वैद्य उन्हें छोड़ने को तैयार न थे। इस सिलसिले में उन्होंने अनेक आर्यसमाजियों से भी वाद–विवाद किए, "आसव विज्ञान" और "क्षारविज्ञान" ग्रंथों की रचना की और "धनवंतरी" तथा अन्य अनेक पत्रिकाओं में लेख लिखे और "आयुर्वेद विज्ञान" नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया। इन सबसे वैद्य बहुत भड़के। उन्होंने जमकर विरोध किया पर स्वामी जी अपने तर्कसम्मत मत से डिगने वाले व्यक्ति नहीं थे।

आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत उनकी कसौटी पर खरा नहीं उतरता था। वे इसे आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति से एकदम निकाल देने के पक्ष में थे। इस बारे में स्वामी जी का अनेक वैद्यों से वाद–विवाद हुआ। स्वामी जी ने अपने पक्ष को मजबूत करने के बारे में न केवल शरीरक्रिया शास्त्र और शरीररचना शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया वरन् लखनऊ के मेडिकल कालेज में मुर्दों की चीर–फाड़ का भी अवलोकन किया। अप्रैल, 1932 से उन्होंने "आयुर्वेद विज्ञान" में त्रिदोष सिद्धांत के विरोध में अनेक लेख प्रकाशित किए जिन्हें बाद में "त्रिदोष मीमांसा" नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया। उसके बाद जो हलचल मची उससे ऐसा तूफान उठ खड़ा हुआ जिसकी कोई सीमा न थी। अंत में, वर्ष 1935 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पं० मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में त्रिदोष सिद्धान्त के विरोधियों और समर्थकों के बीच एक वाद–विवाद आयोजित किया गया। 2 से 8 नवम्बर, 1935 तक चलते रहे वैद्यों और दार्शनिक पंडितों के इस वाद–विवाद में स्वामी हरिशरणानन्द विजयी हुए। बाद में 1948 में उन्होंने मीमांसा का दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जिसमें लिखा "अथर्ववेद की रचना जिस तथाकथित ब्रह्मा ने की थी उसका जन्म तो सृष्टि की रचना के बहुत बाद में हुआ। वेद की दिव्य चिकित्सा और आयुर्वेद के बीच कोई संबंध नहीं है।"

स्वामी जी प्रत्यक्ष और प्रयोग में विश्वास रखते थे। उन्होंने आयुर्वेद को अधुनातन बनाने के उद्देश्य से अनेक प्रयोग किए। वे लकड़ी और कंडों की जगह पत्थर के कोयले का उपयोग करने लगे। अंत में उन्होंने मशीनों से आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण आरंभ कर दिया।

इन सब व्यस्तताओं के बावजूद फार्मेसी की स्थापना और विकास कार्य चलता रहा और देश को स्वतंत्र कराने के प्रयास भी जारी रहे। साथ ही विज्ञान के प्रति उनकी रुचि और आस्था में भी वृद्धि होती रही। पहले तीन और वैद्यों के साथ मिलकर फार्मेसी स्थापित की। परंतु बहुत जल्दी ही यह प्रयास असफल हो गया। फिर 1924 में स्वामी जी ने अकेले ही इस विषय में प्रयास किया जिसमें पूर्ण सफलता मिली। ऐसा करने में उन्हें उस रकम से बहुत मदद मिली जो उन्होंने वैद्यक की बदौलत जमा कर ली थी। यद्यपि वे रोगी को देखने की और इलाज करने की फीस नहीं लेते थे पर कुछ धनी व्यक्ति उन्हें समय–समय पर दान देते रहते थे। धीरे–धीरे दवाइयाँ बनाने का काम बढ़ने लगा। स्वामी जी अपनी दवाइयों के निर्माण के लिए आधुनिक विधियों का उपयोग करने लगे थे जिनसे उत्पादन तेजी से बढ़ा। साथ ही दवाइयाँ भी मानक स्तर की बनने लगीं।

विज्ञान और व्यवसाय की आधुनिक तकनीकों में विश्वास रखने के बावजूद वे विज्ञापनों द्वारा प्रचार करनें में विश्वास नहीं करते थे। वे स्वयं विभिन्न स्थानों का दौरा करते, लोगों से सम्पर्क करते और आर्डर लेते थे।

वे अपनी औषधियों का समय–समय पर प्रयोगशालाओं में रासायनिक विश्लेषण भी कराते रहते थे। इसलिए उनकी औषधियों के गुण सदैव एकसमान बने रहते थे। बाद में 1934 में, उन्होंने तेजी से प्रगति करती हुई अपनी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी को विज्ञान परिषद्, प्रयाग को सौंप देने की पेशकश की थी। यद्यपि विज्ञान परिषद् इस पेशकश का लाभ नहीं उठा सकी पर यह स्वामी की विज्ञान के प्रति गहरी आस्था को दर्शाता है। वैसे "आयुर्वेद विज्ञान" को पहले ही "विज्ञान" में मिला दिया था।

अपनी अनेक व्यस्तताओं के बावजूद स्वामी हरिशरणानंद स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लेते रहते थे। वे कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी के सदस्य थे और 1931 में गिरफ्तार हुए थे। उन्हें पौने दो वर्ष जेल में रहना पड़ा, जेल में वे बीमार हो गए। उन्हें जबरदस्ती कुनैन देने के प्रयत्न किए गए। निश्चय ही स्वामी जी इसका विरोध करते। जेल अधिकारियों के साथ जबरदस्त वाद–विवाद के बाद अंत

में उनकी विजय हुई। उन्हें न केवल अपनी दवाइयाँ लेने की अनुमति मिल गई वरन् उन्हें पर्याप्त मात्रा में संतुलित भोजन भी मिलने लगा।

जेल में भी स्वामी जी ने अपना अध्ययन जारी रखा। वहाँ उन्होंने रसायन शास्त्र, विशेष रूप से कार्बनिक रसायन का काफी अध्ययन किया। साथ ही वे "आयुर्वेद विज्ञान" का सम्पादन भी करते रहे। सितम्बर, 1932 में जेल से बाहर आने पर उन्होंने सिर्फ अपनी पगड़ी ही भगवा रखी, बाकी सब कपड़े बदल दिए।

लगभग 52 वर्ष की उम्र होने तक हरिशरणानंद पूरी तरह सन्यासी रहे। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि योग और आयुर्वेद की लगन ने तथा बाद में फार्मेसी को सुदृढ़ बनाने की धुन ने उन्हें अपना घर बसाने का अवसर ही नहीं दिया। पर 52 वर्ष की उम्र हो जाने पर, जब उनका लखपति बनने का स्वप्न भी पूरा हो गया, उनका ध्यान गृहस्थ आश्रम की ओर गयां। खूब खिल्ली उड़ाए जाने के बाबजूद उन्होंने अप्रैल 1941 में बाल–विधवा और अपने से लगभग 30 वर्ष छोटी, जानकी देवी से विवाह कर लिया। परंतु इस "बुढ़ापे में शादी करने के बाबजूद उनका गृहस्थ जीवन सुखी और सफल रहा। वैसे विवाह के बाद भी वे नई औषधियों का स्वयं पर प्रयोग करते रहे थे।"

टिप्पणियाँ

1 पत्रिका "आयुर्वेद विज्ञान" का "विज्ञान" के साथ "संगम" कराने के बाद वे "विज्ञान" में प्रकाशन हेतु प्राप्त होने वाले रोग, चिकित्सा, औषधियां आदि विषयों की सामग्री का संपादन करने लगे थे। साथ ही वे स्वयं भी इन विषयों पर लेख लिखते रहते थे। (सूची पृष्ठ 78 पर)

2 वैद्यों को विज्ञान की आवश्यकता विज्ञान पदार्थ विज्ञान 1934, सं०, भाग 39 व्याधि संकरता विज्ञान जून 1935
विज्ञान में जुलाई 1934 से पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी का त्रैमासिक सूची पत्र लगातार छपता रहा।

अनुभूत विज्ञान	अगस्त	1934
परीक्षित प्रयोग	"	
आयुर्वेद विज्ञान	सितम्बर	1934

"त्रिदोष मीमांसा पर किये गये आक्षेपों का उत्तर"		
व्याधियों का मूल कारण	जनवरी	1935
ईश्वर और ईथर	जून	1935
व्याधि संकरता	जून	1935
कृत्रिम वस्तु की उत्पत्ति और परीक्षा	जुलाई	1935
बाजार की ठगी भंडाफोड	अगस्त	1935
ईश्वर और ईश्वर	जून	

3 प्रेस

1940 में बम्बई जाकर स्वामी जी छापेखाने की चार मशीनें और प्रेस का सामान साथ ले आये और पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी का अपना 1941 प्रेस भी स्थापित हो गया। महायुद्ध छिड़ा हुआ था। "विज्ञान" को कागज का कोटा अक्टूबर 1941 में बन्द हो गया तो स्वामी जी ने "विज्ञान" को अमृतसर से प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और पूरे साल भर वहीं से निकाला। जब प्रयाग में कागज मिलने लगा तो "विज्ञान" फिर प्रयाग से छपने लगा। 1941-1942 में स्वामी जी ने परिषद् को 700 रुपये की सहायता की।

अध्ययन और लेखन

इस बीच उनका अध्ययन आर लेखन चलता रहा। ज्वर मीमांसा (1940) के अतिरिक्त कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान (1941) नामक बृहद ग्रन्थ की भूमिका सौ पृष्ठ की है जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन रसायन शास्त्र का इतिहास दिया हुआ है।

4 राहुल सांकृत्यायन से परिचय

राहुल जी ने अपनी पुस्तक "जिनका में कृतज्ञ हूँ" के 55वें अध्याय में लिखा है "हरिशरणानन्द मेरी ही तरह घुमक्कड़ थे... मुझसे तीन चार साल बड़े.... मैं राजनीति में उग्र हूँ। वह भी साम्यवाद और समाजवाद को मानने वाले। मेरा साक्षात् परिचय 1950 की बरसात में हुआ जब उन्होंने दिल्ली और फैजाबाद में अपने नये बनवाये मकान में आयुर्वेद अनुसन्धानशाला स्थापित करने की बात कही तो मैंने सीधा विरोध किया।"

5 इतना सब करने पर भी क्या उनका कवि हृदय संतुष्ट हो पाया? वे कविता और गीत भी लिखते थे। इनके विषय देश प्रेम से लेकर विशुद्ध विज्ञान तक थे।

अंत मैं स्वामी हरिशरणानंद द्वारा रचित एक कविता का उल्लेख करना चाहूँगा। यह कविता "विज्ञान" (नवंबर, 1941 अंक) में प्रकाशित हुई थी। कविता का शीर्षक था "विज्ञान महिमा"।

तुम्हारी शक्ति है विज्ञान।

विधिना की विधि मनुज सुगम कर जड़–चेतन सम्भ्रान्त।
बिन चेतन के चंचल कल कल रव करें महान।।
मोटर रेलें पोत डुबकनीं बिन वाहन के यान।
थल में जल में गगन गगन में गति दी एक समान।।
गुप्त प्रगट का भेद मिटाया दृश्य अदृश्य जहान।
सरल रूप में सन्मुख लाकर रख दीन्हा भगवान।
वस्तु अग्राह्य रही नहिं कोई अणु परमाणूवान।
लोक अलोकित सब कर दीन्हें मन नहिं रहा गुमान।।

6 उन्होंने कुल मिलाकर 13 ग्रंथों की रचना की जिनमें आसव विज्ञान, मंथर ज्वर, भस्म विज्ञान, त्रिदोष विज्ञान, औषध गुणधर्म, मानव जीवन का विकास आदि शामिल हैं।

स्वामी हरिशरणानंद हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। वे रघुबीर की शब्दावली को मानते थे और रासायनिक सूत्रों का भी हिन्दीकरण चाहते थे।

वे ईश्वर को ही ईश्वर कहते थे। इसे लेकर श्री रामदास गौड़ से उनका मतभेद भी हो गया था।

"वैद्यों की आवश्यकता" निबन्ध में जुलाई (934) स्वामी हरिशरणानन्द ने वैद्यों को आधुनिक बनने की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए लिखा है—

"इस समय हम देखते हैं कि विदेश के चिकित्सक जो आज से दो–तीन शताब्दी पूर्व कुछ नहीं जानते थे – वे चिकित्सा के प्रत्येक विभाग में उन्नति करते चले जा रहे हैं। और जहाँ देखो मानव–जीवन को सुखी बनाने के अनेकों साधन निकलते चले जा रहे हैं। पर हम और हमारी चिकित्सापद्धति उसी जगह पर ठहरी है जहाँ पर आज से

दो हजार वर्ष पूर्व थी। हमें दूसरी चिकित्सा पद्धतियों की निन्दा करनी तो खूब आती है पर अपने को उन जैसी समुचित दशा में लाना नहीं आता।"

"दूसरे के सुख–वैभव ऐश्वर्य को देखकर तो जलते हैं, पर स्वयं उन जैसा सुख, ऐश्वर्य प्राप्ति के मार्ग की तलाश नहीं करते। हम कहते हैं कि हमारे देश में डाक्टरों की पूछ हर जगह होती है, हमें कोई पूछता तक नहीं। इसमें दोष देश का नहीं, देश की जनता का नहीं, हमारा है। हम अपने को इस योग्य नहीं बनाते कि हमें आकर कोई पूछे। हमारा ज्ञान–विज्ञान केवल डींगे मारने तक रह गया है, करके दिखलाने का नहीं। आचार्य आत्रेय जी का कथन है कि —

विद्यावितर्को विज्ञातं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।
यस्यैते षट् गुणास्तस्य न असाध्याति वर्त्तते।।

—चरक

"जिसके पास विद्या, कल्पनाशक्ति, कृतपरिचय ज्ञान, स्मृति और काम में तत्परता तथा क्रियाकुशलता यह छः गुणविद्यमान हैं उसके लिये कोई भी काम असाध्य नहीं।"

"जब तक हम प्राचीन शैली को छोड़कर नयी विचार शैली के अनुसार कृत परिचय ज्ञान को बढ़ाने की ओर कदम नहीं उठाते, कदापि उन्नति नहीं कर सकते। कोई समय था जबकि संसार हमारा अनुकरण कर रहा था, हमारे पीछे लगकर चल रहा था। अब समय है कि हमें उनका अनुकरण करना चाहिए, हमें उन जैसी ही उन्नति के काम करने चाहिए। जापान जिसकी शक्ति आज एक शताब्दी पूर्व कुछ नहीं थी, जिसको एक शताब्दी पूर्व कोई जानता न था वह जापान प्रगतिशील संसार के पीछे ही नहीं चला, उन विज्ञान महारथियों का उसने अनुकरण ही नहीं किया, बल्कि उसने इस मार्ग पर इतनी तेजी से अपना अधिकार कर लिया कि आज समस्त अग्रणी देश उसके पीछे लग लिए हैं। उसकी इस तेज चाल ने अनुकरण के प्रवाह को उलट दिया है।"

पुस्तक-सूची

आसव विज्ञान, 1926, पंजाब आयुर्वेद फार्मेसी, अमृतसर (तीन संस्करण)"

ज्वर मीमांसा, 1940
भस्म विज्ञान (2 भाग) आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, दिल्ली
कूपीपक्व मीमांसा (1932) दूसरा संस्करण 1948
रुद्रयामल तन्त्र
मंथर ज्वर विज्ञान (दो संस्करण)
औषध गुणधर्म विज्ञान (तीन संस्करण)
क्षार निर्माण विज्ञान
विश्व विज्ञान 1958, आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथमाला कार्यालय, अमृतसर
व्याधिमूल विज्ञान 1960
भावी प्रकाशन (1958) में घोषितः मानव जीवन विकास एवम् पाखण्ड विज्ञान

संदर्भ

पुस्तकें

1 घुमक्कड़ स्वामी : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल 1958
2 जिनका में कृतज्ञ हूँ" " 1956

लेख

लोकप्रिय विज्ञानसेवी स्वामी हरिशरणानन्द, विज्ञान, नवम्बर 1981 डॉ० शिवगोपाल मिश्र

मानव विकास की पहेली, विज्ञान, जुलाई 1960 – हरिशरणानन्द

पैतृक संस्कार का ज्ञान, विज्ञान, सितम्बर 1960 – हरिशरणानन्द

प्रकृति तथा पदार्थ का सम्बन्ध, विज्ञान, अक्टूबर 1962 – हरिशरणानन्द

हिन्दी में विज्ञान लेखन के सशक्त हस्ताक्षर : डॉ० आत्माराम

डॉ० रमेश दत्त शर्मा*

आत्माराम जी किसी अंग्रेजी स्कूल में नहीं पढ़े न विलायत पढ़ने गये। 12 अक्टूबर सन् 1908 में दिल्ली से कोई 100 मील दूर जिला बिजनौर के पिलाना गाँव में जन्म हुआ। पले धूल–मिट्टी में और तपे गरीबी में। मुंशियों का घराना। बाबा मुंशी। पिता जी की कपड़े की दुकान नहीं चली, तो पटवारी हो गये। पर लाला भगवानदास को पढ़ने–पढ़ाने का इतना शौक था कि कर्जा लेकर भी अपने बड़े लड़के आत्माराम को बनारस पढ़ने भेजा।

साइन्स मास्टरी आसानी से मिल जाती थी, तो सांइस ले ली। पर अंग्रेजी में गिटपिट वाली केमिस्ट्री–फिजिक्स तो पल्ले ही नहीं पड़ी। केमिस्ट्री के अध्यापक 'ग्राम ऑफ वाटर' कहते, तो सोचते रहे कि 'पानी के चने' क्या होते हैं? फिर एक दिन प्रैक्टीकल में तौलकर पानी डाला, तब पता चला कि 'ग्राम' तौलने की इकाई है। नतीजा यह हुआ कि गणित में प्रथम श्रेणी और फिजिक्स–केमिस्ट्री में फेल। विषय बदलने पहुँचे तो केमिस्ट्री के प्रोफेसर ने बुलाया। वे समझ गये कि लड़का अंग्रेजी का मारा हुआ है। उन्होंने फूलदेव सहाय वर्मा को बुलाकर कहा कि आत्माराम को तुम पढ़ाओ। हिन्दी में रसायन विज्ञान के धुरन्धर लेखक वर्मा जी ने आत्माराम को ऐसा पढ़ाया कि इण्टर में फर्स्ट आये और रसायन में विशेष योग्यता ली। डी.ए.वी. कालेज कानपुर से बी. एस.सी. परीक्षा 1929 में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके प्रयाग विश्वविद्यालय में एम.एस.सी. की परीक्षा के निमित्त प्रविष्ट हुये। 1931 में एम.एस.सी. परीक्षा पास की। तत्पश्चात् प्रो० नीलरत्न धर जी के निर्देशन मे डी. एस.सी. उपाधि हेतु अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया। 1937 में डी.एस.सी. की उपाधि प्राप्त हुयी।

---

*कृषि सूचना तथा प्रकाशन निदेशालय, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली–12

इलाहाबाद में रहते हुए शोध कार्य करते समय हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इसमें डॉ० सत्यप्रकाश की प्रेरणा मुख्य थी। फलतः वे विज्ञान में लेख लिखने लगे। इसी लेखन के बल पर इन्हें 3 वर्ष तक "इम्प्रेस विक्टोरिया रीडरशिप" छात्रवृति भी मिली। पारिवारिक आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण शोध कार्य समाप्त करने के तुरन्त बाद उन्होंने अजमेर के राजकीय कॉलेज में 200 रुपये मासिक वेतन पर अस्थायी प्राध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। कुछ ही मास बाद वे बी. आर. कॉलेज आगरा में शिक्षक पद पर चले आये। किन्तु नौकरी ज्यादा दिन न चली। फलतः बेकार हो जाने के कारण गाँव चले आये और पास ही धर्मनगरी चीनी मिल में अनपेड अपरेंटिस के रूप में चीनी के रवे बनाने में दक्षता प्राप्त करते रहे। यहाँ रहकर अपने रसायन विज्ञान के आधार पर चुकलाई के रस से गन्ने के रस से अच्छे रवे बनाने की विधि निकाली।

1935 में रिसर्च ब्यूरो के असिस्टेंट पद के लिये इंटरव्यू में गये। 1936-52 तक वे अव्यक्त रूप में कार्य करते रहे। किन्तु 1952 में उन्हें 'ग्लास एण्ड सेरेमिक रिसर्च इंस्टीट्यूट का निदेशक नियुक्त किया गया तो लोगों को उनकी प्रतिभा का स्मरण हो आया। 1952-66 तक वे उसी पद पर रहे और अनेक महत्वपूर्ण खोजें कीं। शुद्ध रसायन विज्ञान से प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उनका प्रवेश और उसमें भी महान सफलता सबों को आश्चर्यचकित करती रही। डॉ० मेघनाद साहा जो इनके गुरु भी थे, इनके परम प्रशंसक थे। उनके कार्य से प्रसन्न होकर सरकार ने उन्हें दिल्ली स्थित "कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च" का महानिदेशक नियुक्त किया। वे इस पद पर 1971 तक रहे आये और यहीं से अवकाश ग्रहण कर लिया। 1952-71 के दो दशाब्दों की अवधि उनके सम्मान ही सम्मान प्राप्त करने की अवधि थी। 1959 में उन्हें 'पद्मश्री' से विभूषित किया गया। 1968 में वे साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष बने, 1969-70 में वे इण्डियन नेशनल सांइस एकेडमी के भी अध्यक्ष रहे। इसके अतिरिक्त देश तथा विदेश की अनेक प्रोद्यौगिक संस्थाओं ने आपको सम्मानित किया। एक बार आपको मोरार जी सरकार स्थापित होने पर 1979 में डिपार्टमेंट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नॉलाजी का अध्यक्ष बनाया गया किन्तु मोरारजी सरकार गिरते ही डॉ० आत्माराम इस पद से विलग हो गये।

हिन्दी के प्रति झुकाव

आत्माराम जी की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा उर्दू में हुई। काशी विश्वविद्यालय से इन्होंने इण्टरमीडिएट परीक्षा के लिये विज्ञान का विषय चुना। स्कूल में कभी विज्ञान पढ़ा नहीं था, इसलिये पहले तो ये घबरा उठे। प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ने उन्हें हिन्दी में रसायन शास्त्र की पाठ्य पुस्तकें दीं। इनकी रुचि बढ़ी। प्रयाग आते ही "विज्ञान" पत्रिका में ये लेख लिखने लगे। इनका प्रथम लेख "प्रकाश संश्लेषण" वर्ष 1931 में 'विज्ञान' में प्रकाशित हुआ था। 1933 तक वे अबाध रूप से लिखते रहे। वे पहले ही रसायनज्ञों के जीवन–वृत्तों पर हिन्दी में एक पुस्तक लिख चुके थे जो विज्ञान परिषद् से ही छपी थी। इन्होंने 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से बहुत सेवा की। 5-6 अगस्त 1978 को जब वे एक गोष्ठी में प्रयाग आये थे, तो विज्ञान परिषद् भवन कि लिए 5000 रु० अपनी ओर से दान दे गये थे।

जब आत्माराम "कौंसिल आफ साइण्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च" के महानिदेशक थे तो उन्होंने अपने हिन्दी अनुराग के कारण 'वेल्थ आफ इण्डिया' नामक विश्वकोश को हिन्दी में प्रकाशित करने की योजना बनाई। इसके मुख्य डॉ० सत्यप्रकाश को इसका प्रधान सम्पादक बनाया। यह काम अब भी चल रहा है।

महान वैज्ञानिक होते हुए भी हिन्दी के प्रति उनका प्रेम सर्वविदित था। वे बच्चों के लिए हिन्दी में एक पत्रिका "बाल विज्ञान" निकालने की योजना बना रहे थे। बच्चों के लिये सार्थक और उपयोगी वैज्ञानिक साहित्य का सर्जन उनके जीवन का एक सपना था। बहुत कम लोग जानते हैं कि अपने व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर "पराग" पत्रिका के बाल पाठकों के लिये उन्होंने एक कहानी भी भेजी थी जो पत्रिका के सितम्बर 1977 अंक मे छपी थी। कहानी का शीर्षक था "हिम्मत सिंह की हिम्मत"।

डॉ० आत्माराम के भौतिक रसायन, उद्योग और सेरेमिक के क्षेत्र में लगभग 100 वैज्ञानिक और तकनीकी शोधपत्र प्रकाशित हुये। उनके

अनुसंधानों के दो दर्जनों से भी अधिक पेटेण्ट कराये गये, जिनमें से अधिकांशतः काँच और सेरेमिक में हैं। अधिकांश पेटेण्टों का व्यवहारिक उपयोग किया जा रहा है।

डॉ० आत्माराम जी में लिखने और भाषण देने दोनों की ही अच्छी क्षमता थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अपने अन्वेषणकाल में खोज के कार्य में लगे विद्यार्थियों ने एक छोटी सी 'विवेचना समिति' बनाई थी जो प्रत्येक सप्ताह में एक गोष्ठी आयोजित करती थी जिसमें अपने अपने क्रम से विद्यार्थी अपने अन्वेषण के सम्बन्ध में समस्याओं को और प्रयोगों के निष्कर्षों को प्रस्तुत कर विवेचना करते थे।

जब उन्हें "राष्ट्रीय विज्ञान तथा प्रोद्यौगिकी समिति" का अध्यक्ष बनाया गया, तो उन्होंने एक बार फ़िर भारतीय विज्ञान को जमीन से जोड़ने के लिये ठोस कदम उठाने चाहे। श्रीमती इन्दिरा गांधी से एक बार वे तब मिले थे, जब 'भारतीय विज्ञान संवर्धन संस्था के लियें हिन्द पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान भारती माला' की पाँच पुस्तकों का पहला सेट प्रधानमंत्री जी को उनके निवास स्थान पर भेंट किया गया था। इस सेट में स्वयं डॉ० आत्माराम द्वारा बच्चों के लिये लिखी गई किताब "ओजोन की छतरी" भी शामिल थी। सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक पद से अवकाश प्राप्त करने के कुछ समय पहले वे श्रीमती इंदिरा गाँधी से मिले थे – "भारत की सम्पदा" ग्रन्थमाला का प्रथम खण्ड भेंट करने। कुछ देर तक श्रीमती गांधी ग्रन्थ के पन्ने पलटती रहीं और बीच–बीच में वैज्ञानिक शब्दावली के हिन्दीकरण के बारे में पूछताछ करती रहीं। फिर प्रसन्न मुद्रा में बोलीं–"आपने तो काफी जल्दी यह काम करा लिया। कुछ दिन पहले ही तो आप इसे शुरू कराने का जिक्र कर रहे थे। वैज्ञानिक ग्रन्थों को हिन्दी में प्रकाशित करने का कार्य इसी तरह तेजी से आगे बढ़ाना चाहिये, ताकि आम जनता तक विज्ञान पहुँच सके।"

मृत्यु से कुछ समय पहले तक भी डॉ० आत्माराम इसी काम को प्राथमिकता देते रहे। उनके ही प्रयासों से दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हर वर्ष "विज्ञान सम्मेलन" करके हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के विज्ञान–लेखकों का सम्मान करने का सिलसिला शुरू किया था। जब

उन्हें लगा कि सम्मेलन की दिलचस्पी कवि सम्मेलनों में ही अधिक है तो उन्होंने 'भारतीय विज्ञान संवर्धन संस्था' के द्वारा ठोस काम करने की बुनियाद डाली। वे चाहते थे कि हिन्दी में अच्छे स्तर की विज्ञान पत्रिका निकले। वे चाहते थे कि बच्चों को विज्ञान की शिक्षा कम से कम दसवीं कक्षा तक तो हिन्दी के माध्यम से ही दी जाय। वे चाहते थे कि हम इसके लिये विज्ञान–शब्दावली के पचड़े में न पड़ें और अंग्रेजी की शब्दावली को ज्यों का त्यों अपना कर पढ़ाना शुरू कर दें। जब उनसे कोई मिलता था तो उन्हें ये ही चिन्तायें सताती रहती थीं।

डॉ० आत्माराम जी जब डॉ० सत्यप्रकाश जी के सम्पर्क में आये तो 'विज्ञान' पत्रिका के लिये अनेक लेख लिखे।(सूची दी जा रही है) उनका हिन्दी प्रेम जन्मजात था। गांधी टोपी और धोती–कुर्ता पहनने वाले साधारण तरीके से रहने वाले व्यक्ति को देखकर कोई भी आदमी पहली बार यह नहीं सोचता था कि वह किसी वैज्ञानिक से मिल रहा है। आमतौर पर लोगों को यह भ्रम रहता था कि शायद वह किसी राजनेता अथवा बहुत ही साधारण व्यक्ति से मिल रहें हैं। डॉ० आत्माराम जी एक ऐसे व्यक्ति थे जो वैज्ञानिक होते हुये भी जन–मानस से सम्बन्ध बनाये हुये थे। भारत स्वतन्त्रता–आन्दोलन के समय उन्होंने विज्ञान के प्रति आस्था प्रकट करने का विचार किया था।

"विज्ञान" मासिक में प्रकाशित लेख (1931-1933)

क्र.सं.लेख	वर्ष	भाग	संख्या	पृष्ठ
1. प्रकाशसश्लेषण	1931	33	5	226
2. हेनरी मोआयसां	1931	33	6	278
3. किरण–चित्र–दर्शता के निर्माता	1931	34	1	16
4. रसायन का क्रान्तिकारी युग और औषजन का अन्वेषण	1931	34	3	97
5. परमाणुवाद और उसका विस्तार	1932	34	5	129
6. विद्युत् रसायन का विस्तार और सर हम्फ्री डेवी के अनुसन्धान	1932	34	5	129

7. परमाणु भार का निकालना	1932	34	5	144
8. थ्योडर विलियम रिचाईस	1932	34	6	190
9. जाँ बतिस्त स्टास	1932	4	6	194
10. गैसों का द्रवीकरण	1932	35	1	25
11. आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय और हिन्दू रसायन का इतिहास	1932	35	4	129
12. कार्बनिक रसायन का विस्तार	1932	35	6	187
13. कार्बनिक रसायन का विस्तारः भाग 2: कार्बनिकरसायन का सैद्धान्तिक आन्दोलन	1932	36	3	69
14. कार्बनिक रसायन का विस्तारः भाग–3	1933	36	4	109
15. कोलतार रंग रसायन का प्रारम्भ तथा हाफैमन और उसके शिष्यों के अनुदान	1932	36	5	147
16. जीवन और चिकित्सा में सूर्य प्रकाश की महत्ता	1933	36	6	170
17. आचार्य नील रत्न धर	1933	37	1	1
18. अवकाश–रसायन तथा कीटाणु सम्बन्धी विज्ञान तथा का आरम्भ पास्त्यूर के अनुसन्धान	1933	38	2	255

20. शिक्षण माध्यम पर विचार विमर्श : विज्ञान, फरवरी, 1953
21. ओद्योगीकरण की कुछ समस्यायें (भाषण) : विज्ञान, सितम्बर, 1957
22. भारत में वैज्ञानिक प्रगति (अध्यक्षीय भाषण) का सारांश : विज्ञान, फरवरी–मार्च 1968

23. डॉ० सत्यप्रकाश : दादा भी, पुरोहित भी : वैज्ञानिक परिव्राजक (विज्ञान परिषद)1976
24. जिनकी कृपा से मैं रसायन विज्ञान पढ़ सका : वैज्ञानिक ऋषि : (विज्ञान परिषद) 1976
25. विज्ञान, टेक्नॉलाजी तथा समाजः, विज्ञान, जून–जुलाई 1978

अन्य लेख

1. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान गोष्ठी के अवसर पर डॉ. आत्माराम का अध्यक्षीय भाषण
2. विज्ञान को आम आदमी से जोड़ने के लिये हिन्दी जरूरीः विज्ञान डाइजेस्ट प्रवेशांक 1975, 9–10
3. विज्ञान, प्रौद्योगिकी और विकास–कुछ पहलू: आविष्कार 1979,9(8) 212–217

जगपति चतुर्वेदी, जिनकी वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अप्रतिम भूमिका थी

शुकदेव प्रसाद*

स्वातंत्र्यपूर्व वैज्ञानिक लोकप्रियकरण की चर्चा करते समय विज्ञान के जिन लेखकों की हम सराहना करते हैं उनमें स्वर्गीय पं० जगपति चतुर्वेदी की अप्रतिम भूमिका रही है। उनकी चर्चा किए बिना हिन्दी के विज्ञान साहित्य और उसका इतिवृत्त अधूरा रह जायेगा। चतुर्वेदी जी की भूमिका अप्रतिम इस नाते नहीं है कि वे हिन्दी में विज्ञान के धुरंधर लेखक थे और प्रायः पांच दशकों तक अहर्निश लेखन कर्म करते हुए विज्ञान साहित्य का भण्डार भरते रहे और एक बड़ी रिक्तता की पूर्ति की तथा कई दर्जन मौलिक पुस्तकें लिख करके विज्ञान साहित्य की न केवल श्रीवृद्धि की, अपितु इस नाते उनकी अप्रतिम भूमिका रही है कि ये सारे प्रयास अकेले उस व्यक्ति ने किये जिसको विज्ञान की सुसम्बद्ध शिक्षा–दीक्षा नहीं मिली थी। मामूली शिक्षा–प्राप्त, विशारद और हिन्दी भूषण जैसी उपाधियाँ प्राप्त व्यक्ति ने अथक श्रम करके, उपयुक्त शब्दावली के लिए शब्द गढ़े। ऐसे निरन्तर विज्ञान लेखन में रत जगपति चतुर्वेदी की सराहना किए बगैर हम नहीं रह सकते। उनकी आलोचना भी होती रही पर उन्होंने मूक विज्ञानसेवी की भॉति इसे बड़ी सहजता से लिया और यह कहकर टालतें रहे कि मैं कोई विज्ञान शिक्षाप्राप्त व्यक्ति नहीं, वैज्ञानिक नहीं लेकिन अपने अध्यवसाय से तथा अपनी आजीविका अर्जित करने के निमित्त यह सब किया है और करता रहूँगा।

मेरा सौभाग्य है कि मुझे पं. जगपति चतुर्वेदी के सान्निध्य में रहने का अवसर मिला है और खूब मिला है। अनेक वर्षों तक मेरा उनका संपर्क रहा है। इन वर्षों में मैंने उनको बड़े निकट से देखा है। मैं उनके सान्निध्य में कैसे आया, इसकी भी एक कहानी है।

1972 में जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने आया तो मेरी रुझान विज्ञान लेखन में हो गया और निरंतर इस पथ पर बढ़ने लगा और थोड़ी सफलता मिलने पर नौकरी–चाकरी का विचार भी मन से

*निदेशक, विज्ञान वैचारिकी अकादमी, 34, एलनगंज, इलाहाबाद–211002

जाता रहा। 'विज्ञान' के पुराने अंकों के अवलोकन से तथा उस समय की अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं में उनके स्फुट लेखन से मैं उनके नाम से भलीभॉति परिचित हो चला था। कुछ किताबें भी देखी थीं। 1981 में अपनी संस्था 'विज्ञान वैचारिकी अकादमी' के तत्वावधान में पर्यावरण विषयक संगोष्ठी आयोजित करने का विचार मन में आया तो मैंने सोचा कि क्यों न इस अवसर पर हिन्दी विज्ञान के कुछेक प्रमुख हस्ताक्षरों का सम्मान किया जाय। इस निमित्त स्वामी (डॉ०) सत्य प्रकाश से परामर्श करके पाँच नाम चुने गए– पं. जगपति चतुर्वेदी, इलाहाबाद, डॉ० नंदलाल सिंह, वाराणसी, श्री विश्वंभर प्रसाद गुप्त, दिल्ली, श्री प्रेमानंद चंदोला, दिल्ली और डॉ. रमेश दत्त शर्मा, दिल्ली। इसी संदर्भ में उनकी सम्मति जानने और अनुमति लेने मैं उनके घर इलाहाबाद में ही कूचा गंगा प्रसाद राय, उनसे मिलने गया। पता पूछने पर किसी ने उनका घर बता दिया। घर के छोटे से चबूतरे पर 4–5 छोटे–छोटे बालक पेंसिल, स्लेट, किताबे, कापियाँ खोले अध्ययनरत थे और उन्हीं के पास ठिगने कद का एक आदमी खड़ा हुआ उन्हें निर्देश दे रहा था। एक साधारण कुर्ता, पाजामा और एक हाथ में सुंघनी की डिबिया और दूसरे हाथ से सुंघनी निकालने का उपक्रम करता हुआ जो आदमी पास में खड़ा था, उससे मैंने चतुर्वेदी जी का पता पूछा। कारण यह कि उसे मैंने पंडित जी के घर का कोई नौकर समझ रखा था। उस ठिगने व्यक्ति ने जब यह कहा कि बताइए क्या ये थे पंडित जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी के धुरंधर विज्ञान लेखक, स्वतंत्रता सेनानी और डॉ० राम मनोहर लोहिया के बालसखा और सहपाठी। मुझे बड़ा विस्मय हुआ कि नौकर से दिखने वाले इसी साधारण व्यक्ति ने विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में असाधारण कार्य किया है। बहरहाल, पंडित जी की औपचारिकता की सारी दीवारें ढह गयीं और वे मेरे आवास तक आने लगे। एक हाथ में झोला लटकाए कूचा गंगा प्रसाद राय से पैदल चलकर एलनगंज तक पैदल आते, घंटे–दो घंटे बैठते और फिर संध्या होते ही पैदल लौट जाते। प्रायः एक दशक तक मुझे उनका सान्निध्य मिलता रहा और इसी बीच न सिर्फ उनकी जीवनचर्या अपितु रचना संसार से भी भलीभाँति परिचित हो गया। उस मूक विज्ञान सेवी की सतत साधना पर मैं आज भी विस्मित और विमुग्ध हूँ। कदाचित् इसी नाते उस उपेक्षित विज्ञान साधक के जीवन की टूटी–फूटी शृंखला को जोड़ पा रहा हूँ।

जीवनवृत्त : चतुर्वेदी जी की जबानी

सन् 1904 में बलिया जिले के आस चौरा नामक गांव में जन्मे थे जगपति चतुर्वेदी। उनका जीवनवृत्त उन्हीं के शब्दों में ''पढ़ाई–लिखाई देर से आरंभ हुई और शीघ्र ही छूट भी गई। बाँसडीह से 1919 में हिन्दी मिडिल परीक्षा सर्वोच्च अंक के साथ उत्तीर्ण किया और आगे की पढ़ाई के लिए गाजीपुर सिटी हाई स्कूल में दाखिला लिया। गाजीपुर सिटी हाई स्कुल में ब्यूरेट में नाप करने या इसी तरह के कुछ प्रयोग कर रहा था कि महात्मा गांधी की आंधी आ गई (1919–20) और उसी में बह गया। सन् 1922 में बासंडीह (बलिया) में बंदी हुआ, साढ़े सात महीने बाद 18 नवंबर 1992 को प्रतापगढ़ जेल से मुक्त हुआ और इलाहाबाद आ गया।''

इलाहाबाद आ जाने पर संयोगवश पंडित जी विज्ञान लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। एक बार जब लेखनी चल पड़ी तो इसी को उन्होंने अपनी आजीविका बना ली और धुआँधार लेखन करने लगे, रॉयल्टी की कोई चिंता नहीं, जिसने जो दिया, ले लिया, न भी दिया तो कोई बात नहीं, किताब तो छाप दी, बस इसी से संतोष। कितनी किताबों का उन्होंने अनुवाद किया और कितनी किताबें ऐसी लिखीं जिन पर उनका नाम ही नहीं छापा फिर भी ऐसी संकट में, दुर्दिन में उनकी अनवरत विज्ञान साधना चलती रहीं। पंडित जी के तईं ''पैसा जुटाने, मकान बनवाने, बड़ी पगड़ी बांध कर बड़ा पंडित बनने बनवाने की धुन नहीं। "मैने घोर कठिनाइयां उठायीं। एक रुपये के चने भिगो भिगो कर हफ्तों गुजारे। मेरे परिवार ने ऐसे दिन भी देखे हैं जब चार–चार दिन तक घर में चूल्हा नहीं जला है। मेरे बच्चों को एक रोटी भी नसीब नहीं हुई है।" उन दिनों लोगों ने उनकी अयाचित सहायता की। "मेरे एक मित्र ने मेरा घोर अर्थाभाव देखकर अपने एक प्रकाशक से मेरी चर्चा की। उसने मुझे तुरंत बुलवाया। मेरा कोई भी परिचय नहीं। सौ रुपये मेरी जेब में डाल दिए। कोई शर्त नहीं, कोई काम नहीं। ससांर से निर्लिप्त मैं ऐसे व्यक्ति को कहूँगा वे महाशय थे इंद्र चन्द्र नारंग।" . .....आप हिन्दी में सेवा भावना से लिखना चाहते हैं तो एक नारंग नहीं, अनेक नारंग मिल जायेंगे। यों मार्ग बहुतेरे हैं.... पैरों में बल हो तो. ..." और यह कहते–कहते पंडित जी की आँखें छलछला आयीं। ऐसे

घोर कष्टों के बीच भी विज्ञान की दीपशिखा को प्रज्ज्वलित रखनेवाले विरले महापुरुष भला आज कहाँ मिलेंगे?

विज्ञान लेखन में प्रवृत्त

प्रतापगढ़ जेल से मुक्त होनेके बाद चतुर्वेदी जी इलाहाबाद आकर और मुंशी राम प्रसाद के बाग में पं० गौरीशंकर मिश्र नेता के यहाँ भोजन बनाने और बरतन माँजने का काम करने लगे। फिर पंद्रह रुपये मासिक पर 'विज्ञान परिषद' में क्लर्क का कार्य करने लगे।

"विज्ञान" के संपादक श्री गोपाल स्वरूप भार्गव कायस्थ पाठशाला में अध्यापक थे। एक बार उन्होंने अपने एक भतीजे मनोहर लाल को 'साइंस सिफ्टिंग' नाम से एक विलायती विज्ञान साप्ताहिक से कोई लेख अनुवाद करने को दिया। वह एकदम घबड़ा गया। "लाओ मैं करूंगा–कहकर लेख मैंने उससे ले लिया। तब मेरे पास एक संस्कृत–बंगला कोश था। इसमें अर्थ बंगला में थे। बंगला अक्षरों को टटोल कर संस्कृत ध्वनि का कुछ अनुमान कर मैंने शब्द गढ़े। जैसे मून विजिट प्लांड' के लिए लिखा–' चन्द्र लोक की यात्रा की योजना'। बहरहाल 'विज्ञान' में मेरे द्वारा आनूदित पहला लेख छप गया। फिर उसमें मेरी तमाम रचनाएं छपने लगीं। फिर तो चतुर्वेदी जी 'विज्ञान' में निरन्तर लिखते रहे। उनके 77 लेखों की सूची दी जा रही है जिसमें स्वतन्त्रतापूर्व (1924–1932) के 24 लेख हैं। इनके विष्य हैं– वायु, शल्य चिकित्सा, कोयला, तत्व, धातुएं, परमाणु, बिजली, जीवजन्तु, फसल रक्षा, ज्वालामुखी, विभिन्न आविष्कार, सरीसृप, सर्प, भाप इन्जन आकाशीय पिण्ड आदि। ये विषय ही आगे चलकर पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए।

विज्ञान लेखन में निष्णात्

"बाद में पचास रुपये मासिक पर राय साहब राम दयाल अग्रवाल के नए–नए स्थापित प्रेस में प्रूफरीडर नियुक्त हुआ। कोई प्रेरक नहीं था, परंतु मैं विचित्र रूप से विज्ञान लेखक बन गया। यह बात एक परी कथा की ही तरह है–एक दिन राय साहब के नाती कामता ने कहा "पंडित, क्यों नहीं लिखते?"..... पता नहीं वह कौन–सी आकाशवाणी, कौन सी प्रेरणावाणी थी । यों कहने वाला एक अत्यंत तूम–तड़ाका वाला

उद्दंड लड़का था। उसकी एक जरा सी बात पर हनुमान की तरह मुझमें भारी साहस भावना जागी। मैंने तय कर लिया– हाँ, लिखना है।

"कभी मैंने गुदड़ी बाजार से एक पुस्तक खरीदी थी–' हीरोज ऑफ एक्सच्लोरेशन। इसमें मध्ययुगीन भौगोलिक अन्वेषण की, अफ्रीका की गहन आरण्यस्थली के अन्वेषकों की रोमांचक कथांए थीं। मैंने सोचा–" प्रारंभ में भी लोगों ने पृथ्वी के भू–भागों का अन्वेषण किया होगा– तो प्रारंभ से ही यह कथा क्यों न लिखी जाय। और कई पुस्तकों की मदद से मैंने अपनी प्रथम पुस्तक – 'पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ' लिख डालीं। यह 1928 की बात है। राय साहब ने सचित्र इसे छापा। हिन्दी संसार में इसका स्वागत हुआ। इसके बाद राय साहब ने 'प्रकृति की पराजय', 'अदभुत महापुरुष' आदि पुस्तकें छापीं।

पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय

अपनी स्मृतियों को कुरेदते हुए पंडित जी ने इस तथ्य का भी उद्घाटन किया कि "एक बार लेखन की लौ लग गई तो लग गयी और प्रकाशक न मिलने पर उन्होंने स्वंय अपनी किताबें छापीं।

"यह बातें उन दिनों की हैं जब विज्ञान का न कोई लेखक था न लिखाने वाला। बड़ी मुश्किल से कोई प्रकाशक विज्ञान की पुस्तकें छापने के लिए तैयार होता। सन् 1930 से 5–6 वर्ष तक मैंने पुस्तक प्रकाशन का धंधा किया। इलाहाबाद में मैंने सर्वप्रथम बच्चों की रंगीन पुस्तकें छापीं।"

पुनः लेखन कार्य

1935 के बाद वे पुनः लेखन में प्रवृत्त हुए और कई पुस्तकें लिखीं जिसके संस्करण स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद होते रहे। "तब मैंने 'वायुयान लिखा, फिर मैंने अन्य प्रकाशकों के आग्रह पर कृषि विज्ञान पर 10 पुस्तकें, 'विज्ञान के महारथी,' वायु के चमत्कार', 'आग की करामात' आदि लिखीं। इसके बाद मैंने कभी भी किसी से पुस्तक लिखवाने की प्रार्थना नहीं की। 'आदमी की कहानी और धरती माता' भी मुझे पं. श्री नारायण चतुर्वेदी द्वारा शिक्षा प्रसार विभाग के लिए लिखने को मिलीं। यह बात सन् 1941 की है। एकाएक तभी सैनिक सेवा में जाने का अवसर मिला। सात साल मैंने

वहाँ काटे। तब तक 1949 समाप्त हो चुका था। सेना के वातावरण और व्यक्तिगत बखेड़ों के कारण मैंने यह नौकरी छोड़ दी।"

किताब महल से संपर्क और प्रभूत विज्ञान साहित्य का प्रकाशन

सेना से लौटकर पंडित जी पुनः इलाहाबाद आ गए और फिर से लेखन की ओर प्रवृत हुए। उन्होंने 'किताब महल' के मालिक श्रीनिवास अग्रवाल को एक पोस्टकार्ड डाला। उसमें अपने परिचय के साथ अपनी पहले की पुस्तकों के भी नाम लिख दिए। श्रीनिवास जी अजीब सूझ–बूझ और साहस के आदमी थे। उन्होंने 30–40 चित्रों के साथ मेरा पहली किताब छापी। एक बार उन्होंने अपने भाई से कहा था... "मैं नहीं जानता कि यह आदमी इतना विद्वान है।".... इसी तरह एक बार उन्होंने मुझसे कहा – 'पंडित जी, मैंने एक लाख रुपया आपकी पुस्तकों को प्रकाशित करने में लगाया है। 'श्रीनिवास जी दिवंगत हो गए, उन्होंने मेरी पचास से अधिक पुस्तकें छापीं'। मेरी अक्षय निधि को उन्होंने पुस्तकों के रूप में प्रकाशवान किया। मैं धन्य हो गया।"

किताब महल ने 'सरल विज्ञान माला' के अंतर्गत पंडित जगपति चतुर्वेदी की पचास से अधिक पुस्तकें छापीं। मैं सारी पुस्तकों के पढ़ने और देखने का दावा तो नहीं करता लेकिन पंडित जी लिखी अधिकांश पुस्तकें मेरे निजी संग्रह में हैं।

स्वतन्त्रतापूर्व उनकी पुस्तकों की संख्या यद्यपि 8 है किन्तु स्वतन्त्राता के बाद उनकी लेखनी से कई दर्जन पुस्तकें प्रस्तुत हुईं जो विविध लोकोपयोगी विषयों पर सचित्र छपीं। कुल मिलाकर उनकी पुस्तकोंकी संख्या 59 हैं (सूची–1)

सूची 1 : जगपति चतुर्वेदी द्वारा रचित वैज्ञानिक पुस्तकें

1.	आग की कहानी	1931
2.	आविष्कार की कहानियाँ	"
3.	वायु पर विजय	
4.	पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें	
5.	ज्ञान की पिटारी	1932
6	वायुयान	1934

7.	क्यों?	1936
8.	क्या?	1937
9.	बिजली की लीला	1951
10.	विज्ञान के महारथी	1951
11.	समुद्री जीव जन्तु	"
12.	विलुप्त जन्तु	"
13.	भूगर्भ विज्ञान	1953
14.	वैज्ञानिक आविष्कार (भाग 1)	1953
15.	विलक्षण जन्तु	1954
16.	शिकारी पक्षी	"
17.	जलचर पक्षी	"
18.	वन वाटिका के पक्षी	"
19.	वन उपवन के पक्षी	"
20.	शल्य विज्ञान की कहानी	1954
21.	तत्वों की खोज में (द्वितीय संस्करण)	
22.	विलुप्त वनस्पति	"
23.	वनस्पति की कहानी (द्वितीय संस्करण)	"
24.	हिंसक पशु	1955
25.	जन्तुओं का गृह निर्माण	"
26.	स्तनपोषी जन्तु	"
27.	खुरवाले जानवर	"
28.	चींटी चीटों की दुनिया	"
29.	फसल रक्षा की दवाएँ	"
30.	देशी खाद	"
31.	मवेशियों के साधारण रोग	1955
32.	जंतु बिल कैसे बनाते हैं	"
33.	वैज्ञानिक आविष्कार (भाग–2)	1956
34.	कोयले की कहानी	1957
35.	जीव जन्तुओं की वृद्धि	"
36.	कीट पतंगों का संसार	"
37.	कीटाणुओं की कहानी	"

38.	साग सब्जी की उत्तम खेती	"
39.	पेनिसिलीन की कहानी	"
40.	आविष्कारकों की कहानी	"
41.	संसार के सर्प	"
42.	सृष्टि का इतिहास	1958
43.	परमाणु के चमत्कार	"
44.	जन्तुओं की जन्मकहानी	"
45.	मछलियों की दुनिया	"
46.	बिजली कैसे खोजी गयी	1959
47.	जीने के लिए	1965
48.	वैज्ञानिक उद्‌भवों का इतिहास	1965
49.	अद्‌भुत महापुरुष	1973
*50.	ज्वालामुखी	
*51.	अद्‌भुत जन्तु	
*52.	उथले जल के पक्षी	
*53.	पक्षियों के घोंसले	
*55.	विचित्र चींटे	
*56.	तारा मंडल की कहानी	
*57.	कीटों की कहानी	
*58.	सरीसृपों की कहानी	
*59.	मछलियों की कहानी	

** इनकी प्रकाशन तिथि पुस्तकों में नहीं मिली।*

किताब महल की 'सरल विज्ञान माला' के अंतर्गत चतुर्वेदी जी की किताबों के शीर्षक देखकर यह स्पष्ट है कि उनके लेखन का क्षेत्र अति विस्तृत और अपार था। उन्होंने वैज्ञानिकों–आविष्कारकों की जीवनियाँ लिखीं तो जीव–जंतुओं पर दर्जनों पुस्तकें लिखीं, भूगर्भ से लेकर परमाणु के चमत्कारों पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलायी।

हिन्दी के पत्रकारों, सम्पादकों की भी दृष्टि चतुर्वेदी जी की ओर गई और उन सभी के प्रशंसा के वे पात्र बने। पंडित कमलापति त्रिपाठी ने उन्हें लिखा–– "आपने हिंदी पाठकों को विज्ञान की ओर उन्मुख करने का आजीवन प्रयास किया जिसके लिए हिंदी जगत सदा ऋणी रहेगा।"

संपादकाचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी आपको साधुवाद दिया। चतुर्वेदी जी की एक पुस्तक पर द्विवेदी जी ने टिप्पणी की —— "आविष्कार की कहानियाँ देखकर मुझे परमानंद हुआ। इसका नाम कहानियाँ रखना पुस्तक के विषय के उत्कर्ष को कम करना है। यह पुस्तक नहीं, नवीन ज्ञान भी प्राप्ति का बहुत बड़ा साधन है अतएव अनमोल है। जिन पंडित जगपति चतुर्वेदी ने इस पुस्तक का आविष्कार किया है, वे हिन्दी भाषा–भाषी जनों के कृतज्ञताभाजन हैं।"

'विज्ञान' और विज्ञान परिषद् की सेवा

हिन्दी विज्ञान की उनकी सेवाओं को देखकर 'विज्ञान परिषद्' के अधि ाकारी भी प्रभावित हुए और उन्हें 'विज्ञान परिषद्' द्वारा प्रकाशित मासिक 'विज्ञान' के संपादक ने सहायक सम्पादक बनाया। उस समय विज्ञान के प्रधान संपादक डा० हीरालाल निगम थे। इस अवधि में चतुर्वेदी जी ने संपादन में सहयोग करने के साथ अपना रचनात्मक योग भी दिया। इस बीच "विज्ञान" में प्रकाशित उनके कुछेक आलेखों की सूची संलग्न है। (सूची–2)

सूची 2 - "विज्ञान" मासिक में प्रकाशित लेख

1.	चंद्रलोक की यात्रा की योजना	मार्च	1924
2.	नारंगी पर धुएँ का अद्भुत प्रभाव	मार्च	1924
3.	भोजन ही विष और अमृत है	"	"
4.	विचित्र महल	"	"
5.	नींद को विदा कीजिये	अप्रैल	1924
6.	नियामक पिपीलिका	"	"
7.	एसबेस्टस का महत्व	मार्च	"
8.	गन्धमुखी वा दिवान्धिका	अप्रैल	"
9.	प्राचीन मिश्र की एक दुर्घटना	मई	"
10.	लोमड़ी	जून	"
11.	एशिया और यूरोप	अगस्त–सित०	1928
12.	आविष्कार का इतिहास	मई	1931

13.	वाष्प इंजन	जून	"
14.	पृथ्वी का गर्भस्थ धन	"	"
15.	रेलगाडी	जुलाई	1931
16.	पत्थर कोयले की खुदाई	"	"
17.	मोटरगाड़ी और गैस इंजन	अगस्त	"
18.	जहाज	"	"
19.	पृथ्वी का आकार, विस्तार और तौल	सितम्बर	"
20.	चौदह प्रश्न	"	"
21.	पृथ्वी का इतिहास	नवम्बर	"
22.	भूमि की सफाई	दिसम्बर	"
23.	कन्दरा से गगन स्पर्शी भवन	फरवरी	1932
24.	न्यूटन	जून	"
25.	परमाणु क्या है?	अप्रैल–जून	1950
26.	परमाणुओं का आकार और प्रकार	जुलाई–सित०	"
27.	रश्मि शक्ति	अक्टू०–नव०	"
28.	परमाणु रचना	दिसम्बर	"
29.	परमाणुओं का कायापलट	जनवरी	1951
30.	परमाणु बम	फरवरी	1951
31.	जेट संचालित वायुयान	मार्च	"
32.	एक बीर उड़ाका	मई–जून	"
33.	विज्ञान का गुप्तचर विभाग	अगस्त	"
34.	पराजन्तुक युग के कुछ जन्तु	सितम्बर	1951
35.	हाथी की पूर्व–पीढ़ियाँ	अक्टूबर	"
36.	रेडियम चिकित्सा	"	"
37.	मध्य जन्तुक युग के विलुप्त जन्तु	नवम्बर	"
38.	शिलाओं का रसायन	मई	1952

39.	दक्षिण भारत का भूबन्ध	जून	"
40.	कीटाणुओं का संघर्ष	नवम्बर	"
41.	कीटाणुओं की खोज	दिसम्बर	"
42.	भारतीय कोयला क्षेत्र	जनवरी	1953
43.	बीज कैसे उत्पन्न हुआ	मई	"
44.	विलुप्त फर्न	जून	"
45.	जिह्वापत्री (ग्लोसेप्टेरिस)	जुलाई	"
46.	रसायन और बिजली	अगस्त	"
47.	विलुप्त तथा दुर्लभप्राय जन्तु	मार्च	1954
48.	जंतुओं का देशाटन	अप्रैल	"
49.	पक्षियों की उत्पत्ति	मई	"
50.	प्रवासी पक्षी की बात	जून	"
51.	जान बायड डनलप	"	"
52.	(i) पक्षी–जगत	अगस्त	"
	(ii) परम कीटाणु	"	"
53.	(i) प्राचीन संसार का शल्य विज्ञान	सितम्बर	"
	(ii) पक्षियों की बुद्धि	"	"
54.	मिश्र का शल्य विज्ञान	अक्टूबर	"
55.	तारा देखने की विधि	नवम्बर	"
56.	चींटी–चींटों की दुनिया	अप्रैल	1955
57.	स्तनपोषी जन्तु क्या हैं?	मई	"
58.	समांगुलीय गण	अगस्त	"
59.	श्रृंगपाती वंश (खुरवाले जानवर)	सितम्बर	1955
60.	मवेशियों के कृमि रोग	अक्टूबर	1955
61.	ईफेल की मीनार	अक्टूबर	1955
62.	संसार के आगामी ग्रहण	अप्रैल	1956

63.	नक्षत्रों के दर्शन	मई–जुलाई	1956
	(ii) विज्ञान के 41 वर्ष	"	"
64.	आकाशवाण या राकेट कैसे चलता है	अगस्त	"
65.	राशि चक्र	"	"
66.	आकाशबाण या सरलबाण	सितम्बर	"
67.	राशियों के दर्शन	अक्टूबर	"
68.	भाप के इंजन	"	"
69.	तारा घड़ी	नवम्बर	"
70.	यूरोप और एशिया के घातक सर्प	"	"
71.	तारा दर्शन	दिसम्बर	"
72.	अफ्रीका के घातक सर्प	"	"
73.	ज़ीवन का सीमा देश	मार्च	1957
74.	पक्षियों का इतिहास	अप्रैल	"
75.	सर्प परिचय	मई	"
76.	वैज्ञानिक वृत्ति कैसी हो	"	"

'विज्ञान' में चतुर्वेदी के प्रकाशित लेखों की इस सूची के अतिरिक्त और लेख भी है जो तत्कालीन पत्रिकाओं 'विज्ञान लोक' (आगरा), 'विज्ञान जगत' (इलाहाबाद) में उपलब्ध हैं। कादंबिनी (नई दिल्ली) में उन्होंने एक लेख लिखा था—– "मैं वैज्ञानिक न बन सका।" (प्रायः सत्तरार्ध में) इसमें उन्होंने बिच्छू के साथ जो कुछ प्रयोग किए थे, उनकी चर्चा की गई थी और बड़ी ईमानदारी से उन्होंने स्वीकारा था कि मैं कोई वैज्ञानिक नहीं हूँ, मात्र विज्ञान की बातों को जनोपयोगी भाषा में परोसने का कार्य करता रहा हूँ।

चतुर्वेदी जी ने जिस समय इस कार्य का बीड़ा उठाया, वह हिन्दी में विज्ञान साहित्य के रचे जाने का उषा–काल था, उपयुक्त शब्दावली न थी, मौलिक लेखन के लिए एकमात्र सहारा था —– डॉ० रघुवीर का कोश। उसी के आधार पर विज्ञान की पुस्तकें लिखी गईं। कहना न होगा कि ये शब्दावलियाँ जटिल थीं। अतः चतुर्वेदी जी के विषयों में

प्रयुक्त शब्दावली पर चर्चा करनी व्यर्थ है। हाँ, भाषा उनकी बोधगम्य होती थी। कालांतर में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के योग से यह मार्ग सरल और सरलतम होता चला गया और लेखन कर्म में सहजता हुई।

भीषण परिस्थितियों और घोर कष्टों में पं० जगपति चतुर्वेदी ने जिस अध्यवसाय से स्वातंत्र्यपूर्व काल में वैज्ञानिक लोकप्रियकरण का कार्य अपने बुद्धि कौशल से किया, वह श्लाघनीय और नई पीढ़ी के विज्ञान लेखकों के लिए अनुकरणीय है।

पंडित जी विद्याव्यसनी थे, एक से बढ़कर एक बहुमूल्य पुस्तकें खोज निकालते थे और उसका निचोड़ तैयार करके कोई नयी पुस्तक प्रस्तुत कर देते। विद्यार्थियों को पढ़ाने का भी उन्हें शौक था। उनके लिए लोगों से माँग–माँग कर पुस्तकें जुटाते थे। साधारण से बान में रहने वाले इस असाधारण विज्ञान लेखक को लोग सनकी या झक्की भी समझते थे। उन पर जिस चीज की धुन सवार हो जाती थी, उसे पूरा किए बगैर चुप नहीं बैठते थे।

मैं आज सोचता हूँ कि इस आदमी को यदि सुविधाएँ मिली होतीं तो उसने न जाने कितना कार्य किया होता! इस वरेण्य विज्ञान लेखक की स्मृति को प्रणाम।

निर्देश

'विज्ञान' मासिक के विविध अंक

विज्ञान लोकप्रियकरण में डॉ० मेहरोत्रा का योगदान

डॉ० राजकुमार दुबे*

डॉ० रामचरण मेहरोत्रा की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने शोध एवं शैक्षणिक कार्यों के साथ–साथ विज्ञान को जन–जन तक पहुँचाने में विशेष रुचि दिखाई।

श्री रामचरण मेहरोत्रा का जन्म, 16 फरवरी सन् 1922 को कानपुर (उ.प्र.) में हुआ था जहाँ पर आपके पिता श्री आर.बी. मेहरोत्रा एक कपड़े की दुकान करते थे। वह मूलतः फर्रूखाबाद के निवासी थे जो बाद में कानपुर जैसे बड़े शहर में आकर बस गये थे। श्री रामचरण पिता की दुकान पर नियमित रूप से कार्य किया करते थे। इनकी अभी सात वर्ष की आयु में माताजी का तथा उसके दस साल बाद पिता जी का स्वर्गवास हो गया। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् आपने स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनने का निश्चय कर लिया। अपने प्रयत्नों से आप को मेरिट स्कालरशिप मिली। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा कानपुर में क्राइस्ट चर्च स्कूल में हुई। आप प्राथमिक कक्षा में प्रवेश परीक्षा में हिन्दी में अनुत्तीर्ण घोषित हुए जिसके कारण आपको अध्ययन हेतु उर्दू माध्यम दिया गया। आपने उर्दू माध्यम से कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। आप अपने विद्यार्थी जीवन में सभी कक्षाओं में सदैव विशेष योग्यता के साथ स्थान प्राप्त करते रहे। आप को नौ वर्ष की आयु में ही गणितीय समस्या विशेषतः "चक्रवर्ती" हल करने में पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त हो चुकी थी। आपने सन् 1937 में हाई स्कूल परीक्षा में पूरे प्रदेश में तृतीय स्थान प्राप्त किया था। इण्टरमीडिएट परीक्षा 1939 में आपने पूरे प्रदेश स्तर पर, सभी विषयों में विशेष योग्यता पाकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन दिनों आप नियमित रूप से खेल–कूद व कुश्ती में भी भाग लिया करते थे। आप सन् 1939 में ही कानपुर छोड़कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.एस–सी. छात्र के रूप में अध्ययन करने लगे। तत्कालीन कुलपति डॉ० अमर नाथ झा ने आपको मेरिट स्कालरशिप के साथ–साथ दो अन्य स्कालरशिप प्रदान किया ताकि आप ट्यूशन कार्य से मुक्त हो सकें।

---

*रसायन विभाग इलाहाबाद, विश्वविद्यालय इलाहाबाद

आपकी रुचि गणित विषय में रही। जब आप सर पी.सी.बी. छात्रावास में रह रहे थे उस समय अन्य क्रियाकलापों में भी भाग लेते रहे और सामाजिक मंत्री चुने गये। आपने सन् 1941 में बी.एस.सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की और विश्वविद्यालय स्तर पर चतुर्थ स्थान भी प्राप्त किया। आपने एम.एस.सी. रसायन विषय से करने का निश्चय किया। साथ ही एम.एससी. प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में भौतिक रसायन पढ़ाने की क्षमता को दर्शाया। बाद में सन् 1942 में "भारत छोडो" आन्दोलन के समय डॉ० मेहरोत्रा एम.एस.सी. अन्तिम वर्ष में थे और 12 अगस्त सन् 1942 में विद्यार्थियों के जूलूस में शामिल हो गये जहाँ पर एच.एन. बहुगुणा, अजित राम वर्मा और अवध बिहारी भाटिया का साथ था। उस समय पुलिस द्वारा फायरिंग की गई तथा गिरफ्तारी की गई। आप गिरफ्तार किये गये किन्तु बाद में छोड़ दिए गए। बाद में आपने स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये चन्दा एकत्र करना तथा लेखों के वितरण करने का कार्य किया। आपने "खादी" धारण करने का निश्चय किया. जब तक कि देश स्वतंत्र न हो जाय। आप अपने अध्ययन के लिए पुनः जनवरी 1943 में वापस आ गये। जुलाई 1944 में आपकी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में अकार्बनिक रसायन के प्रवक्ता के रूप में हो गई थी। आप 1954 तक इस पद पर कार्यरत थे। आपकी रुचि अकार्बनिक एवं विश्लेषणात्मक रसायन में अत्यधिक होने के कारण शोध कार्य की दिशा भी यही रही है। आपने "रंजकों तथा सूचकों के यांत्रिक अध्ययन" पर कार्य करके दर्जनों शोध पत्र प्रकाशित किये। इसके बाद तुरन्त प्रोफेसर एन.आर. धर के साथ औपचारिक रूप से डी.फिल के लिये पंजीकृत हो गये और 1948 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा डी.फिल. की उपाधि प्राप्त किया। दो साल बाद उच्च अध्ययन के लिये यू.के. की एक स्कालरशिप के लिये आपको चुना गया। उसी समय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर (रीडर के वेतन श्रृंखला में) कि पद पर नियुक्त का प्रस्ताव किया गया तो आपको चुनाव करना मुश्किल था। परन्तु आपने इंग्लैंड जाना निश्चय किया और 1950 से 1952 तक ब्रिटिश कौंसिल के फेलों और वर्कबेक कालेज, लण्दन विश्वविद्यालय में अंशकालिक प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। आपको इतने कम समय में असाधारण शोध कार्य करने के लिये पहचाना गया और आपको लंदन विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. की

उपाधि से सम्मानित किया गया तथा और अधिक समय तक वहाँ रुक कर कार्य करने को कहा गया। विदेश में कार्य करने के लिये लाभदायक प्रस्ताव को भी बिना किसी हिचकिचाहट के ठुकरा दिया और इलाहाबाद वापस आ गये। प्रोफेसर मेहरोत्रा ने भावनात्मक रूप से जीवन भर अपनी मातृभूमि की सेवा करने के लिये अपने आपको समर्पित कर दिया।

आपने 1954 में इलाहाबाद छोड़ दिया एवं लखनऊ विश्वविद्यालय में उपाचार्य के पद पर चार वर्षों तक कार्य किया। इसके तुरन्त बाद में आप सन् 1958 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय के रसायन विज्ञान विभाग के प्रथम प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष पद पर कार्य प्रारम्भ किया। आप जुलाई 1962 में जयपुर आ गये, तब से वहाँ पर आप का घर सा हो गया है। हाल ही में आपने अपने निवास के लिये एक घर भी बनवाया है।

आचार्य डॉ० रामचरण मेहरोत्रा जब 1974 से 1979 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति रहे, तब भी आप नियमित रूप से जयपुर जाते थे तथा अपने विद्यार्थियों एवं शोध क्रियाकलापों के सम्पर्क में रहते थे। इन पाँच वर्षों में दिल्ली विश्वविद्यालय में भी शोध विद्यार्थियों को नियमित निर्देश देते रहे तथा कक्षाओं में जाकर अध्यापन कार्य भी करते थे।

आप द्वारा जयपुर में किया गया अध्यापन एवं शोध का कार्य आपके लिये तथा विश्वविद्यालय के लिये प्रतिष्ठापूर्ण रहा है। तथापि यह रसायन विभाग व्यक्तिगत ख्याति के साथ–साथ सुदृढ़ व देश के उच्च कोटि की श्रेणी में जाना जाता है। अकार्बनिक रसायन के क्षेत्र में यह देश का पहला विभाग है जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विशेष सहायता कार्यक्रम (एस.ए.पी.) के लिये चुना गया था। अकार्बनिक रसायन के क्षेत्र में आप द्वारा प्रकाशित शोध कार्यों के आधार पर लंदन विश्वविद्यालय ने आप को डी.एस.सी. की उपाधि प्रदान की। प्रोफेसर मेहरोत्रा द्वारा किये गये कार्यों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचाना गया तथा उन्हें सम्मानित किया गया है। आपने सन् 1982 में अवकाश ग्रहण किया। उसके बाद से आप राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में आजीवन एमेरिटस प्रोफेसर के रूप में कार्य कर रहे हैं। बीच में तीन वर्षों तक आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भी कुलपति रहे।

प्रोफेसर रामचरण मेहरोत्रा रसायन शास्त्र के क्षेत्र में देश के सर्वोच्च विद्वानों में गिने जाते हैं। देश की तीनों उच्चतम अकादमियों के वे आजीवन फेलो हैं तथा इण्डियन साइंस कांग्रेस, इंडियन केमिकल सोसायटी एवं विज्ञान परिषद् के अध्यक्षीय पदों पर सुशोभित कर चुके हैं। सर्वोच्च स्तर की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में 700 से भी अधिक शोध–लेखों तथा एकेडेमिक प्रेस लंदन द्वारा चार बहुचर्चित पुस्तकों के लेखक और 100 से अधिक शोध छात्रों के निदेशक प्रोफेसर मेहरोत्रा को राष्ट्र द्वारा सर्वोच्च वैज्ञानिक सम्मानों, जैसे भटनागर, फिक्की, टी. आर. शेषाद्रि तथा आचार्य प्रफुल्ल चन्द राय एवं ज्ञान चन्द्र घोष पुरस्कारों से अलंकृत किया जा चुका है।

प्रोफेसर रामचरण मेहरोत्रा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत उच्च कोटि की ख्यातिप्राप्त की है। आपकी शोध उपलब्धियों का वर्णन सैकड़ों पुस्तकों में किया गया है। भारतीय रसायनज्ञों में शायद आप ही ऐसे विद्वान हैं जिनकी खोजों का वर्णन ब्रिटिश केमिकल सोसायटी की वार्षिक रिपोर्टों में विगत 45 वर्षों से बराबर हो रहा है और जिन्हें पिछले तीस वर्षों में लगभग दो दर्जन विभिन्न विषयों में पर विशिष्ट (प्लेनरी) भाषणों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंसों में सादर आमंत्रित किया जा चुका है। डॉ० मेहरोत्रा अपने अनुसन्धान कार्य के अतिरिक्त शैक्षणिक कार्य मे भी देश–विदेश में सर्वोच्च ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। सन् 1975 में यूनेस्कों में शिक्षा की नई तकनीक" पर एक विशेष भाषण देने के लिए आपको मैड्रिड आमंत्रित किया गया था और यह सिलसिला बराबर चल रहा है।

विज्ञान परिषद से सम्बन्ध

डॉ० मेहरोत्रा 1943 से ही लेखक, सम्पादक तथा अन्त में विज्ञान परिषद् के सर्वोच्च पद सभापति के रूप में परिषद् से जुड़े रहे। इस काल में आप द्वारा प्रकाशित लेखों में "क्षारक तत्वों की खोज की कहानी" (विज्ञान, अप्रैल अंक, 1947) विशेष रूप से चर्चित हुई क्योंकि इस महत्वपूर्ण गवेषणा को उन्होंने एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया था।

इसके पहले के लेखों में अल्युमिनियम (नवम्बर अंक 1944) तथा परमाणु बम (सितम्बर, अंक, 1945) हैं। इसके अतिरिक्त आप द्वारा लिखित 'बाल संसार' के अन्तर्गत (विज्ञान अगस्त, 1947) शुष्क बरफ की कहानी, प्रतिदीप्तिमान प्रकाश (विज्ञान अप्रैल, 1947) तथा सोने की आत्म कथा (विज्ञान अप्रैल 1947) आदि हैं।

आपकी इस लगन और दिशा में प्रतिभा को देखते हुए विज्ञान परिषद की विद्वत् समिति ने उनसे "विज्ञान" पत्रिका के सम्पादन का भार स्वीकार करने का विशेष अनुरोधं किया और आपने यह कार्य सहर्ष स्वीकार किया। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद अन्य क्षेत्रों की ही भॉति हिन्दी के प्रति भी स्वतः अनुराग एंव समर्पण की कमी आ गई और अधिकतर लेखकों की हिन्दी लेखों को बिना पारिश्रमिक के लिखने में अरुचि होने लगी। शायद यही कारण था कि सन् 1947 के बाद "विज्ञान" के लिये समुचित लेखों की प्राप्ति में विशेष कठिनाई सामने आई। प्रोफेसर मेहरोत्रा न केवल पूर्णकालिक अध्यापन कार्य कर रहे थे वरन् साथ ही डाक्टरेट डिग्री के लिये भी अनुसंधान कार्य में व्यस्त थे। तथापि प्रोफेसर मेहरोत्रा ने अपने अथक परिश्रम और अनूठी लगन से विज्ञान के नियमित प्रकाशन में रुकावट नहीं आने दी। उन दिनों आप अन्य साथियों की सहायता से टूटी सी साइकिल पर "कागज नियंत्रक" के दफ्तर जाकर वहॉ पर प्रायः पेपर परमिट के लिए घण्टों प्रतीक्षा करने में भी कभी कोई शिकायत नहीं की। धनाभाव के कारण सस्ते से सस्ते प्रेस में पत्रिका के छपने का प्रबन्ध करना पड़ता था। इसके लिये प्रोफेसर मेहरोत्रा ने यह क्रम बना लिया था कि सायकिल पर विश्वविद्यालय लौटते समय प्रेस में रुक कर प्रूफ संशोधन का कार्य वहीं कर दें या प्रूफ को लाकर रात में संशोधन के पश्चात् सुबह विश्वविद्यालय जाते समय उसे प्रेस में वापस दें।

स्वतंत्रतापरवर्ती कार्य :

डॉ० मेहरोत्रा की लेखनी अनवरत चलती रही। उन्हें हिन्दी के प्रति अपने दायित्व का बोध था। अतः जब भी अवसर आया वे पीछे नहीं हटे। आप द्वारा लिखित कुछ लेखों की सूची यहाँ दी जा रही है–

1. गुणात्मक विश्लेषण (विज्ञान, अगस्त, सितम्बर 1948)। इस लेख को डॉ० सत्यप्रकाश (स्वामीजी) के साथ लिखा गया है

इसके अन्दर आपने तत्वों के नामों को निम्न प्रकार से लिखा है, जैसे टिन के लिये "वंग", जिंक के लिये "यशद", सिल्वर (चाँदी) के लिये "रजत" व कॉपर के लिये ताम्र जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है।

2. असामान्य तत्वों के नवीन उपयोग (अगस्त–सितम्बर 1948)
3. अपने अन्न के शत्रु–चूहों से छुटकारा (फरवरी अंक 1949)
4. भोजन को स्वादिष्ट बनाने का एक नवीन साधन सोडियम ग्लूटामेट (अगस्त–सितम्बर, 1949)
5. आवाज दीखती है परन्तु सुनाई नहीं देती (अक्टूबर, 1947)
6. सर कार्यमाणिक्कम श्रीनिवास कृष्ण (विज्ञान सम्मेलन के 36 वे अधिवेशन के सभापति (जनवरी–मार्च अंक, 1949).
7. ग्रेगर जोहान मैण्डल : मई – 1954
8. विज्ञान के नए चरण, मई–जून 1954
9. मानव की सेवा में चलचित्र, अगस्त–1956
10. आगामी दशकों में भारत में विज्ञान व तकनीकी की प्रगति मार्च–अप्रैल 1978.

डॉ० मेहरोत्रा हिन्दी में स्कूल स्तर की तो बहुत सी पुस्तकें लिख चुके थे परन्तु सन् 1954 में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने स्नातकीय स्तर की "भौतिक रसायन" की पाठ्य पुस्तक तैयार की।

प्रोफेसर मेहरोत्रा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की विभिन्न समितियों में तो सक्रिय सदस्य रह चुके थे। सन् 1960 में आपको मिर्जापुर में होने वाले उत्तर प्रदेश साहित्य सम्मेलन के "विज्ञान परिषद" का सभापति चुना गया तथा आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर विशेष बल दिया कि देश में विज्ञान की प्रगति इतनी धीमी होने का विशेष कारण यही है कि उच्च ज्ञान का माध्यम मातृभाषा नहीं बन पायी है।

सन् 1963 में जब प्रोफेसर मेहरोत्रा, कौंसिल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च (सी.एस.आई.आर.) के गवर्निंग बोर्ड के सदस्य थे तो उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू, तत्कालीन प्रधानमंत्री की

अध्यक्षता में होने वाली बोर्ड की बैठक में क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के ज्ञान को सुलभ कराने के लिए विशेष बल दिया। आपके हिन्दी प्रेम से 'जस्टिस एम.सी. छागला, तत्कालीन शिक्षा मंत्री, निदेशक. सी.एस.आई.आर., हुसैन जहीर आदि सभी सदस्य इतने प्रभावित हुए कि अन्त में पंडित नेहरू ने उनको बुला कर कौंसिल की पत्रिका "विज्ञान प्रगति" का भार सम्भालने का अनुरोध किया। यद्यपि इस पत्रिका का प्रकाशन दस वर्ष पहले आरम्भ हो चुका था, तथापि 1963 तक इसकी मात्र 250 प्रतियाँ छपती थीं तथा सशुल्क ग्राहकों की संख्या 10 से भी कम थी। सन् 1964 में पंडित नेहरू के स्वर्गवास के बाद शीघ्र इस पत्रिका ने "नेहरू स्मारक" अंक निकाला। इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और इतनी माँग हुई कि इसकी 50,000 प्रतियाँ दुबारा निकालनी पड़ीं जो आज भी नेहरू प्रशंसकों के धरोहर के रूप में है। सन् 1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय 'युद्ध विशेषांक' निकाला गया जिस की सामग्री से प्रभावित होकर रक्षा विभाग ने डेढ़ लाख अतिरिक्त प्रतियों की माँग का निवेदन किसी तथा लगभग 80,000 प्रतियाँ डिफेंस आर्गेनाइजेशन द्वारा क्रय की गई थीं। इसके बाद तो पत्रिका क्रमशः प्रगति करती ही गई और सन् 1967 में प्रतिमास इसकी एक लाख से भी अधिक प्रतियाँ छपाने का प्रबन्ध करना पड़ा।

डॉ० रामचरण मेहरोत्रा के बारम्बार अथक प्रयासों के कारण केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डॉ० त्रिगुण सेन के कार्यकाल में क्षेत्रीय भाषाओं में तकनीकी साहित्य सृजन के लिये प्रत्येक प्रदेश को एक-एक करोड़ रुपये की धनराशि का अनुदान दिया गया। राजस्थान में इसके फलस्वरूप राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी की स्थापना सन् 1969 में हुई। यह स्वाभाविक ही था कि प्रोफेसर मेहरोत्रा ने इस अकादमी के कार्य-कलापों में प्रारम्भ से ही सक्रिय भाग लिया और इसके कार्य को उच्च कोटि तक ले जाने में विशेष योगदान दिया। राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी की सहायता से आपने अपने सहयोगियों को हिन्दी में उच्च कोटि की पुस्तकें लिखने के लिये प्रोत्साहित किया और स्वंय भी दो पुस्तकों के लेखन में भाग लिया : (1) विश्लेषणात्मक रसायन-लेखक डॉ रामचरण मेहरोत्रा व डॉ राजकुमार बंसल (2) अम्ल एवं क्षारक-लेखक डॉ० रामचरण मेहरोत्रा व डॉ० अनन्त किशोर मिश्रा।

आपके अनुरोध पर राजस्थान हिन्द ग्रंथ अकादमी ने "रसायन समीक्षा" नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्रिका में रसायन शास्त्र के विभिन्न विषयों की आधुनिकतम खोजों का संक्षिप्त समीक्षा–लेखों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। प्रोफेसर मेहरोत्रा ने अपने इस प्रयास से हिन्दी की उच्चतम क्षमता को तो स्पष्ट कर ही दिया है। साथ ही शोधछात्रों तक को हिन्दी की ओर आकर्षित किया है।

विज्ञान के ज्ञान को सरल भाषा में कम पढ़े–लिखे लोगों तक पहुँचाने में प्रोफेसर मेहरोत्रा का उत्साह अद्वितीय रहा है। आप विज्ञान के आधुनिकतम ज्ञान को समाचारपत्रों, लोकप्रिय पत्रिकाओं, रेडियो, दूरदर्शन सभी माध्यमों से जन–जन तक पहुँचाने में बराबर प्रयत्नशील रहते हैं। कुछ समय पहले आकाशवाणी के विशेष राष्ट्रीय कार्यक्रम में प्रसारित आपकी "सत्य और विज्ञान" वार्ता विशेष रूप में चर्चित हुई थी।

साइंस कांग्रेस के अवसरों पर "विज्ञान परिषद्" द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित होने वाली गोष्ठी में डॉ० मेहरोत्रा ने 1968 में वाराणसी में हिन्दी में अपने अनुसधान के बारे में भाषण दिया। सन् 1978 में हैदराबाद में आयोजित इण्डियन साइंस कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर लगभग 6-7 हजार श्रोताओं के सम्मुख "जनरल प्रेसिडेन्ट" के रूप में अपने अध्यक्षीय भाषण में जब उन्होंने हिन्दी में अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया तो सब आश्चर्यचकित हो गये थे। इस अवसर पर साइंस कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण का सारांश भी शायद प्रथम बार ही अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी वितरित किया गया था। सन् 1979 में जब उन्हें राजा राम देव आनन्दी लाल पोद्दार भाषण श्रृंखला में नवम स्मारक भाषण के लिये आमंत्रित किया गया तो उन्होंने इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ में "विज्ञान व तकनीकी के स्वरूप" जैसे सारगर्भित विषय पर हिन्दी में ही घण्टों भाषण दिया और बाद में संयोजकों के अनुरोध पर इस भाषण का अंग्रेजी अनुवाद भी किया जिससे दोनों को एकसाथ एक पुस्तिका में प्रकाशित किया जा सका। 1980 के बाद से प्रोफेसर मेहरोत्रा अनेकानेक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में कम से कम अपने आमंत्रित भाषण का शीर्षक तो अंग्रेजी के साथ हिन्दी में करते रहे हैं। सन् 1985 में उन्होंने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) के आमंत्रण तथा विशेष आग्रह पर "पढ़ो और सीखो" योजना के

अन्तर्गत विज्ञान के विभिन्न विषयों में लगभग दो दर्जन बाल पुस्तकें सरल भाषा में देश के सर्वोच्च कोटि के वैज्ञानिकों से लिखवाने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की।

प्रोफेसर मेहरोत्रा "वैज्ञानिक शब्दावली आयोग" के मान्य सदस्य रहे हैं तथा 1982 में देश के राष्ट्रपति के सभापतित्व में "तकनीकी शब्दावली की समस्याओं" पर आयोजित एक गोष्ठी में उन्हें मुख्य वार्ता के लिए भी आमंत्रित किया गया था। "विश्व हिन्दी सम्मेलन" के कार्यकलापों में आरम्भ से ही उनका पूर्ण सहयोग रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय में कुलपति काल में कार्याधिक्य के कारण आप मारीशस में होने वाले द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में देश के प्रतिनिधित्व के निमंत्रण को स्वीकार न कर सके, लेकिन अक्टूबर 1983 में दिल्ली में होने वाले "तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन" के अवसर पर भी डॉ० मेहरोत्रा को "विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के उपयोग" विषय पर विशेष सम्बोधन के लिए आमंत्रित किया गया और इसके बाद जून 1984 में ग्यूएल्फ (हनमसची) विश्वविद्यालय (कैनेडा) में "हिन्दी में तकनीकी शब्दावली की समस्याओं" पर आयोजित एक सम्मेलन में विशिष्ट अतिथि के रूप में आपको आमंत्रित किया गया था।

प्रोफेसर रामचरण मेहरोत्रों जैसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिभा और ख्याति के वैज्ञानिक का हिन्दी के प्रति अनुराग हिन्दीप्रेमियों के लिये गर्व और विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये प्रेरणा स्रोत तथा पथ प्रदर्शक रहा है। आपकी वैज्ञानिक उपलब्धियों और हिन्दी प्रेम से प्रभावित होकर देश के सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्थान "भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र" के निदेशक, डॉ० पी.के. आयंगर ने आपको अपने रुचि के वैज्ञानिक विषय पर हिन्दी (शायद पहली बार) में ही भाषण देने के लिये आमंत्रित किया।

सन् 1982 में "विज्ञान परिषद्" प्रयाग ने आपकी हिन्दी सेवाओं के लिये विशेष रूप से सम्मानित किया। प्रोफेसर मेहरोत्रा को अपनी हिन्दी सेवाओं के लिये कई बार पुरस्कृत किया जा चुका है, जिनमें से निम्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

1 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सन् 1984 में "संस्थान सम्मान" जो हिन्दी के अनेकानेक उच्चतम साहित्यकारों को तो दिया जा

चुका है परन्तु विज्ञान के क्षेत्र में एक हिन्दीसेवी को इतने उच्च सम्मान से अलंकृत करने का अकेला अनूठा उदाहरण है।

2 केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा द्वारा अखिल भारतीय हिन्दी सेवी सम्मान योजना के अन्तर्गत "आत्माराम" पुरस्कार दिया गया।

3 हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 1995 में सम्मेलन की उच्चतम मानद उपाधि "विद्या–वाचस्पति " द्वारा सम्मानित किया गया।

सन् 1990-93 में जब डॉ० मेहरोत्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति बनकर आये तो "विज्ञान परिषद" की हर बैठक में आते और "विज्ञान" में प्रकाशनार्थ लेख देते रहे। "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" में भी निम्नलिखित रसायन समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं–

1 उत्तम सिरेमिक के पूर्वगामी बहुधात्विक एल्काक्साइड (लेखक : डॉ० राजकुमार दुबे व प्रो० रामचरण मेहरोत्रा अप्रैल अंक संख्या–2, 1993)

2 भारतीय विज्ञान : उत्कृष्टता एवं उत्तरदायित्व (लेखक : प्रो० रामचरण मेहरोत्रा जनवरी अंक संख्या 1, 1994)

3 धात्विक एल्काक्साइडों का रसायन : उत्कृष्टता एवं उत्तरदायित्व (लेखक : डॉ० राजकुमार दुबे व प्रो० रामचरण मेहरोत्रा अप्रैल अंक संख्या–2, 1995)

प्रोफेसर मेहरोत्रा समय–समय पर नये–नये शब्दों की खोज में भी सदैव अग्रसर रहे है। हाल ही में आपने केरामिकॉस (ग्रीक शब्द) जिसका अर्थ चूल्हे पर गरम करना के लिये संस्कृत के "श्रापाक" शब्द (जिसका अर्थ कुम्हार की भट्ठी से है) को गढा है जो वस्तुतः अंग्रेजी के सिरेमिक्स (Ceramics) शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है।

अनेक विषयों के ऐसे ही सर्वोच्च कोटि के विद्वानों के अद्वितीय हिन्दी–प्रेम के सम्बल पर ही हिन्दी जगत में यह आशा जगी है कि शीघ्र ही हिन्दी भाषा न केवल अपने उच्च कोटि के साहित्य द्वारा अपितु विज्ञान तथा तकनीकी जैसे दुर्गम क्षेत्रों में भी समाज सेवा का सक्षम माध्यम बन सकेगी।

आयुर्वेद के लोकप्रियकरण में भावमिश्र का अवदान

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय*

संस्कृत भाषा द्वारा भारत में 17वीं सदी तक आयुर्वेद विषयक जानकारी का व्यापक प्रचार-प्रसार था। बाद में हिन्दी टीकाकारों ने इसे सर्वसुलभ बनाया।

संस्कृत के माध्यम से चरक तथा सुश्रुत के काल से (300 ई०) चली आ रही आयुर्वेद परम्परा अष्टांग संग्रह, अष्टांग हृदय (5वी' 7वीं सदी), माधव निदान (700 ई०) शर्ङ्गधर संहित (13वी सदी पूर्वार्द्ध) के द्वारा लोकप्रिय बनाई जाती रही। उसी दिशा में 'भावप्रकाश' की रचना ऐतिहासिक महत्व की है।

भाव प्रकाश (1) भावमिश्र की लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध रचना है। भावमिश्र आयुर्वेद के इतिहास में मध्यकाल एवं आधुनिक काल की देहली पर स्थित है, ठीक उसी प्रकार जैसे वाग्भट्ट प्राचीन तथा मध्यकाल की सीमा रेखा पर अवस्थित हैं। इन्होंने प्राचीन संहिताओं का अनुसरण करते हुये भी अनेक मौलिक विचारों एवं नवीन द्रव्यों का समावेश अपने ग्रन्थ में किया है। भावप्रकाश लघुत्रयी का अन्तिम तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो शताब्दियों से आयुर्वेदिक समुदाय में लोकप्रिय रहा है।

इस ग्रन्थ में लेखक ने प्रारम्भिक पद्यों में अपने परिचय के संबंध में संकेत किया है। उसने लिखा है कि प्राचीन मुनियों के निबन्धों से संग्रहीत सूक्ति–मणियों के द्वारा चिकित्सा शास्त्र में व्याप्त जाड्यान्धकार को दूर करने के लिए भावमिश्र ने इस भाव प्रकाश की सरंचना की है। अध्यान्त में पुष्पिकाओं, इति श्री लटकनतनय श्रीमर्नमश्रभावविरचित भावप्रकाश से पता चलता है कि इनके पिता का

*परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैजाबाद (उ०प्र०)

1. भावप्रकाश का अर्थ भाव–शास्त्रीय तथ्यों एवं द्रव्यों पर प्रकाश या भावमिश्र के द्वारा प्रस्तुत दोनों हो सकता है।

नाम लटकन मिश्र था। इनके जन्म स्थान के विषय में कुछ विद्वान भावमिश्र को कान्यकुब्ज या वाराणसी का मानते हैं (2) पर उन लोगों ने पुष्टीकरण हेतु कोई साक्ष्य नहीं दिया है। भावमिश्र ने एक पद्य में विष्णुपद का उल्लेख किया है, इस विष्णुपद से उनका संबंध प्रतीत होता है। विष्णुपद गया में है। "संयाव" पक्वान्नविशेष के लिए उन्होंने "पेरकिया इतिलोके" लिखा है। (3) यह शब्द आज भी मगध में प्रचलित है तथा उत्तर प्रदेश में इसके बदले "गुझिया" शब्द व्यवहृत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भावमिश्र गया या उसके निकाटवर्ती क्षेत्र के निवासी थे। अपने शैव होने का उल्लेख उन्होंने अनेक स्थनों पर किया है। परन्तु ग्रन्थ में मधुसूदन, श्रीपति यदि विष्णु सूचक है तो त्रिदेव एवं हनुमान का उल्लेख छूटा नहीं है।

भावमिश्र का काल

भावप्रकाश में चरक, सुश्रुत, अष्टांग हृदय एवं अष्टांगसग्रंह, रूपविनिश्चय, वृन्द कृत सिद्ध योग, चिकित्साकलिका, चक्रदंत, हारित, जेज्जट, रसमाला, अमरकोष, धन्वंतरिनिघण्टु, मदनपाल निघण्टु, शार्ङ्गधर, रसेन्द्रमंगल, रसरत्नाकर, रसेन्द्रचिन्तामणि रसेन्द्रसार संग्रह, रसरत्नसमुच्चय, रसरत्नप्रदीप, त्रिशती चन्द्रमौलि, बराहमिहिर, राजनिघण्टु, वृद्धसुश्रुत, आत्रेय, धन्वन्तरि, खरनाद, भेड़, अग्निवेश, रसहृदयतंत्र, रसामृत तन्त्रान्तर, जलूकर्ण, पराशर, क्षारपाणि, दिवेदास, वृद्धवागभट्ट, बाग्भट, बैदेह, वंगसेन, वृन्दटीका, गदाधर, हृढ़वल, रसप्रदीप, द्रव्यगुण ग्रन्थ, करंयप, गुणरत्नमाला, काशीखंड विष्णुधर्मोत्तर पुराण का विवरण मिलता है। (4) भावमिश्र ने शार्ङ्गधर संहिता का विशेष रूप से अनुसरण किया है तथा इनके ग्रन्थ में मदनपाल निघण्टु का पूरा उपयोग हुआ है। अहिफेन, भंगा, पारसकियनानी, आदि द्रव्य इसी से लिये गये हैं।

मदनपाल निघण्टु की रचना 1347 ई. में पूरी हुयी थी तथा दूसरी ओर 17वीं शती के ग्रन्थ योगरत्नाकर, योगतरंगिणी तथा लोलिम्बराज

---

2. उपोदघात, प्रत्यक्ष शरीरम्, पृ. 51, जॉली : इन्डियन मोडिसिन (अनुवादक, सी.जी. काशीपूर) पूना 1951.
3. भावप्रकाश : 2/62/55, श्रीकृष्णचन्द्र भुणेकर कृत टीका, चौखम्बा 1969 वाराणसी।
4. डॉ० प्रियव्रत शर्मा: भावमिश्रः एलैंडमार्कइन हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिशिनः जर्न. रि. इण्डि. मेडि., 1972, 7 (1)

ने भाव प्रकाश का उल्लेख किया है। हर्षकीर्ति (17वीं शती) ने अपने ग्रन्थ योगचिन्तामणि में रतिबल्लभ पूगपाक, कामेश्वरमोदक आदि योग भावप्रकाश से लिये हैं। फिरंगज–व्रण (सिफलिस) की चिकित्सा का प्रथम बार उल्लेख इसी ग्रन्थ में हुआ है।

इस रोग का प्रसार फिरंगियों (पुर्तगाली एवं यूरोपीय) के द्वारा लगभग 15वीं शती में हुआ था। इस रोग के निदान हेतु रस कर्पूर, चोवचीनी (द्वीपात्तर वचा) का उपयोग सर्वप्रथम भावप्रकाश में वर्णित है।

भावमिश्र ने पश्चाद् देश, पश्चिम देश, परद्वीप आदि शब्दों का प्रयोग किया है। मुगलों के लिए "मुदगल " शब्द का उपयोग हुआ है। इससे उनकी स्थिति मुगलों के काल मे सूचित होती है। इसी प्रकार मलेच्छ या "यवन" शब्द भी मुसलमानों के संदर्भ में हैं।

भाव प्रकाश की प्राचीनतम पाण्डुलिपि जम्मू पुस्तकालय में है। इसकी तिथि सन् 1665 सर्वमान्य है। इस प्रकार भावमिश्र का काल 16वीं शती सिद्ध होता है।

भावप्रकाश का विषय विभाग

यह ग्रन्थ प्रथम तीन खण्डों में विभक्त है। पूर्वखण्ड, मध्यम खण्ड और उत्तर खण्ड। पूर्वखण्ड के प्रथम भाग में आयुर्वेदावतरण से प्रारम्भ कर सृष्टि प्रकरण, गर्भ प्रकरण, वात प्रकरण, दिनऋतुचर्या प्रकरण तथा मिश्र प्रकरण वर्णन किया गया है। द्वितीय भाग में, मान परिभाषा, भेषजविधान, धात्वादि शोधन मारण विधि, स्नेहपान विधि, पंचकर्मविधि, धूम्रपान विधि और रोग परीक्षण प्रमुख हैं। मध्य खण्ड में चार भाग हैं। प्रथम भाग में ज्वर से संग्रहणी तक, द्वितीय भाग में अर्श से बात रक्त तक, तृतीय भाग में शूल से भग्न तक और चतुर्थ भाग में नाडीव्रण से नाल रोग तक का वर्णन है। इस प्रकार इस खण्ड में 71 अध्यायों में चिकित्सा का निरूपण किया गया है। उत्तर खण्ड में केवल वाजीकरण और रसायन का विवरण है।

भावमिश्र का अवदान

भावमिश्र ने आयुर्वेद के विविध क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण अवदान किये हैं। उन्होंने परम्परागत ज्ञान को तत्कालिक ज्ञान तथा अपने पाण्डित्य एवं

चिकित्सकीय अनुभवों से परिष्कृत एवं विकसित किया। इनका संक्षेप में वर्णन निम्न है —

मौलिक सिद्धान्त :

भावमिश्र ने प्राचीन संहिताओं से प्रतिपादित सिद्धान्तों को संक्षिप्त एवं विशद रूप दिया। यथा —

1 आयुर्वेद की प्राचीन परिभाषा के साथ साथ व्यवहारिक परिभाषा दी[5]।

2 पंचमहाभूतों को सरलता से स्मरण रखने हेतु उनके नाम "व" अक्षर से दिये[6]।

3 शरीर का वर्णन सुश्रुतानुसार है परन्तु यकृत का वर्णन अति स्पष्ट है। ओज को अष्टविन्द्वत्मक तथा अग्नीषोमीय कहा गया है। जीवन की स्थिति सम्पूर्ण शरीर में मानी गयी है[6,7,8]।

4 अष्ट मांगलिक द्रव्यों के वर्णन के साथ ही सूतिक गृह को आठ हाथ लम्बा तथा 4 हाथ चौड़ा होना चाहिये तथा इसके द्वार को उत्तर या पूर्व होने के विधान को वर्णित किया है[9,10]।

द्रव्य गुण :

भावमिश्र के पूर्व मदनपाल ने, मुसलमानों के संपर्क से व्यवहृत द्रव्यों के अतिरिक्त निम्न नवीन द्रव्यों का सन्निवेश भावप्रकाश में किया है—पारसीक वचा, द्वीपान्तरवचा, आकारकरभ, पुदीना, छोहारा, दारूसिता, मार्कण्डिका, कलम्बक, सौवीर, चन्द्रशूर, कुलंजन, आम्रगन्धि हरिद्रा, अरण्यहरिद्रा, चुक्र, लता कस्तूरी, गन्ध कोकिला, गन्धमालती, चिल्लक, चर्मकारालुक, आम्रावर्त, कुमुदबीज, चीनाक, चिचिण्डा, गर्जर, आलुक, सैतता तथा सर्जक तैल।

कुछ द्रव्यों के जैसे, पुष्कर मूल, स्वर्ण क्षीरी, कर्पूर, कुंकुम, तगर, अश्मत्तक, करञ्ज, गजपिप्पली, वृद्धकारक के विशिष्ट रूपों के उपयोग का वर्णन भी भावमिश्र की विशेषता है।

---

5. भाव प्रकाश : 1/1/3-4,
6. भाव प्रकाश : 1/2/21,
7. भाव प्रकाश : 1/3/183, 1/3/176,
8. भाव प्रकाश : 1/3/198,
9. भाव प्रकाश : 1/5/16,
10. भाव प्रकाश : 1/3/341,

खनिजों में स्वर्ण पाँच प्रकार का, रजत तीन प्रकार का तथा यशद का वर्णन किया गया है। मुक्ता के अनेक स्रोतों का वर्णन भी मिलता है। आधुनिक मुजफ्फरपुर में प्राप्य कदली–प्रजातियों, यथा, माणिक्य, चम्पक आदि के भेद एवं गुणों का वर्णन भी भावमिश्र की विशेषता रही है।

द्रव्यों की प्राप्ति में कठिनाई को देखते हुये उन्होंने एक तत्सम सूची भी, इस संकेत के साथ दी है कि यह द्रव्य प्रमुख द्रव्यों के प्रतिनिधि नहीं हो सकते।

भावमिश्र ने द्रव्यों के परीक्षण की विधि[11] तथा प्रायोज्य[12] अंगों का सोदाहरण प्रथम बार उल्लेख किया है।

द्रव्य गुण के मौलिक सात पदार्थों को अतीव रुचिपूर्ण ढंग से एक पद्य में निबंधित कर, अपनी प्रतिभा का प्रर्दशन किया है।[13] इतना ही नहीं, भावमिश्र ने दीपन–पाचन की परिष्कृत परिभाषा भी प्रथम बार स्पष्ट शब्दों में प्रदान की है[14]।

उन्होंने भूमि के अनुसार द्रव्यों के गुणों का जो वर्णन किया है वह अति वैज्ञानिक है[15]।

काव्यः- इस क्षेत्र में भावमिश्र ने शार्ङ्गधर का विशेष अनुकरण किया है। रोगी की परीक्षा में, दर्शन, स्पर्शन एवं प्रश्न–त्रिविधि परीक्षा के साथ अष्ट स्थान परीक्षा में नेत्र, मूत्र, नाड़ी तथा जिह्वा, का ही वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि बाकी चार परीक्षायें उस काल में प्रयोग नहीं की जाती थीं। उन्होंने सुश्रुतोक्त चिकित्सा तथा माधव निदान की चिकित्सापद्धति में कुछ परिवर्तन कर उसे ग्रहण किया है। रोग–वर्णन प्रसंग में निम्नांकित तथ्य ध्यान देने योग्य हैं :

1 उन्होंने वात व्याधि की तरह पित्त व्याधि तथा श्लेष्म व्याधि का स्वतंत्र वर्णन अलग–अलग किया है।

---

11. भाव प्रकाश : 1/6/111-120, 12. भाव प्रकाश : 1/5/122,
13. भाव प्रकाश : 1/6/196, 14. भाव प्रकाश : 1/6/213-237,
15. भाव प्रकाश : 1/5/115

2 शार्ङ्गधर के अनुसार वातपित्त शूल प्रकरण से युक्त है और अम्लपित्त के साथ श्लेष्मपित्त का वर्णन पृथक अध्याय में हैं।

3 उदर रोगों के अतिरिक्त प्लीहकृत रोगों का वर्णन पृथक अध्याय में है।

4 मेदोरोग के बाद कार्श्यरोग का पृथक अध्याय है।

5 वृद्धि प्रकरण में व्रध्न रोग का वर्णन है।

6 उपदंश के अतिरिक्त, फिरंग रोग का वर्णन चिकित्सा के साथ पृथक अध्याय में किया गया है।

7 मसूरिका (चेचक) प्रकरण में शीतला का वर्णन है।

8 एक पृथक अध्याय में, सर्वप्रथम–सोम रोग, मूत्रातिसार तथा शैय्यामूत्र का वर्णन है।

9 सर्वप्रथम भावमिश्र ने प्रभावी गर्भनिरोधकों का तथा सूतिका रोग की चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया है।

10 वाजीकरण प्रकरण में कहा गया है कि इसका विधान धनी, कामी, बहुपत्नी, कामुक वृद्ध, क्लीब और क्षीणशुक्र व्यक्तियों के हेतु किया गया है। यह मुगलकालीन सुरा–सुन्दरी के वातावरण के अनुकूल एवं स्वाभाविक था।

वाजीकरण प्रकरण में कहा गया है कि कामेश्वरमोदक, आकारकरभादि चूर्ण, मृतसंजीवनी सुरा, श्रीगोपाल तैल, सिद्ध फलदायक हैं।

11 भावमिश्र ने सर्वप्रथम ने सर्वप्रथम कर्पूरासन, अहिफेनासव, आदि नवीन सिद्ध योगों को लोक प्रचलित किया था।

भावमिश्र ने अपनी उर्वर मेधा से मौलिक सिद्धान्त, द्रव्यगुण तथा चिकित्सा के क्षेत्र में, जो अभिनव प्रयोग किये तथा फलस्वरूप उन्होंने आयुर्वेद को मात्र लोकप्रिय ही नहीं वरन् मध्यकाल में, जब सामाजिक उथल–पुथल चल रही थी, इसे उपयोगी और प्रभावशाली भी बनाया। परिणामतः उनके अवदान की स्तुति करती भाव–प्रकाश की अनेक टीकायें, उनके योगदान की यशोगाथा आज भी कह रहीं हैं।

भारतेन्दु काल में विज्ञान के लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास

डॉ० गिरीश चन्द्र चौधरी*

सन् 1829 ई० की बात है। उस वर्ष काशी में जनवरी मास के एक दिन खबर छपी कि "फिरंगी भाप से नाव चलायेगा"। यह खबर तत्कालीन प्रसिद्ध हिन्दीसेवी और सरकारी अफसर राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" द्वारा प्रकाशित बनारस अखबार में निकली। इस शहर में गंगा के कारण नाव से स्वाभाविक पारम्परिक प्रेम है। नागरिकों में यह जिज्ञासा हुई कि इसे देखा जाए। इस दिन क्या हुआ था वह सदृशः उस अखबार में जो छपा था, देता हूँ।

"वह दिन मेरी आंखों के आगे घूमता है और कल का सा मालूम होता है। शायद 1829 ई० या करीब उसके था कि पहली दुखानी किश्ती जिसका नाम शायद डायना था कलकत्ते से बनारस आयी। शहर में शोर मचा कि फिरंगी अब आग से नांव चलायेगा। गंगा किनारे तमाशाइयों की ऐसी भीड़ हुई कि खड़े रहने को भी जगह नहीं मिलती थी। लोग गले तक पानी में उतर गए। मेरे बाप जो उस वक्त यहाँ टकसाल थी उसके मास्टर मशहूर जेम्स प्रिन्सिप के बड़े दोस्त थे, उन्हीं के साथ मुझे लेकर देखने गए। जब चन्द्रवती के करीब की सात कोष के फासले पर होगी किश्ती पहुंची और धुआं दिखाई देने से माधोराय के धरहरे यानी आलमगीरी मस्जिद के मीनार पर फरहरा हिल गया बड़ी हलचल मची। देखते ही देखते यह दुखानी किश्ती भी आन पहुंची और मनकर्णिका घाट के सामने लंगर अंदाज हुई। चूंकि पूरे जोर से आई उसकी लहर बहुतेरों के सर पर जो गले तक पानी में खड़े थे, फिर गई और डूब गये, पता न लगा। मैं अपने बाप के साथ किस्ती पर गया और किश्तीवान यानी कप्तान ने जो कुछ उसमें देखने के लायक था सब दिखला दिया। उस वक्त किसको ख्याल था कि यह फिरंगी गाड़ी भी आग से चलावेंगे।"

*भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि विज्ञान अपने चमत्कारों द्वारा जनता में लोकप्रिय था क्योंकि सबको एक अचम्भे में डाल देता था जिसका कारण शिक्षा का अभाव था और विज्ञान की शिक्षा तो विशेषकर हिन्दी प्रदेशों में बहुत कम थी फिर भी प्रबुद्ध लोग समाचारों द्वारा विज्ञान तथा प्रविधि को लोकप्रिय बना रहे थे।

इस दिशा में जो प्रयास भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का हुआ वह उल्लेखनीय है। अपनी साप्ताहिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' में वे हमेशा विज्ञान सम्बन्धी किसी खोज का विवरण अवश्य देते थे। इसको वे समाचार रूप में तथा पत्र रूप में लिखते थे। जैसा कि मालूम है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में कई यात्रायें की थीं जिनका विवरण वे यात्रा पत्र से देते थे, यह विवरण हिन्दी के यात्रा साहित्य की शुरुआत भी है जो उनसे प्रारम्भ हुई। ऐसा ही एक पत्र उन्होंने 30 अप्रैल सन् 1871 के अंक में सम्पादक के नाम छापा था। यह यात्रा–विवरण रुड़की से वहाँ के प्रविधि कौशल पर लिखा गया था जिसका विवरण इस प्रकार है।

(कविवचन सुधा खण्ड 3 अंक 1, 30 अप्रैल सन् 1871 के अंक में छपा सम्पादक के नाम पत्र)

श्रीमान् कवि वचन सुधा संपादक महोदयेषु!

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है। रुड़की शहर अंग्रेजों का बसाया हुआ है। इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं। एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिसमें जल चक्की, पवन चक्की और भी कई बड़े–बड़े चक्र अनवर्त चक्र में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों की भांति फिरा करते हैं और बड़ी–बड़ी धरन ऐसी सहज में घिर जाती है कि देखकर आश्चर्य होता है। बड़े–बड़े लोहे के खम्भे एक क्षण में ढ़ल जाते हैं कि सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है। जो बात है आश्चर्य की है। यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है। इसके देखने से शिल्प विद्या का बल और अंग्रेजों का चातुर्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है। न जाने वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वरन करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता। स्थल में जल कर रखा है और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहाँ पुल के ऊपर नाव चलती

है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उसके परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े–बड़े बने हैं। हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था।

विदित हो कि यह श्री गंगाजी की नहर हरिद्वार से आई हैं और इसके लाने में यह चातुर्य किया कि इसके जल का वेग रोकने हेतु इसको सीढ़ी की भांति लाये हैं। कोस–कोस डेढ़–डेढ़ कोस पर बड़े–बड़े पुल बनाये हैं यही मानो सीढ़ियाँ हैं और प्रत्येक पुल के ताखों से जल को नीचे उतारा है। जहाँ–जहाँ जल को नीचे उतारा है वहाँ बड़े–बडे सीकड़ों में कसे हुये दृढ़ तखते पुल के ताखों के मुँह पर लगा दिये हैं और उनके खीचनें के हेतु ऊपर चक्कर रखे हैं। उन तख्तों से ठोकर खाकर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है। एक तो उसका महान शब्द दूसरे उसमें से फुहारे की भांति जल का उबलना और छीटों का उड़ना मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तख्तों को उठा लेते हैं। फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता और ये मल्लाह दुष्ट वहाँ भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्र में बहुत दूर निकल जाती है पर चढ़ने में बड़ा परिश्रम होता है। यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिये।

इसके आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है। वर्षा के कारण वे नदियाँ क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं। और भी मार्ग में जो नदी मिलीं उनकी यही दशा थी। उनके करारे गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़–उखाड़ के बहाये लाती थीं। वेग ऐसा कि हाथी न सम्हल पा सके आश्चर्य यह कि जहाँ अभी डुबाव था वहां थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और आगे एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है। यह भी देखने योग्य है। सीधी रेखा की चाल से नहर आई है और बेड़ी रेखा की चाल से नदी गई है। जिस स्थान पर दोनों का संगम है वहाँ नगर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार

बनाकर उसमें काठ के तख्ते लगाये हैं जिससे जितना पानी नदी में जाने देना चाहे उतना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहे उतना नहर में छोड़े।

जहाँ से नहर श्री गंगाजी में से निकला है वहाँ भी ऐसा ही प्रबन्ध है और गंगाजी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परन्तु वहाँ नील धारा आ मिली है वहाँ फिर ज्यों की त्यों हो गई है।

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आये। एक पीले रंग का पक्षी छोटा बहुत मनोहर देखा गया। बया एक छोटी चिड़िया है उसके घोसले बहुत मिले। ये घोसले सूखे बबूल काँटे के वृक्ष हैं और एक–एक डाल में लड़ी की भांति बीस–बीस, तीस–तीस लटकते हैं। इन पक्षियों की शिल्प विद्या तो प्रसिद्व ही है लिखने का कुछ काम नहीं है। इसी से इनका सब चातुर्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के काँटे के वृक्ष में घर बनाया है। इसके आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है जिसका वृतांत अगले नंबरों में लिखूँगा।"

हरिश्चन्द्र की जागरूकता का प्रमाण यह भी है कि वह विज्ञान की उन्नति चाहते थे। "कविवचनसुधा" में इस विषय पर लेख भी निकले। 9 मार्च 1874 के अंक में लिखा ––

"(विलायत में) एक लक्ष बाइलर हैं, भाप के यन्त्र हैं और एक–एक की शक्ति 40 घोड़ों की है। एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो इस हिसाब से चालीस लाख घोड़े अर्थात् तीन करोड़ बीस लाख मनुष्यों का काम इन यन्त्रों के द्वारा होता है। 5 मनुष्य तो काम करते–करते थक जाते हैं पर ये यंत्र कभी नहीं थकते और मनुष्य के समान चार आना आठ आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप करने से चलने लगते हैं–परेदश के कला कौशल ने इस देश पर चढ़ाई किया ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।"

समाचारों में जो विज्ञान समाचार वे देते थे उसका एक उदाहरण 'कवि वचन सुधा' के अंक 19 मार्च 1874 में छपा था। इस प्रकार भारतेन्दु बाबू अपने समाचारों द्वारा विज्ञान और प्रविधि दोनों को लोकप्रिय बना रहे थे। प्रविधि से तो उनको इतना लगाव था कि अपने जीवन के अंतिम वर्षों में जो चार इच्छाएं उन्होंने कहीं थीं उनमें एक

यह भी थी कि मैं अपने जीवन में उत्तर भारत में प्रविधि का एक महाविद्यालय स्थापित कर पाता। ऐसी लोकप्रियता उन्होंने विज्ञान और प्रविधि को दे रखी थी।

भारतेन्दु बाबू के समकालीन बाबू देवकी नन्दन खत्री ने तिलस्म के रूप में विज्ञान को अपने उपन्यासों "चन्द्रकांता" एवं 'चन्द्रकांता संतति' द्वारा प्रस्तुत किया जो आज भी इतनी लोकप्रिय है, कहने की आवश्यकता नहीं। उनका उदाहरण जूल्स वर्न से दिया जा सकता है जो फ्रांस के एक गांव में बैठे–बैठे "वायेज टू मून" नामक ग्रंथ लिखकर अमर हो गए जिसकी कल्पना को बहुत कुछ अपोला 11 ने चन्द्रमा पर जाकर बहुत कुछ ठीक सिद्ध किया। खत्री जी के पश्चात् काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने विज्ञान के लिए पहले पारिभाषिक शब्द कोष की रचना करवायी। यह एक उचित प्रयास था कि पहले विज्ञान पढ़ाने के शब्दों की हिन्दी में जरूरत थी। उस समय जो रचना 1898 में प्रारम्भ हुई वह एक शब्दकोश रूप में छपी। इस शब्दावली को उद्देश्य क्या था वह इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने। वे इस ग्रंथ के प्रेरक बने तथा विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में सहायक हुए। इस शब्दकोश में शब्दों की गढ़न विशेषकर रसायन शास्त्र पर विशेष रोचक बातें हुई हैं। इनमें उल्लेखनीय है तत्वों के नामों की। अंग्रेजी के *कोबाल्ट* को कोबाल्ट ही न लेकर *गुह्यक शून* रखा गया था। कारण दिलचस्प है। लिखा गया कि कोबाल्ट शब्द जर्मन ख़निजों का है। वे इसकी खान में इस नाम के एक पिशाच की कल्पनाएँ करते थे जो खानों में रहकर खनिकों को मार डालता था विशेषकर कोबाल्ट तत्व की खानों में अतः इस तत्व का नामकरण उसी पिशाच से हुआ परन्तु हिन्दी में इसी भावना को लेकर गुह्यक नाम दिया गया। तात्पर्य यह कि शब्दों को *सदृशः* न लेकर उसकी भावना को लेकर संस्कृत का सहारा लेते हुए गढ़ा गया न कि विदेशी शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया गया। ठीक लगता है कि अपनी भाषा द्वारा उन भावनाओं की अभिव्यक्ति करायी जावे ऐसी आधारभूत सोच थी। संभवतः लोकग्राह्य होने का उद्देश्य विज्ञान को पूरा कराना था अतः ऐसी सोच द्वारा शब्द गढ़े गये। अन्य उदाहरणस्वरूप लीथियम तत्व है जो कि लोहित वर्ण का होता

है अतएव इसे *अरूणक* कहा गया। बंगला कोश में लोहतिक कहा गया जो लोह से मेल खाता है अतः उचित नहीं लगता। इस प्रकार अनेक उदाहरण सभा के शब्दकोश में दिये गये जो बहुत रोचक हैं। इसी प्रकार आक्साइड के लिए दग्ध शब्द का प्रयोग जो दाहकवायु आक्सीजन से बने। साथ ही आक्साइड हेतु (फेरिक) क प्रत्यय द्वारा लोहक दग्ध तथा फेरस हेतु कोई प्रत्यय न लगाकर लोह दग्ध ही लिखा। इस प्रकार पोटैसिक आवसाइड हेतु दग्ध *पोटाशक* का प्रयोग लिखा गया। इस कोष में लगभग शताब्दि पूर्व किये प्रयास पारिभाषिक शब्दों हेतु बहुत ठीक भी लगते हैं। अनेक प्रयास हुए उनका सार बहुत कुछ ग्राह्य है जो उनके वर्णन से प्राप्त होता है।

स्वतंत्रतापूर्व के ये प्रयास जनमानस को विज्ञान के प्रति रुझान उत्पन्न करने वाले बने जो कि साहित्यकारों की देन हुई। अपनी कहानियों, कविता, कथा, यात्रा विवरणों तथा उपन्यासों के जरिए उन लोगों ने जनता में एक वातावरण तैयार कर सामान्य जन की भी मेधा को विज्ञान साथ ही प्रविधि की ओर कार्य करने को प्रवृत्त किया फलतः सामान्य जनता इसकी पढ़ाई में लगी। कठिनाई जब मातृभाषा में शब्दों की आयी तो उसकी रचना करवाई गयी। वही अच्छी आधारशिला रखी गयी कि शब्द का अनुवाद ठीक–ठीक संस्कृत की सहायता से प्रस्तुत होकर भारतीयता से ओतप्रोत हो तभी वह भारतीय को ग्राह्य होगा। अतः आज भी उनके गढ़े पर्याय शब्द तुरन्त ग्राह्य होते हैं। यह प्रेरणादायक कार्य अवश्य इस योग्य है कि आज पारिभाषिक शब्दावली का पुनरीक्षण किया जावे और उसे संशोधित भी किया जावे। तभी इस गोष्ठी का वास्तविक लाभ जनता को मिलेगा।

मराठी में विज्ञान के लोकप्रियकरण में शंकरबालकृष्ण दीक्षित का योगदान

(स्वतन्त्रतापूर्व मराठी द्वारा जो विज्ञानलोकप्रियकरण हो रहा था उसका लाभ हिन्दीभाषियों को स्वतन्त्रता के कई वर्षों बाद मिला। तो भी शंकरबालकृष्ण दीक्षित का योगदान प्रशंसनीय कहा जायेगा।)

रामधनी द्विवेदी*

स्वतंत्रतापूर्ण विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए अन्य भाषाओं की अपेक्षा मराठी में अधिक प्रयास हुए। 19वीं सदी के अंतिम दशकों में महाराष्ट्र के अनेक प्रमुख शहरों, जैसे पुणे और थाणे से निकलने वाले पत्रों में विज्ञान विषयक लेख होते थे और उन पर वाद–विवाद होता था, संपादक के नाम पत्र तक छपते थे। यद्यपि ये लेख मुख्यतः पंचांग शोधन, गृह, नक्षत्र, वेध और ग्रह गणित से ही सम्बन्धित होते थे लेकिन इससे पाठकों में जिज्ञासा जगती थी और उनमें खगोल विज्ञान के प्रति रुचि पैदा होती थी। इस तरह के लेख लिखने वालों में बापू देव शास्त्री, विसा जी रघुनाथ लेले, कृष्ण शास्त्री गोडबोले, बाल गंगाधर तिलक, केरोपंत क्षत्रे आदि प्रमुख थे। इनके लेख ज्ञानप्रकाश, केसरी, अरुणोदय, इन्द्रप्रकाश, पुणे वैभव आदि पत्रों में प्रकाशित होते थे।

लेकिन खगोल ज्योतिष और पंचांग शोधन के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण कार्य श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने किया। इनके द्वारा लिखित ग्रंथ आज भी संदर्भ ग्रंथ के रूप में व्यवहृत हो रहे हैं। ग्रह गणित, ग्रह वेध और पंचांग शोधन के लिए दीक्षित जी के कार्य अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कार्य हैं। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन पत्रों में कई चर्चित लेख लिखे, अनेक पुस्तकों की रचना की लेकिन उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'भारतीय ज्योतिष शास्त्रा चा इतिहास आणि परिचय' है। यह पुस्तक सन् 1888 अक्टूबर में लिखी गयी और 1896 में आर्य भूषण प्रेस से प्रकाशित हुई। इसे 1957 में हिन्दी समिति लखनऊ ने श्री शिवनाथ झारखंडी से अनुवाद कराकर 'भारतीय ज्योतिष' के नाम से प्रकाशित किया।

---

*समाचार सम्पादक, अमृत प्रभात, इलाबाद

स्व० बालकृष्ण दीक्षित महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के दापोली तालुके के मुरूड़ गांव में 20-21 जुलाई, मंगलवार 1853 को पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम बालकृष्ण तथा मां का नाम दुर्गा था। उनकी शिक्षा गांव के ही प्राइमरी स्कूल और बाद में वहीं के सरकारी स्कूल में हुई। उसी समय उन्होंने संस्कृत और वेद का अध्ययन किया। उसके बाद दो वर्ष तक अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया और 1870 में पूना के ट्रेनिंग कालेज में दाखिला लिया जहाँ से प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण की। वहाँ पढ़ते समय तक प्रतिदिन सुबह एक घंटा अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने जाते थे। 1874 में मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास की। उसी वर्ष से वह अध्ययन करने लगे। उन्होंने कई विद्यालयों में अध्यापन किया और जिस समय उन्होंने ग्रंथों की रचना की उस समय उनकी अवस्था 35 वर्ष थी। जिस समय 'भारतीय ज्योतिष' मराठी में छपी उसके पहले तक वे मराठी में ही विद्यार्थी बुद्धिवर्धनी, सृष्टि चमत्कार, ज्योतिर्विलास और धर्ममीमांसा नामक पुस्तकें लिख चुके थे। उन्होंने राबर्ट सेवेल नामक विद्वान के साथ मिलकर अंग्रेजी में 'इंडियन कैलेंडर' नामक ग्रंथ लिखा। उसमें सन् 300 ईस्वी से 1900 तक सौर और चांद्रमासों के अधिमासों का विस्तृत वर्णन है। यह ग्रंथ जून 1896 में प्रकाशित हुआ।

'भारतीय ज्योतिष' नामक ग्रंथ लिखने की प्रेरणा उन्हें पूना के 'दक्षिण प्राइज कमेटी' की उस विज्ञप्ति से मिली जिसमें पंचांगों की दुरवस्था पर विचार कर ज्योतिष के इतिहास सहित ग्रंथ लिखने का आह्वान किया गया था। इसके लिए 450 रुपया पारितोषिक रखा गया था। ग्रंथ लिखने की अवधि 1886 तक निर्धारित की गयी थी। दीक्षित जी ने यह जिम्मा लिया लेकिन लेखन कार्य शुरू करने के पहले प्राचीन और तत्कालीन उपलब्ध ग्रंथों के अध्ययन में ही समय निकल गया तो उन्होंने 'दक्षिण प्राइज कमेटी' से समय बढ़ाने का आग्रह किया। समय बढ़ा और दीक्षित जी ने नवम्बर 1887 में ग्रंथ लिखना शुरू किया जो अक्टूबर 1888 तक पूर्ण हुआ। ग्रंथ पसंद किया गया और उन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। दीक्षित जी ने इस ग्रंथ को लिखने के पहले पूना के आनन्दाश्रम के ज्योतिष संबंधी सभी 500 ग्रंथ पढ़ डाले हालांकि उनका कहना था कि उस समय तक ज्योतिष ग्रंथों की सूची में लगभग दो सौ ग्रंथ थे।

हिन्दी समिति ने जो अनुवाद प्रकाशित किया है, अनुक्रमणिका सहित 711 पृष्ठों का है। इसके मुख्यतः दो भाग हैं। पहला भाग वैदिक काल तथा वेदांग काल में ज्योतिष का विकास है और दूसरा भाग ज्योतिष सिद्धांत कालीन ज्योतिषशास्त्र का इतिहास है। इसके अतिरिक्त संहिता स्कंध, जातक स्कंध भी है और उपसंहार में पश्चिमी विद्वानों के खगोलशास्त्र संबंधी विचार और उनकी समीक्षा है। प्रथम भाग में वेदों की संहितायें, ब्राह्मणों और उपनिषदों में आये ज्योतिष संबंधी विषयों का वर्णन है। इसी में वेदांग, स्मृति और महाभारत में वर्णित ज्योतिष विषयों का भी वर्णन है हालांकि लेखक ने पुराणों और बाल्मीकि रामायण के ज्योतिष वर्णनों को छोड़ दिया है। पुस्त्क का द्वितीय भाग सिद्धान्तकालीन ज्योतिष इतिहास है जिसमें प्राचीन सिद्धान्त पंचक से तत्कालीन सिद्धांत ज्योतिष विद्वानों में सुधाकर द्विवेदी तक के ग्रंथों की समीक्षा है।

'भारतीय ज्योतिष' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह मात्र ज्योतिष ग्रंथों की समीक्षा नहीं करता अपितु समकालीन विज्ञान लेखन, विज्ञान के लोकप्रियकरण के स्वरूप को भी दर्शाता है। जैसे इसमें बताया गया है कि तत्कालीन ज्योतिषी किस तरह ग्रह, नक्षत्र वेध में कितनी रुचि लेते थे। इसमें अनेक ऐसे घटनात्मक वर्णन हैं जो भारतीय खगोल विज्ञान अध्ययन के मील के पत्थर हैं। पुस्त्क में पृष्ठ 579 पर बताया गया है कि 19 अगस्त 1887 को लगे सूर्यग्रहण में ग्वालियर में सूर्य विम्ब का लगभग (7/100) भाग का ग्रहण छाया था और विसाजी रधुनाथ लेले ने केवल नंगी आंखों और शीशे पर काजल लगाकर दो प्रकार से देखा था और वह ठीक से दिखाई भी दिया था। पुस्तक में लेले का यह कथन भी उद्धृत है कि इतना अल्पग्रास भी नेत्रों से देखना भयावह है। इससे नेत्रों को अत्यधिक हानि पहुँचने की संभावना रहती है। पुस्तक के पृष्ठ 463 पर बताया गया है कि मिरज निवासी नरसो गणेश भानु ने ग्रहों के वेध के लिए बनाये जाने वाले यंत्रों के चित्र बनाकर उनके पास भेजे थे। ये यंत्र संभवतः पीतल के ढलवाँ पात्रों से बनाये जाते थे। गणेश भानु सामान्य गृहस्थ थे, किंतु खगोल विज्ञान में उनकी रुचि थी। इसी तरह पुस्तक में ग्रहों के वेध के लिए किये जा रहे प्रयासों का भी वर्णन है। दीक्षित जी का कहना है कि पुणे के अनेक सामान्य जन यह जानते थे कि ग्रह और नक्षत्र भी सूर्य की

तरह पूर्व में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होते हैं और ध्रुव स्थिर नहीं है। खगोल संबंधी यह ज्ञान विज्ञान के लोकप्रिय होने का प्रमाण नहीं तो और क्या है?

दीक्षित जी ने पृष्ठ 413 पर बताया है कि सन् 1867 और 1868 में चिंतामणि रघुनाथ आचार्य ने, जो मद्रास वेधशाला में नियुक्त थे, दो रूपविकारी तारों की खोज की थी और ऐसी खोज करने वाले हिन्दुओं की सूची में उनका नाम प्रथम है। सन् 1874 में शुक्रग्रस्त सूर्यग्रहण हुआ था और रघुनाथाचार्य ने उसका गणित करके अनेक भाषाओं में प्रकाशित कराया था।

इस तरह हम देखते हैं कि श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षित ने मराठी में विज्ञान, विशेष तौर से खगोल विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में ऐतिहासिक योगदान किया।

स्वतन्त्रतापूर्व वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण और वाङ्मय-प्रणयन में डॉ० रघुवीर की भूमिका

हरिमोहन मालवीय*

हिन्दी की वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माणकर्ताओं में प्राच्य विद्याविद् महान कोशकार डॉ० रघुवीर का नाम सर्वप्रमुख है। 30 दिसम्बर सन् 1902 को रावलपिण्डी में जन्में डॉ० रघुवीर ने सन् 1934 में 'सरस्वती बिहार' नामक संस्था की स्थापना की थी। इसी संस्था के तत्वावधान में आचार्य जी ने पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का कार्य प्रारंभ कर दिया था। सन् 1946 में आपने अपना मुख्य कार्यालय नागपुर में बनाया और 1947 में नागपुर विश्वविद्यालय के निमित्त हिन्दी और मराठी में उच्च शिक्षा के लिए पुस्तकों के निर्माण का दायित्व वहन किया था। इसके पूर्व सन् 1946 में मध्य प्रदेशीय सरकार ने हिंदी और मराठी वैज्ञानिक ग्रंथों की रचना कराकर आपके पांडित्य का लाभ छात्रों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि रसायन शास्त्र विषयक सम्पूर्ण कोश तो आप स्वतंत्रता से पूर्व ही सन् 1944 में प्रकाशित कर चुके थे।

इण्डियन स्कूल आफ माइन्स, धनबाद के तत्कालीन प्राध्यापक श्री निरंजन लाल शर्मा ने[1] लिखा है:

"डॉ० रघुबीर से मेरा पत्र व्यवहार तो 1942 से ही भू वैज्ञानिक शब्दों के संबंध में होने लगा था।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्री निरंजन लाल शर्मा 1943 में लाहौर में भारतीय विज्ञान–उद्योग अनुसंधान परिषद् के भारतीय कच्ची सामग्री तथा औद्योगिक पदार्थों के कोष के सम्पादक मण्डल में कार्य कर रहे थे।

विशद अध्ययन

डॉ० रघुबीर संस्कृत में उच्च अध्ययन करने के बाद इंग्लैंड गये और वहाँ स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज लन्दन विश्वविद्यालय से पी.एच.डी.

---

*742/653, महामना मालवीय नगर, इलाहाबाद

और हालैण्ड से डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की थी। 1930 में आपने लन्दन में सर ग्रियर्सन से मुलाकात की और 1931 में पेरिस में आपने विश्वविद्यालय भाषाविद डॉ० सिल्वलेवी से मिले थे।

डॉ० रघुबीर संस्कृत के ही विद्वान नहीं थे वरन् यूरोपीय भाषाओं, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, लैटिन और ग्रीक आदि के भी जानकार थे। डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा के अनुसार – "वैज्ञानिक विषयों की जानकारी भी उनकी विस्तृत और यथार्थ थी।" आचार्य रघुबीर श्रंद्धाजलि ग्रंथ में हिन्दी के महारथी शीर्षक अपने लेख में डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा ने लिखा है –– "डॉ० रघुवीर ने जिन वैज्ञानिक शब्दों का निर्माण किया है वे ऐसे हैं कि देश की समस्त भाषाओं में सरलता से प्रयुक्त हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक था कि वे शब्द संस्कृत से निकले हों क्योंकि देश की सभी भाषाओं में संस्कृत से बने शब्द पड़े हुए हैं और उनके ग्रहण करने से किसी भाषा में विषमता आने की संभावना नहीं रह जाती। डॉ० रघुवीर ने जितने शब्दों का निर्माण किया है संभवतः उतने शब्दों का निर्माण आज तक किसी ने नहीं किया है।"

पूरे 12–13 वर्षों के गहन–चिन्तन के बाद आचार्य रघुवीर इस निर्णय पर पहुँचे कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी और रूसी के जो विचार जापानी में सफलता से प्रयुक्त हो रहे हैं वे हिन्दी आदि में क्यों नहीं हो सकते? इसी कारण डॉ० रघुवीर ने घोषणा की थी कि हमारी भाषा और लिपि के लिए आज अंग्रेजी की तुलना में चौगुने विकास के स्वर्णिम अवसर है।

कुछ विद्वानों और नेताओं का विचार था कि वैज्ञानिक विषयों की विदेशी शब्दावली को ही पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाय। डॉ० रघुवीर का मत था कि "लाखों संख्या में जो विदेशी पारिभाषिक शब्द हैं उनको अपना लेने का अर्थ है कि सद–सर्वदा के लिए हम हिन्दी भाषा को बिगाड़ लेते हैं। हमारा सम्पूर्ण वैज्ञानिक साहित्य, विदेशी साहित्य की अनुकृति मात्र रह जायगा।..." विदेशी शब्दावली को अपनाने का अर्थ होगा कि हमारे मौलिक चिन्तन का मार्ग सदा के लिए अवरूद्ध हो जायेगा।"

डॉ० रघुवीर ने अपने बृहद कोश की भूमिका में लिखा है––

"भारतीय मध्ययुग से निकलकर आधुनिक युग में पदार्पण कर रहा है। इस युग में आने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी और अन्य

भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के ऐसे प्रत्येक शब्द के लिए, जिसकी साहित्य और विज्ञान में आवश्यकता पड़ती है, भारतीय समानार्थी शब्द उपलब्ध हों। आज विज्ञान लगभग 600 विशिष्ट शाखाओं में बँट गया है। इस कोश में हमारा यह प्रयत्न रहा है कि हम इन सभी शाखाओं में प्रयुक्त पारिभाषिक और अर्धपारिभाषिक शब्दों और मुहावरों के समानार्थी शब्द दें। इस प्रकार के शब्दों की संख्या 20 लाख से अधिक हो सकती है। हमने इस दिशा में सन् 1931 में काम आरम्भ किया था और इस कोश में हम डेढ़ लाख विशिष्ट शब्द और मुहावरे दे सके हैं। इन शब्दों को बनाने में हमने संस्कृत, पाली, प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य का प्रयोग किया है। इसके साथ ही हमने अंग्रेजी–संस्कृत और अंग्रेजी–पाली शब्दों की सूचियां (इन्डेक्स) बनायी हैं जिससे हमें यह पता चल सके कि किस विशिष्ट अंग्रेजी शब्द के लिए भारतीय साहित्य में कौन–कौन से शब्द उपलब्ध हैं। इन डेढ़ लाख शब्दों के बनाने में हमें इस प्रकार के चार लाख इन्डेक्स कार्ड बनाने पड़े हैं। इसके अतिरिक्त हमने द्विभाषी और बहुभाषी कोशों का भी सहारा लिया है। सन् 1943 से 1956 तक हमने अजैव रसायन, जैव रसायन, वैज्ञानिक उपकरणों और रासायनिक रंगों पर चार (देवनागरी, तमिल, बंगाली और कन्नड़) समानार्थी शब्दों के कोश प्रकाशित किये हैं। इसके बाद हमने लगभग 12 शब्दकोश और प्रकाशित किये हैं। इसके साथ ही 34 पाठ्य–पुस्तकें अपनी निर्मित शब्दावली पर बनायी गयी हैं। [2]

डॉ० रघुवीर ने लिखा है कि 1947 के प्रारंभ में मुझे पर्यायों और रसायन, गणित, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और जीवन विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें तैयार करने का काम मध्यप्रदेश शासन ने दिया था।

इस कार्य में नागपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, रीडरों और प्राध्यापकों की सहायता से बी.एस.सी स्तर तक के पर्याय और इंटरमीडिएट स्तर की पाठ्य–पुस्तकें डॉ० रघुवीर के सम्पादकत्व में तैयार हुई थीं। प्रकाशित पुस्तकें हिन्दी और मराठी भाषाओं में थीं। प्रकाशित पुस्तकें थीं–– माध्यमिक बीजगणित, माध्यमिक सान्द्र रेखिक्री, सालिड ज्योमेट्री, माध्यमिक याम–रैखिक (को–आर्डिनेट ज्योमेट्री), माध्यमिक स्थैतिकी (स्टैटिक्स), माध्यमिक प्रवैगिकी (डायनामिक्स), माध्यमिक प्राणिकी (जोलोजी),

माध्यमिक औद्भिदी (बाटनी), माध्यमिक आनुष्ठानिक औद्भिदी (प्रैक्टिकल बाटनी), माध्यमिक भौतिकी, माध्यमिक आनुष्ठानिक भौतिकी (प्रैक्टिकल फिजिक्स) और, माध्यमिक रसायन। इन पुस्तका की संख्याकुल 34 थी। इसमें कुछ पुस्तकों के दो और तीन भाग भी छपे थे। डॉ० रधुवीर ने अपने बृहद कोश के पृष्ठ 19 और 20 में पुस्तकों के नाम के साथ–साथ हिन्दी और मराठी के विज्ञान लेखकों के नाम भी दिये हैं।

संघीय राजभाषा के संदर्भ में "पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण की समस्यायें"[4] नामक ग्रंथ में "पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण" अध्याय में श्री बलराज सिंह सिरोही ने डॉ० रघुवीर द्वारा प्रतिपादित 14 सिद्धांतो की विस्तृत चर्चा की है। इसी के अन्तर्गत विभिन्न विज्ञानों के पारिभाषिक शब्द, वैज्ञानिक प्रतीक शास्त्र, वर्णात्मक एवं अवर्णात्मक प्रतीकों में अन्तर, भारतीय प्रतीकों की उपयोगिता, देवनागरी प्रतीकों की और भारतीय मूल के शब्द उपशीर्षकों के अन्तर्गत डॉ० रघुवीर के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है। अपने विश्लेषण में श्री सिरोही ने डॉ० रघुवीर के शब्दावली निर्माण के 14 सिद्धांतों के न जोड़े जाने का जिक्र करते हुये कहा है कि "यदि इन सिद्धान्तों के आधार पर शब्दावली निर्माण कार्य आगे बढ़ाया जाता तो निश्चय ही इस दिशा में यह एक महत्वपूण उपलब्धि होगी। तथापि तत्सम शब्दों के प्रति डॉ० रघुवीर के अत्यधिक मोह के कारण इन सिद्धांतों को यथावत् अपना लेना व्यवहारिक नहीं है। श्री सिरोही का मत है कि उन्होंने साथ ही तत्वों और अन्य अत्यधिक प्रचलित शब्दों के ऐसे समानार्थी दिए जो यंत्रवत अनूदित हैं तथा जिनके प्रचलन की संभावना नहीं है जैसे फास्फोरस के लिए भास्वर, आक्सीजन के लिए जारक आदि।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने "आचार्य रघुवीर का परिभाषा–निर्माण" शीर्षक लेख सम्मेलन–पत्रिका में छपाया था। अब यह लेख हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित "राहुल–रचनामृत" ग्रंथ में प्रकाशित है। इसमें राहुल जी ने कोश के संक्षिप्त संस्करण के आधार पर आचार्य रघुवीर के परिभाषा निर्माण संबंधी कार्य की समीक्षा की है। अनेक मत–मतान्तर डॉ० रघुवीर के परिभाषा निर्माण कार्य के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये हैं। राहुल जी ने लिखा है— "आचार्य के परिश्रम के लिए सारे भारतवासियों को कृतज्ञ होना चाहिए।"

सन् 1888 से पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का प्रयास हो रहा है। महाराज सयाजी राव गायकवाड़ ने 1888 में 50 हजार रुपए का अनुदान देकर शब्दावली निर्माण परम्परा का श्रीगणेश किया था। डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्द निर्माण का सर्वप्रथम प्रयत्न 1888 में बड़ौदा नरेश की संरक्षकता में प्रो० टी. के. गज्जर द्वारा हुआ था। दूसरा प्रयत्न बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता द्वारा और तीसरा नागरी प्रचारणी सभा, काशी द्वारा। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने "दि हिंदी साइंटिफिक ग्लासरी" का संपादन किया था। सन् 1901 में गणित, 1902 में भौतिकी विषयक कोश प्रकाशित हुए। 1901 से 1912 के मध्य सात विषयों की पारिभाषिक शब्दावली प्रकाशित हुई थी। 1913 में 'विज्ञान परिषद' स्थापित हुआ और इस संस्था ने डॉ० सत्यप्रकाश जी के निर्देशन में 1930 में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रकाशन किया। 1926 में श्री सुखपंत राय भंडारी का कोश प्रकाश में आया। 'भारतीय हिन्दी परिषद्' ने भी 1942 में ऐसा ही कोश प्रकाशित किया था। इसमें डॉ० सत्यप्रकाश जी ने श्री निहालकरण सेठी, श्री फूलदेवसहाय वर्मा, श्री ब्रजमोहन, श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव आदि के सहयोग से अंग्रेजी–हिन्दी वैज्ञानिक कोश प्रकाशित किए थे।

इन सब प्रयासों की तुलना में डॉ० रघुवीर का प्रयास बहुत बड़ा और महत्व का माना जाता है। डॉ० रघुवीर ने "कांसालिडेटेड ग्रेट इंडियन डिक्शनरी ऑफ टेक्नीकल टर्म्स (1950), डॉ० रघुवीर और श्री लोकेशचन्द्र ने कांप्रेहेंसिव इंगलिश–हिन्दी डिक्शनरी आफ गवर्नमेंट एण्ड एजुकेशन वर्ड्स (1952), "डॉ० रघुवीर और श्री जी.एस. गुप्त ने इंगलिश–हिन्दी डिक्शनरी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन प्रकाशित कर भारतीय भाषाओं के पर्यायगत दारिद्र्य को दूर किया है। बाद में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड और वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के माध्यम से अनेक समितियों उपसमितियों के माध्यम से पर्याय निर्माण–कार्य हो रहा है। डॉ० रघुवीर ने जिस प्रक्रिया और प्रविधि का विकास किया है उससे वैज्ञानिक पर्यायों के निर्माण की उर्वर भूमि निर्मित हुई है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रघुवीर श्रद्धांजलि पृ. 208
2. वैज्ञानिक शब्दावली : इतिहास और सिद्धान्त – डॉ० ओम प्रकाश शर्मा, पृष्ठ 336-337
3. काम्प्रेहेंसिव इंगलिश–हिन्दी डिक्शनरी : डॉ० रघुवीर, पृ. 19
4. पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण की समस्याएँ : वाणी प्रकाशन, पृ. 125–126, नई दिल्ली 1987

अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान लोकप्रियकरण मे प्रोफेसर विलियम ब्रुस्टर हेज का योगदान

(एक अमरीकी वैज्ञानिक ने जिस तरह किसानों के बीच में उद्यान विज्ञान के ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया वह अपने में प्रशंसनीय है)

दर्शनानन्द*

प्रोफेसर विलियम ब्रुस्टर हेज (14 मार्च 1900–20 अगस्त 1957) उद्यान विज्ञान के क्षेत्र में एक जाने माने प्रतिष्ठित वैज्ञाकि थे। वे प्रायः डब्ल्यू. हेज के नाम से जाने जाते थे। उद्यान विज्ञान (Horticulture) की दिशा में इस वैज्ञानिक के योगदान और कृतियों का जितना ही बखान किया जाय थोड़ा होगा। प्रो० हेज का सबसे बड़ा योगदान उनके द्वारा लिखी गई अंग्रेजी पुस्तक "फ्रुट ग्रोइंग इन इण्डिया" (Fruit Growing in India) है।

प्रोफेसर हेज एक अमरीकी (कैलिफोर्निया) वैज्ञानिक थे, जो वर्ष 1921 में भारत आए थे और इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद (नैनी) में एक उद्यान विशेषज्ञ के पद पर कार्यरत रहते हुए छात्रों को उद्यान विज्ञान की शिक्षा देते रहे। वे इस संस्थान के उपप्रधानाचार्य भी थे। गहन अध्ययन की दृष्टि से प्रो० हेज ने भारत के कोने कोने के फल उद्यानों एंव शोधकेन्द्रों के व्यापक दौरे किये। यह पुस्तक प्रो० हेज के अनुभवों, गहन अध्ययन तथा कठोर परिश्रम का परिणाम है, जिसके माध्यम से उक्त समस्त कमियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास किया गया है।

इतना ही नहीं, देश–विदेश के विभिन्न उद्यानों एवं अनुसंधान केन्द्रों पर भिन्न भिन्न औद्यानिक विषयों पर क्या–क्या कार्य हुए तथा कौन कौन से और कार्य होने की आवश्यकता थी–– ये सभी विवरण तथा स्वयं के विचार इस पुस्तक में व्यक्त किए गए हैं।

---

*उद्यान, इलाहाबाद मण्डल, सी–67 गुरू तेग बहादुर, नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद -211 016

उद्यान विज्ञान के उत्थान में अत्यंत महत्वपूर्ण सि द्ध होने के साथ साथ यह पुस्तक विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं और फल–उत्पादकों के लिए विविध फलों पर शोध कार्य एवं अध्ययन करने हेतु आधार प्रदान करती है। उद्यान विज्ञान संबंधी शायद ही कोई लेख, पुस्तक, थीसिस अथवा शोधपत्र हो, जिसमें उक्त पुस्तक 'फ्रुट ग्रोइंग इन इण्डिया' का संदर्भ न दिया गया हो। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि प्रो० हेज ने 15 मई वर्ष 1944 को पूर्ण की। इसके पश्चात् वर्ष 1945 के जून मास में किताबिस्तान इलाहाबाद से यह पुस्त्क प्रथम बार प्रकाशित हुई, जो इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस इलाहाबाद में श्री जे.के. शर्मा द्वारा मुद्रित हुई।

यह पुस्तक 283 पृष्ठों में प्रकाशित दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में फल उगाने की संभावनाएँ, उद्यान रोपण का आयोजन, पौध प्रसारण, रोपाई, उद्यान मृदा–प्रबंध, ऋतु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न विपरीत दशाओं से बचाव, काट, छांट, अफलन की समस्या, फसल की कटाई तथा विपणन, फल उद्यान स्वास्थ्य, फल–उत्पाद तथा पामोलॉजी (Pomology फलों की वैज्ञानिक बागवानी) का इतिहास एवं साहित्य पर जानकारियाँ उपलब्ध कराई गई हैं। इस भाग में 12 अध्याय हैं।

पुस्तक के दूसरे भाग में आम, नीबूवर्गीय फल, केला, अमरूद तथा जामुन जैसे इसके कुटुम्ब (मिर्टैसी : Myrtaceae) के अन्य फल, पपीता, लीची, खजूर, अंगूर, अंजीर, शरीफा व इसके कुटुम्ब (एनोनैसी : Anonaceae) के अन्य फल, अनन्नास, लघु सम–उष्णीय फल (Minor Subtropical fruits) तथा शीतोष्ण (Temperate) फलों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। इस भाग में 13 अध्याय हैं।

इस प्रकार पूरी पुस्तक में कुल 25 अध्याय हैं । यथास्थान इसमें चित्रों का भी समावेश किया गया है, जिससे इस पुस्तक का और भी महत्व बढ़ जाता है।

'फ्रूट ग्रोइंग इन इण्डिया' पुस्तक के अंत में 512 संदर्भ साहित्य तथा वर्णमालानुसार अनुक्रमणिका भी प्रकाशित है। किसी विशेष विषय या फल पर सूचना किन–किन पृष्ठों पर उपलब्ध हैं – ये सारी जानकारियाँ इस अनुक्रमणिका द्वारा तुरंत प्राप्त हो जाती हैं, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता में निसंदेह वृद्धि हुई है। अतएव इस बात का

अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि इस पुस्तक के प्रकाशित होने के पूर्व इसकी सामग्री एकत्रित करने तथा पाण्डुलिपि तैयार करने में कितना अधिक समय लगा होगा। वास्तव में इस पुस्तक को लिखने का कार्य प्रो० हेज ने वर्ष 1934 के पूर्व से ही आरम्भ कर दिया था। आरम्भिक अवस्था में समय समय पर एक या दो–दो जिल्दरहित अध्याय प्रकाशित किए गए, जो विशेष रूप से उ द्यान विज्ञान के विद्यार्थियों के उपयोग में लाए जाते रहें। इसके कई बार पुनरावलोकन के पश्चात् एक त्रुटिहीन पुस्तक को पुष्ट जिल्द सहित लगभग 11×7 इंच के माप में स्थायी रूप दिया गया।

यह पुस्तक यद्यपि अंग्रेजी में हैं, तथापि इसकी स्पष्ट छपाई और सरल भाषा के कारण इसे पढ़ने और वाक्यों को समझने में बड़ी सुविधा मिली है। फलों की बागवानी में अलग–अलग फलों से सम्बंधित अनेक समस्याएं पूर्व में व्याप्त होती रहीं, जिन पर शोध–कार्य चलते रहे। परन्तु फल–वृक्षों में मौसमी फसलों की अपेक्षा शोध परिणाम पर्याप्त समय के पश्चात् ही प्राप्त हो पाते हैं।

प्रोफेसर हेज ने विश्वविख्यात इलाहाबादी अमरूद की काट–छांट पर वर्ष 1932 से 1943 तक इलाहाबाद कृषि संस्थान इलाहाबाद में शोध कार्य भी किया। इसके लिए वर्ष 1932 में 15–15 फुट तथा 25–25 फुट के फासले पर दो भागों में अमरूद के पौधे लगाए गए। जब 15–15 फुट पर लगे वृक्ष घने हाने लगे, तब इनकी वार्षिक कड़ी काट–छाँट की जाने लगी। इसके लिए पिछले ऋतु की टहनी को एक या दो आँख तक काट दिया जाता था। प्रत्येक वृक्ष के कुछ भाग की छँटाई मई में, कुछ की जून और कुछ की जुलाई में की जाती रही। इस भाग के कुछ वृक्षों की तथा 25–25 फुट पर लगे समस्त वृक्षों की सामान्य हल्की छँटाई होती रही।

इसके परिणामस्वरूप जहा ँ एक ओर कड़ी छँटाई किए गये वृक्षों में फल माप में बड़े बड़े प्राप्त हुए और प्रति एकड पौधों की संख्या अपक्षोकृत बहुत अधिक रही, वहीं दूसरी ओर प्रति वृक्ष फलों की संख्या इतनी कम रही कि इसकी प्रति एकड़ उपज 25–25 फुट पर लगे वृक्षों की प्रति एकड़ उपज के आधे से भी कम पाई गई।

इसके अतिरिक्त वर्ष 1942–43 तक 15–15 फुट पर लगे हल्की छँटाई किए गए वृक्षों की उपज 25–25 फुट पर लग वुक्षों की उपज से कुछ अधिक रही। परन्तु इसके बाद 15–15 फुट पर लगे वृक्ष घने होने लगे थे, जबकि 25–25 फुट पर लगे वृक्षों को भविष्य में वृद्धि की सम्भावनाएं प्रबल थीं। अमरूद की छँटाई के लिए जून–जुलाई का समय सर्वोपयुक्त पाया गया। उक्त शोध पत्र "प्रूनिंग दि ग्वावा' (pruning th guava) शीर्षक से 'इण्डियन जर्नल ऑफ हॉटीकल्चर' में अंक 1 (एक) के पृष्ठ 120–125 पर वर्ष 1943 में प्रकाशित हुआ।

नीबूवर्गीय फलों का फलमक्खी के प्रभाव पर अध्ययन करने के मध्य प्रो० हेज ने पाया कि सिक्किम में फल मक्खी के प्रकोप से प्रत्येक वर्ष इतनी अधिक क्षति होती है कि वृक्षों के नीचे की भूमि इन कीटों द्वारा ग्रसित गिरे फलों से बिल्कुल ढक जाती है। वे इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि नीबूवर्गीय फुलों में फल–मक्खी का घातक प्रकोप केवल सम–उष्णीय (सबट्रॉपिकल) ठंडे क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है। उक्त अध्ययन का परिणाम "दि सिट्रस इण्डस्ट्री इन सिक्कम" (The Citrus Industry in Sikkim) शीर्षक से वर्ष 1945 में इण्डियन जर्नल ऑफ हॉटीकल्चर अंक, 3 के पृष्ठ 49–55 पर प्रकाशित है। शिक्षण कार्य के अतिरिक्त उद्यान विज्ञान के विकास हेतु प्रोफेसर हेज अपने विषय के गहन अध्ययन, शोध कार्य एवं व्यावहारिक कार्यों में अंतिम समय तक के फल–उद्यांनों के सुचारु रूप से रख–रखाव के लिए वृक्षों की काट छांट आदि जैसे कार्य व अन्य देखभाल वे स्वंय भी किया करते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे वृक्ष पर चढ़ भी जाते थे।

वे उपयोगी एंव उत्तम पौध–सामग्रियों की खोज में सर्वदा जुटे रहते थे। इलाहाबाद कृषि संस्थान के स्थापित फल–उद्यानों में लगे विशिष्ट किस्मों के नीबूवर्गीय फल मुख्यतः ग्रेप फ्रूट तथा किन्नों संतरे आदि के उद्यान प्रो० हेज्ज के कठोर परिश्रम तथा उद्यान विज्ञान के प्रति पूर्णतः समर्पण भाव के परिचायक हैं।

प्रो० हेज स्पष्ट वक्ता थे। वे एक कठोर परीक्षक भी थे, जिसका मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। फिर भी वे एक उत्तग सलाहकार एंव मददगार थे। वर्ष 1950–51 में राजकीय कृषि महाविद्यालय कानपुर में

एम.एस.सी. की शिक्षा ग्रहण करने के बीच दो वर्ष की थीसिस कार्य हेतु मुझे "पत्तियों की विशेषताओं के आधार पर आम की किस्मों का वर्गीकरण" विषय पर शोध कार्य सौंपा गया, जिसमें मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अतः मैंने कानपुर से प्रोफेसर हेज के लिए एक पत्र लिख कर इलाहाबाद भेजा और इस सम्बन्ध में उनसे सलाह माँगी। प्रो० हेज ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए तुरंत इस पत्र का अपनी मूल्यवान सलाहों के साथ उत्तर भेजा, जिससे मुझे बड़ी सहायता मिली।

'फ्रूट ग्रोइंग इन इण्डिया' नामक पुस्तक के वर्ष 1945 में प्रथम प्रकाशन एवं स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रो० हेज ने इसके दो संस्करण और प्रकाशित कराए, जो क्रमशः वर्ष 1953 और 1957 में प्रकाशित हुए। वर्ष 1957 में प्रकाशित तृतीय एंव अंतिम सस्करण वाली पुस्तक में 523 पृष्ठ तथा 1333 संदर्भ हैं।

स्वर्गीय प्रोफेसर विलियम ब्रूस्टर हेज हॉर्टीकल्चरल सोसायटी ऑफ इण्डिया के स्थापन वर्ष 1942 से ही संस्थापक सदस्य तथा वर्ष 1947 तक काउन्सिलर बने रहे। वे इस सोसाइटी के वरिष्ठतम पद पर वर्ष 1953 से 1955 तक अध्यक्ष रहे। प्रो० हेज की ये महत्वपूर्ण कृतियाँ वैज्ञानिकों एवं लेखकों को सर्वदा उनकी याद दिलाती रहेंगी।

छूटे सूत्रों के सहारे खुलेंगे अनछुए अध्याय

मनोज कुमार पटैरिया*

आमतौर पर विज्ञान–लेखन की शुरुआत उन प्राचीन भारतीय ग्रंथों से मानी जा सकती है, जिनमें चिकित्सा, खगोल, गणित व रसायन विज्ञान का समावेश है, लेकिन आधुनिक हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के आरंभ से होती है। शुरुआत व्यक्तिगत प्रयासों से ही हुई और उसके विकास तथा पोषण में भी रुचिवान विचारकों, चिंतकों, वैज्ञानिकों सहित भाषाविदों की भी भूमिका रही। प्रस्तुत अध्ययन में विज्ञान लोकप्रियकरण के अन्य अनेक पहलुओं पर न जाकर सिर्फ उन छुटे हुए सूत्रों को खोजने का प्रयास किया गया है, जिनके सहारे पीछे जाने पर विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में किए गए उत्कृष्ट प्रयासों के अनेक अनछुए गहन अध्यायों को खोजा जा सकेगा।

विज्ञान पत्रकारिता विज्ञान लोकप्रियकरण और संचार कार्यों का एक महत्वपूर्ण अंग है। हालांकि स्वतंत्रता से पहले ज्ञान की इस शाखा पर कोई सुनिश्चित, सुव्यवस्थित और सुनियोजित व स्पष्ट प्रयास नजर नहीं आते, लेकिन स्वैच्छिक स्तरों पर किए गए व्यक्तिगत प्रयासों की शृंखला देखने को मिलती है जिनसे पता चलता है कि उस जमाने में कुछ मनीषी विज्ञान की बातों को लोगों तक पहुँचाने के लिए कितने सजग और जागरूक थे। विज्ञान लेखन और पत्रकारिता का स्वरूप स्वतंत्रता से पहले ही कुछ आकार ले चुका था, हालांकि उसे निखारने और विकसित करने का सुव्यवस्थित कार्य स्वतंत्रता के बाद ही संभव हुआ। हिन्दी में विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक लोगों ने व्यक्तिगत स्तरों पर अपनी अभिरुचि के कारण योगदान किया।

*वरिष्ट वैज्ञानिक अधिकारी, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली 110 016

व्यक्तिगत प्रयासः कुछ छूटे हुए सूत्र

1. क्लार्क मार्शमैन (1794-1877) के संपादन में 1818 में सीरामपोर (श्रीरामपुर) जिला हुगली, पश्चिम बंगाल से हिन्दी–अंग्रेजी मासिक 'दिग्दर्शन' शुरू हुआ। इसके पहले अंक में दो विज्ञानपरक लेख थे– एक तो अमेरिका खोज, और दूसरा गुब्बारा (वैलून) द्वारा आकाश–यात्रा। दूसरे अंक में भी दो विज्ञान सबंधी लेख थे – एक इंग्लैण्ड में न उगने वाले पर भारत में उगने वाले वृक्ष और दूसरा भाप की शक्ति से चलने वाली नाव (स्टीम बोट) के बारे में था। उन दिनों पाठ्यपुस्तकों की कमी होने के कारण कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी ने 'दिग्दर्शन' के अंक खरीद कर स्कूलों में बंटवाए, ताकि बच्चे शिक्षा, विज्ञान व विकास से संबंधित बातों को जानें। इस प्रकार 1818 में हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता शुरू हुई। हालांकि कुछ विद्वान 'उदंत मार्तण्ड' (सं० पं० युगल किशोर शुक्ल 1826) को हिन्दी का पहला अखबार मानते हैं, लेकिन उसमें विज्ञान प्रकरणों के उल्लेख नहीं मिलते हैं। हिन्दी 'दिग्दर्शन' निकालने के लिए कैप्टन गॉवर ने दिल्ली से दो विद्वानों को श्रीरामपुर भेजा था किन्तु इनमें नामों का उल्लेख नहीं मिलतां। इन्ही में से एक ने 'दिग्दर्शन' में हिन्दी विज्ञान लेखन शुरू किया था।

2. पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र ने 1885 में गति विज्ञान पर पुस्तक लिखीं। हिन्दी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के व्यक्तिगत प्रयासों में उनकी खासी भूमिका रही। उन्होंने अपने निजी प्रयासों से 1882 में बनारस से साप्ताहिक 'काशी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ किया। 'काशी पत्रिका' का हिन्दी में विज्ञान प्रस्तुत करने में उल्लेखनीय योगदान रहा। इसके मुख पृष्ठ पर पत्रिका के नाम के नीचे हिन्दी, अंग्रजी और उर्दू में एक विशेष वाक्य छपता था – "ए वीकली एजुकेशन जर्नल ऑफ साइंस, लिटरेचर एण्ड न्यूज इन हिन्दुस्तानी"। इसमें भरपूर शैक्षिक और वैज्ञानिक रचनाएं होती थीं। पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र इसके सम्पादक थे। वे भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर थे और बनारस कॉलेज में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक थे। वे बनारस के जिला विद्यालय निरिक्षक भी रहे। काशी पत्रिका को पहली हिन्दी विज्ञान पत्रिका की दिशा में एक आरंभिक प्रयास माना जाता है। काशी पत्रिका प्रकाशित करने के साथ ही उन्होंने लोकप्रिय विज्ञान पर विभिन्न किताबें भी लिखीं और विभिन्न लक्ष्य समूहों के बीच विज्ञान के विभिन्न रोचक विषयों

पर लोकप्रिय व्याख्यान दिए। वे स्वयं काशी पत्रिका के नियमित लेखक भी थे तथा नियमित स्तंभों हेतु समय समय पर सामग्री न मिलने पर खुद ही स्तंभ लिख डालते थे। उन्होंने अन्य अनेक पुस्तकों सहित त्रिकोणमिति पर भी पुस्तक लिखी।

3. प्रो० त्रिभुवन कल्याण दास गज्जर ने 1888 में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने की दिशा में वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन का बीड़ा उठाया। बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने इस हेतु 50 हजार रुपये स्वीकृत किए। लेकिन वैज्ञानिक शब्दावली के अभाव में पहले साल सिर्फ 5 किताबें लिखी जा सकीं और ज्यादातर लेखकों ने अच्छा पारिश्रमिक मिलने के आश्वासन के बावजूद किताबें लिखने से मना कर दिया। तब प्रो० गज्जर ने 80 खण्डों के बहुभाषी विज्ञान विश्वकोश की योजना बनाई। कतिपय कारणों से यह कोश प्रकाशित नहीं हो सका। इसकी पाण्डुलपि बड़ौदा विश्वविद्यालय में होने की सूचना है। वैज्ञानिक शब्दों के गठन और प्रांरभिक शब्दावली के निर्माण में प्रो० गज्जर की खासी भूमिका रही, हालांकि विशाल स्तर पर लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें निकालने की उनकी महत्वाकांक्षी योजना पूरी तरह सफल नहीं हो पाई।

4. श्री हीरालाल खन्ना का विज्ञान साहित्य में काफी योगदान रहा। वह विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभापति भी रहे। 1931 में वैज्ञानिक व्याख्यानों की श्रृंखला में झाँसी में आयोजित विज्ञान परिषद् में दिए गए अपने व्याख्यान में उन्होंने वैज्ञानिक पुस्तकों के निर्माण हेतु 3 बातें बताई थीं– वैज्ञानिक पुस्तकों की आसान भाषा, पारिभाषिक शब्दों की उपलब्धि और निश्चयता तथा सहकारिता और सहयोग। इस तरह उन्होंने विज्ञान साहित्य सृजन में प्राण फूंके और सीमित साधनों में किताबें निकाली गईं।

5. श्री सुखसम्पत राय भण्डारी ने 1932 के आसपास बीसवीं शताब्दी अंग्रेजी–हिन्दी कोश निकाला। यह पांच खण्डों में है, और इसमें एक लाख से अधिक शब्द पर्यायों और विवरणों साहित दिए गए हैं।

6. डॉ० रघुबीर का बँगला, देवनागरी, तमिल, तेलगू का पारिषिक कोश 1944 में प्रकाशित हुआ। डॉ० रघुवीर का प्रयास विज्ञान शब्दावली के आरंभिक प्रयासों में उल्लेखनीय है।

7. प्रख्यात विज्ञान लेखक डॉ० गोविन्द बिहारी लाल उन जाने–माने विज्ञान लेखकों में रहे हैं, जिन्होंने न केवल भारत में बल्कि पश्चिमी जगत में भी आधुनिक विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत की। डॉ० लाल ने दिल्ली विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त की। आरंभ में वे सक्रियतापूर्वक स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े रहे। लेखन के प्रति उनमें बचपन से ही रुचि थी। विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही विज्ञान लेखन और पत्रकारिता की ओर उनका रुझान हुआ। वह एक समर्पित देशभक्त थे। गदर के समय वे काफी सक्रिय रहे, किन्तु उन्हीं दिनों वे अमेरिका चले गए। वहाँ जाकर वे सक्रिय पत्रकारिता के क्षेत्र में आए और उन्होंने अपने कार्य के लिए विशेष रूप से पत्रकारिता का क्षेत्र चुना। सन् 1931 में 29 वर्षीय दो युवा विज्ञानिकों ने एसोसिएटेड प्रेस के विज्ञान संपादक हॉवार्ड ने डब्ल्यू. ब्लेकसली न्यूयार्क टाइम्स के विज्ञान लेखक विलियम लारेंस और विज्ञान पत्रकार गोविन्द बिहारी लाल को अपनी बात सुनाने के लिए आमंत्रित किया। ये वैज्ञानिक थे – डॉ० अर्नेस्ट ओ० लारेंस और रार्बट ओपेनहाइमर, (परमाणु बंम के निर्माता)। उन्होंने बताया कि उन्हें विद्युतआवेशित कणों को तीव्र से तीव्रकर गति में ऊर्जित करने वाली मशीन की आवश्यकता है, पर उनके पास धन और उपकरण नहीं हैं। डॉ० गोविन्द बिहारी लाल सहित अन्य वैज्ञानिक लेखकों ने उन वैज्ञानिकों से बातचीत के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार की और जब यह रिपोर्ट समाचारपत्रों में छपी तो उन्हें वह मशीन मुफ्त में मिल गयी, जिसे पाने के लिए वे कितने ही प्रयास कर चुके थे। इसके अतिरिक्त डॉ० लाल ने महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन और अन्य अनेक प्रमुख वैज्ञानिकों सहित डॉ० हरगोविन्द खुराना से भी साक्षात्कार किए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण उनमें कूट–कूट कर भरा था। उनका कहना था कि आज हमें वैज्ञानिक राष्ट्रवाद का निर्माण करना होगा, मंन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों और चर्चों के गुम्बदों पर दूरबीन लगवा दी जानी चाहिए, ताकि लोग आडम्बरपूर्ण भक्ति के माध्यम से नहीं, विज्ञान के माध्यम से ब्रह्माण्डीय रहस्यों के दर्शन कर सकें। विदेश जाने से पहले डॉ० लाल हिन्दू कॉलेज दिल्ली में पढ़ाते थे। उन्होंने 19 वर्ष की उम्र में अपने स्कूली दिनों में विकासवाद के सिद्धान्त पर भाषण दिया था और पुरस्कार जीता था। 'विदुर' नवंम्बर 1967 (प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डिया की मासिक पत्रिका)

को दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा "मुझे भौतिकी, चुम्बकीय तरंगों और प्रकाश के विज्ञान से गहरा लगाव है। विज्ञान ने मुझे हमेशा रोमांचित किया।" इसी रोमांच को लेकर वे अमेरिका पहुँचे। अमेरिकी समाचारपत्रों में काम करने वाले वह एकमात्र एशियाई थे। सैनफ्रांसिस्को एक्जामिनर में जब उन्होंने काम शुरू किया तो देखा कि वहां विज्ञान के बारे में ज्यादा कुछ नहीं छपता और उन्होंने नोबेल पुरस्कारविजेता रॉबर्ट मिलिकान से साक्षात्कार करने की ठानी लेकिन प्रबन्ध संपादक उसे छापने को तैयार नहीं था। तब उन्होंने अखबार छोड़ने की धमकी दी। अंततोगत्वा ब्रह्मांडीय किरणों पर उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई और पाठकों ने उसे सराहा। इस प्रकार भारतीय विज्ञान पत्रकार डॉ० लाल ने अमेरिका में विज्ञान पत्रकारिता का कार्य शुरू किया। सन् 1930 में उन्होंने अपने एक लेख में कैंसर के जैव रासायनिक कारणों की व्याख्या की और आज वास्तव में यह स्पष्ट हुआ है कि वृक्क के ऊपरी भाग में स्थित एड्रीनल ग्रन्थि से उत्पन्न एक विशेष प्रकार का हार्मोन कुछ प्रकार का कैंसर का पैदा करता है। बाद में डॉ० एडवर्ड सी० केंडाल ने खोज द्वारा इस बात की पुष्टि की जिस पर उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। डॉ० केंडाल ने इस खोज के लिए प्रेरणा का श्रेय डॉ० लाल की रिपोर्टों को दिया। विज्ञान पत्रकारिता के लिए 1937 में डॉ० लाल को पुलिट्जर सम्मान से पुस्कृत किया गया। वह लॉस एंजिल्स टाइम्स और हार्स्ट ग्रुप न्यूज सर्विस के भी विज्ञान संपादक रहे। कुल मिलाकर डॉ० लाल ने सही अर्थो में भरपूर विज्ञान पत्रकारिता की और पत्रकारिता की सभी विधाओं में सफल प्रयोग किया। बीच–बीच में वे जब भी भारत आते थे, यहाँ के विज्ञान लेखकों, संपादकों के लिए प्रेरणा के स्रोत होते थे। उनका कहना था कि भारत में विज्ञान लेखक, विकास की भावना, प्रकृति के नियमों की समझ और प्रकृति के नियमों के अनुसार समाज को ढालने के प्रयासो को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

8. श्री हरगू लाल : हमारा देश प्राचीन काल से ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में आगे रहा। इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के लोकप्रियकरण के प्रयासों की खोज करते समय एक सूत्र और हाथ लगा, जिनका नाम है श्री हरगू लाल। श्री हरगू लाल ने 1857 के आस–पास विज्ञान और स्कूली वैज्ञानिक उपकरणों/मॉडलों के निर्माण और प्रचार प्रसार

के क्षेत्र में काम किया। यदि हम गौर करें तो पायेंगे कि ज्यादातर प्रयास 19 वीं सदी के अंतिम दशकों से आरंभ होते हैं। किन्तु यह प्रयास 19 वीं सदी के मध्यकाल का है। इस प्रकार भारत में विज्ञान लोकप्रियकरण के समर्पित व्यक्तिनिष्ठ प्रयासों की तारीख 1857 तक खिसक जाती है। श्री हरगू लाल अम्बाला में शिक्षक थे। उन्होंने बच्चों को विज्ञान पढ़ाते समय यह अनुभव किया कि विज्ञान की पढ़ाई के साथ–साथ अगर विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोगों के माध्यम से करके समझाया जा सके तो बच्चे ज्यादा आसानी से समझ सकते हैं। शुरू में उन्होंने चुम्बक, प्रकाश आदि संबंधी प्रयोगों के उपकरण बनाए। इन उपकरणों की आस–पास के क्षेत्रों में धीरे–धीरे काफी माँग होने लगी। उपकरणों के साथ ही उन्होंने संचित्र पोस्टर और रेखाचित्र बनाने शुरू कर दिए। इससे माँग कई गुणा ज्यादा बढ़ गयी। धीरे–धीरे उन्होंने मानव के विभिन्न अंतरांगों, जीव जन्तुओं, मशीनों, उपकरणों आदि के स्थिर मॉडल भी बनाने शुरू कर दिए। अब उनके साथ और भी लोग इस व्यवसाय में जुड़ गए। धीरे–धीरे मॉडलों और उपकरणों में उन्होंने और सुधार किए और तब कार्यकारी मॉडलों, उपकरणों का विकास हुआ। यह कार्य चल निकला और देखते ही देखते वे इन सस्ते और सरल उपकरणों का निर्यात भी करने लगे। उन्होंने अपने उपकरणों, सचित्र पोस्टरों की एक सूची (कैटेलॉग) भी छपवायी। इस संबंध में एक मजेदार घटना हुई। बम्बई के किसी व्यवसायी ने उनकी सूची के आधार पर अपना एक कैटेलॉग छपवाया, जिसके माध्यम से वह यह प्रचार करने लगा कि उसके पास ये उपकरण उपलब्ध हैं, जबकि वास्तविकता यह थी कि वे उपकरण वह श्री हरगूलाल, अम्बाला से मँगवाता था और अधिक कीमत पर बेचता था। हरगूलाल को जब यह पता चला तो उन्होंने उस व्यवसायी के खिलाफ दावा दायर कर दिया, जिसमें हरगूलाल की जीत हुई और विपक्षी को जुर्माना भरना पड़ा।

इसके बाद स्वदेशी आंदोलन के दौरान अम्बाला में ही श्री नंदलाल और उनके पुत्र पन्नालाल द्वारा इसी प्रकार का कार्य करने के उल्लेख मिलते हैं। शायद यही कारण है कि सन् 1857 में हरगूलाल ने स्वप्रेरणावश वैज्ञानिक उपकरणों, पास्टरों, माडलों के प्रचार–प्रसार की जो नींव रखी थी वह आज पुष्पित और पल्लवित हो चुकी है। अम्बाला

के विज्ञान नगर में प्रायः हर घर और गली में वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण बड़े स्तर पर दिया जा रहा है और अम्बाला शहर इस क्षेत्र में देश का एक मुख्य केन्द्र बन गया है।

9. श्री देवी शंकर मिश्र : श्री देवी शंकर मिश्र 1930-1950 के आसपास सक्रिय रहे। उन्होने 'प्राणिशास्त्र' और 'नव विज्ञान' नामक दो पत्रिकाएं प्रकाशित कीं। अपने समय में वह एक समर्पित विज्ञान लेखक/पत्रकार रहे हैं। श्री मिश्र से लेखक का साक्षात्कार जून 1994 में लखनऊ में राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद् और विकास द्वारा आयोजित विज्ञान पत्रकारिता कार्यशाला में हुआ। इस समय वह करीब 90 वर्ष के हैं। श्री मिश्र ने प्राचीन ऋषियों–मुनियों की भारतीय वैज्ञानिक परंपरा के हैं। सांपों के ऊपर उन्होंने 500 पृष्ठों की किताब "विश्व सर्प सम्मेलन" लिखी। इसके अतिरिक्त बड़ी तादाद में विज्ञान लेखन किया और पत्रकारिता से जुड़े रहे। उनकी पत्रिकाओं में चमत्कारों और अंधविश्वासो के खिलाफ भी काफी सामाग्री प्रकाशित होती थी। एक बार समाचारपत्रों ने एक समाचार प्रकाशित किया – लद्दाख में रक्त की वर्षा हुई और तमाम गड्ढ़ों में भरा देखा गया। यहाँ तक कि बर्फ से ढ़की पहाड़ों की चोटियाँ भी लाल हो गयीं। वहाँ के निवासी इसे परमात्मा का प्रकोप समझकर भयभीत हो गए और पूजा अर्चना में लग गए।" प्राणि शास्त्र के अगले अंक में श्री मिश्र ने इस तथाकथित चमत्कार का वैज्ञानिक समाधान लिखा – इस घटना को परमात्मा का प्रकोप कहना ठीक नहीं। यह तो एक साधारण प्राकृतिक घटना है। तथ्य यह है कि एक प्रकार के कशाभीय (फ्लैजलेट) प्रोटोजोआ होते हैं जिनका वैज्ञानिक नाम है – हीमैटोकॉर्पस। ये इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शी से ही देखे जा सकते हैं। यदि एक पंक्ति में 500 सजाए जायँ तब जाकर लम्बाई में एक मि०मी० पहुँचेंगे। इनका रंग खून की तरह लाल होता है और जब नमी में पहुँचकर विभाजित होकर करोड़ों की संख्या में पहुँच जाते हैं तो पानी या नमी वाला स्थान खून की तरह लाल दिखायी देने लगता है और अंधविश्वासी लोग समझते हैं कि अंतरिक्ष में देवों और दानवो का युद्व हुआ है।" इस प्रकार के अनेकों उदाहरण श्री मिश्र के लेखन में देखने को मिलते हैं। विज्ञान लेखन के साथ ही वह कवि, नाटककार, कहानीकार और

भारतीय ज्ञान–विज्ञान से संबंधित विषयों के उत्कृष्ट लेखक रहे हैं। 1938 में उन्होने आकाशवाणी में भविष्य के विज्ञान पर एक रूपक प्रस्तुत किया। 1939 में उन्होंने लखनऊ यूनिवर्सिटी जुऑलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना की। 1941 में पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) में हिन्दी साहित्य की स्थापना की। श्री मिश्र ने अपने विज्ञान लेखन में स्वनिर्मित तकनीकी शब्दों का खूब उपयोग किया। वह कहते हैं कि उनके पास ज्यादातर प्रकाशनार्थ आए लेख अग्रेंजी में होते हैं जिनका अनुवाद उन्हे करना पड़ता था। प्रकाशनार्थ आये चित्रों का नामांकन भी अंग्रेजी से हिन्दी में करना होता था। अनेक पारिभाषिक शब्द खुद गढ़ने होते थे। इस प्रकार साधनों के अभाव में उन्होंने विज्ञान लेखन कार्य को आगे बढ़ाया।

विश्लेषण : इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में शैक्षिक और व्यक्तिगत स्तरों पर अनेक लोगो ने अपने–अपने ज्ञान के अनुसार, अपनी स्वतः प्रेरणा के अनुसार और अपनी परिकल्पना के अनुसार शब्दों को नये सिरे से बनाकर समस्या का समाधान किया। एक बात जो देखने में मिलती है वह यह है कि देश भर में विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार के शैक्षिक प्रयास लगातार चलते रहे हैं जिन्होंने आज के विज्ञान लाकप्रियकरण कार्य की आधारशिला रखी है। यही नहीं, भारतीय संस्कृति की परंपरा में दिए गए उद्धरणों के अनुसार राजा भोज द्वारा लिखे गए ग्रन्थ में विभिन्न यंत्रों, स्वयं खुलने और बंद होने वाले दरवाजो, लिफ्ट जैसे यंत्र, ट्रेन जैसे यंत्र की कल्पना की गयी है। उसमें सुन्दरियों की मूर्ति के नखों तथा नाभि से फव्वारों की तकनीक तथा ऐसा हाथी बनाने की तकनीक का सुझाव दिया गया है कि वह पानी तो पीता जाए पर पता नहीं चले कि पानी कहा जाता है। इस प्रकार स्वतंत्र स्तरों पर विज्ञानोन्मुखी लेखन के प्रयासो का सिलसिला चलता रहा।

निष्कर्ष : इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए हमारे देश को पश्चिमी या अन्य देशों की ओर देखने या उन पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं है। प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ ज्ञान–विज्ञान उन्नति की चरम सीमा पर रहा है। हमारी प्रचुर सांस्कृतिक वैज्ञानिक धरोहर इसका प्रमाण है। इसी

प्रकार आधुनिक विज्ञान लोकप्रियकरण प्रयासों के क्षेत्र में भी हमारे देश में आंरभ से ही गंभीर प्रयास होते आए हैं। इस क्षेत्र में रुचिवान व्यक्तियों ने अपने साधनों और अपने प्रयासों से पूरा जीवन विज्ञान लोकप्रियकरण कार्य के लिए समर्पित कर दिया। आज उनके कार्यों और प्रयासों से प्रेरणा लेते हुए भविष्य के विज्ञान लोकप्रियकरण प्रयासों की रीति–नीति निर्धारित करने में मदद मिल सकती है।

कृतज्ञता ज्ञापन : इस अध्ययन में मार्गदर्शन और प्रेरणा के लिए मैं राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद् के संयुक्त सलाहकार एवं प्रमुख डॉ० नगेन्द्र सहगल, भारत में विज्ञान संचार के उद्‌भव और विकास पर पी०एच०डी० डिग्री हेतु मेरे दिग्दर्शक डॉ० जी०एस० पालीवाल, विभागाध्यक्ष वनस्पति विज्ञान, गढ़वाल विश्वविद्यालय और प्रयाग विश्वविद्यालय के डॉ० शिवगोपाल मिश्र प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

सन्दर्भ :

1. पटेरिया, मनोज कुमार, हिन्दी विज्ञान पत्रकारिमा, 1990 तक्षशिला, नई दिल्ली
2. लाल, गोविन्द बिहारी, विदुर, नवंबर 1967
3. शर्मा, डॉ० ओम प्रकाश, वैज्ञानिक शब्दावली : इतिहास और सिद्धान्त, 1968, फ्रेंक ब्रदर्स, नई दिल्ली
4. वैदिक, डॉ० वेद प्रताप, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, 1976, नेशन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
5. राय, कमलेश, साइंस राइटिंग ऐज ए कैरियर, 1973, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
6. मिश्र, डॉ० शिव गोपाल, हिन्दी में विज्ञान लेखन : कुछ समस्याऐं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1986